編著者名 Premchand

書　　名 Mānsarowar 2

叢書名

版　　次

発行地 Ilāhābād

発行所 Hans Prakāshan

発行年 1950

頁　　数 352

簡単な日本語訳名 マーンサローワル 2

प्रकाशक :
अमृतराय
हंस प्रकाशन,
इलाहाबाद
मुद्रक :
भार्गव प्रेस,
इलाहाबाद

मूल्य ३)

विषय-सूची

कुसुम	....	....	५
ख़ुदाई फ़ौजदार	....	....	२५
वेश्या	....	....	३७
चमत्कार	....	....	५६
मोटर के छींटे	....	....	७४
क़ैदी	....	....	७६
मिस पद्मा	....	....	६१
विद्रोही	....	....	६६
उन्माद	....	....	११३
न्याय	....	....	१३४
कुत्सा	....	....	१४४
दो बैलों की कथा	....	....	१४६
रियासत का दीवान	....	....	१६३
मुफ़्त का यश	....	....	१८३
बासी भात में ख़ुदा का साझा	....	....	१६१
दूध का दाम	....	....	२००
बालक	....	....	२११
जीवन का शाप	....	....	२२०
डामुल का क़ैदी	....	....	२३४
नेउर	....	....	२५६
गृह-नीति	....	....	२६६
क़ानूनी कुमार	....	....	२८३
लॉटरी	....	....	२६४
जादू	....	....	३११
नया विवाह	....	....	३१५
शूद्रा	....	....	३३१

कुसुम

साल-भर की बात है, एक दिन शाम को हवा खाने जा रहा था कि महाशय नवीन से मुलाक़ात हो गयी। मेरे पुराने दोस्त हैं, बड़े बेतकल्लुफ़ और मनचले। आगरे मकान है, अच्छे कवि हैं। उनके कवि-समाज में कई बार शरीक हो चुका हूँ। ऐसा कविता का उपासक मैंने नहीं देखा। पेशा तो वकालत है; पर डूबे रहते हैं काव्य-चिन्तन में। आदमी ज़हीन हैं, मुक़दमा सामने आया और उसकी तह तक पहुँच गये; इसलिए कभी-कभी मुक़दमे मिल जाते हैं; लेकिन कचहरी के बाहर अदालत या मुक़दमे की चर्चा उनके लिए निषिद्ध है। अदालत की चारदीवारी के अन्दर चार-पाँच घण्टे वह वकील होते हैं। चारदीवारी के बाहर निकलते ही कवि हैं—सिर से पाँव तक। जब देखिए, कवि-मण्डल जमा है, कवि-चर्चा हो रही है, रचनाएँ सुन रहे हैं, मस्त हो होकर झूम रहे हैं, और अपनी रचना सुनाते समय तो उनपर एक तल्लीनता-सी छा जाती है। कण्ठ-स्वर भी इतना मधुर है कि उनके पद बाण की तरह सीधे कलेजे में उतर जाते हैं। अध्यात्म में माधुर्य की सृष्टि करना, निर्गुण में सगुण की बहार दिखाना उनकी रचनाओं की विशेषता है। वह जब लखनऊ आते हैं, मुझे पहले सूचना दे दिया करते हैं। आज उन्हें अनायास लखनऊ में देखकर मुझे आश्चर्य हुआ। पूछा—आप यहाँ कैसे? कुशल तो है? मुझे आने की सूचना तक न दी।

बोले—भाईजान, एक जंजाल में फँस गया हूँ। आपको सूचित करने का समय न था। फिर आपके घर को मैं अपना घर समझता हूँ। इस तकल्लुफ़ की क्या ज़रूरत है कि आप मेरे लिए कोई विशेष प्रबन्ध करें। मैं एक ज़रूरी मुआमले में आपको कष्ट देने आया हूँ। इस वक़्त की सैर को स्थगित कीजिए और चलकर मेरी विपत्ति-कथा सुनिये।

मैंने घबड़ाकर कहा—आपने तो मुझे चिन्ता में डाल दिया। आप और विपत्ति-कथा! मेरे तो प्राण सूखे जाते हैं।

'घर चलिए, चित्त शान्त हो तो सुनाऊँ!'

'बाल-बच्चे तो अच्छी तरह हैं ?'

'हाँ, सब अच्छी तरह है। वैसी कोई बात नहीं है !'

'तो चलिए रेस्ट्राँ में कुछ जलपान तो कर लीजिये।'

'नहीं भाई इस वक्त मुझे जलपान नहीं सूझता।'

हम दोनों घर की ओर चले।

घर पहुँचकर उनका हाथ-मुँह धुलाया, शरबत पिलाया। इलायची-पान खाकर उन्होंने अपनी विपत्ति-कथा सुनानी शुरू की—

'कुसुम के विवाह में आप गये ही थे। उसके पहले भी आपने उसे देखा था। मेरा विचार है कि किसी सरल प्रकृति के युवक को आकर्षित करने के लिए जिन गुणों की ज़रूरत है, वह सब उसमें मौजूद है। आपका क्या ख़याल है ?'

मैंने तत्परता से कहा—मैं आपसे कहीं ज्यादा कुसुम का प्रशंसक हूँ। ऐसी लज्जाशील, सुघड़, सलीक़ेदार और विनोदिनी बालिका मैंने दूसरी नहीं देखी।

महाशय नवीन ने करुण स्वर में कहा—वही कुसुम आज अपने पति के निर्दय व्यवहार के कारण रो-रोकर प्राण दे रही है। उसका गौना हुए एक साल हो रहा है। इस बीच में वह तीन बार ससुराल गयी, पर उसका पति उससे बोलता ही नहीं। उसकी सूरत से बेज़ार है। मैंने बहुत चाहा कि उसे बुलाकर दोनों में सफ़ाई करा दूँ, मगर न आता है, न मेरे पत्रों का उत्तर देता है। न-जाने क्या गाँठ पड़ गयी है कि उसने इस बेदर्दी से आँखें फेर लीं। अब सुनता हूँ, उसका दूसरा विवाह होने वाला है। कुसुम का बुरा हाल हो रहा है। आप शायद उसे देखकर पहचान भी न सकें। रात-दिन रोने के सिवा दूसरा काम नहीं हैं। इससे आप हमारी परेशानी का अनुमान कर सकते हैं। ज़िन्दगी की सारी अभिलाषाएँ मिटी जाती हैं। हमें ईश्वर ने पुत्र न दिया; पर हम अपनी कुसुम को पाकर सन्तुष्ट थे और अपने भाग्य को धन्य मानते थे। उसे कितने लाड़-प्यार से पाला, कभी उसे फूल की छड़ी से भी न छुआ। उसकी शीक्षा-दीक्षा में कोई बात उठा न रखी। उसने बी० ए० नहीं पास किया; लेकिन विचारों की प्रौढ़ता और ज्ञान-विस्तार में किसी ऊँचे दर्जे की शिक्षित महिला से कम नहीं। आपने उसके लेख देखे हैं। मेरा ख़याल है, बहुत कम देवियाँ वैसे लेख लिख सकती हैं! समाज, धर्म, नीति सभी विषयों में उसके विचार बड़े परिष्कृत हैं। बहस करने में तो वह इतनी पटु है कि मुझे आश्चर्य होता है। गृह-प्रबन्ध में इतनी कुशल कि मेरे घर का प्रायः सारा प्रबन्ध उसी के हाथ में था; किन्तु पति की दृष्टि में वह पाँव की धूल के बराबर भी नहीं। बार-बार पूछता हूँ, तूने उसे कुछ कह दिया है, या क्या बात है ? आख़िर, वह क्यों तुझसे इतना उदासीन है ? इसके जवाब में रोकर यही कहती है—'मुझसे तो उन्होंने कभी कोई बातचीत ही नहीं की।' मेरा विचार है कि पहले ही दिन दोनों में कुछ मनमुटाव हो गया। वह कुसुम के पास आया होगा और उससे कुछ पूछा होगा। उसने मारे शर्म के जवाब न दिया होगा। सम्भव है, उससे दो-चार बातें और भी की हों। कुसुम ने सिर न उठाया होगा। आप जानते ही हैं, वह कितनी शर्मीली है। बस, पतिदेव रूठ गये होंगे। मैं तो कल्पना ही नहीं कर सकता कि कुसुम-जैसी बालिका से कोई पुरुष उदासीन रह सकता है; लेकिन दुर्भाग्य को कोई क्या करे ? दुखिया ने पति के नाम कई पत्र लिखे, पर उस निर्दयी ने एक का भी जवाब न किया ! सारी चिट्ठियाँ लौटा दीं। मेरी समझ में नहीं आता कि उस पाषाण-हृदय को कैसे पिघालऊँ। मैं अब खुद तो उसे कुछ लिख नहीं सकता। आप ही कुसुम की प्राण-रक्षा करें, नहीं तो शीघ्र ही उसके जीवन का अन्त हो जायगा, और उसके साथ हम दोनों प्राणी भी सिधार जायँगे। उसकी व्यथा अब नहीं देखी जाती।

नवीनजी की आँखें सजल हो गयीं ? मुझे भी अत्यन्त क्षोभ हुआ। उन्हें तसल्ली देता हुआ बोला—आप इतने दिनों इस चिन्ता में पड़े रहे, मुझसे पहले ही क्यों न कहा ? मैं आज ही मुरादाबाद जाऊँगा और उस लौंडे की इस बुरी तरह ख़बर लूँगा कि वह भी याद करेगा। बचा को ज़बरदस्ती घसीट कर लाऊँगा और कुसुम के पैरों पर गिरा दूँगा।

नवीनजी मेरे आत्मविश्वास पर मुसकराकर बोले—आप उससे क्या कहेंगे ?

'यह न पूछिए ! वशीकरण के जितने मन्त्र हैं, उन सभीकी परीक्षा करूँगा।'

'तो आप कदापि सफल न होंगे। वह इतना शीलवान, इतना विनम्र, इतना प्रसन्न मुख है, इतना मधुर-भाषी कि आप वहाँ से उसके भक्त होकर लौटेंगे। वह नित्य आपके सामने हाथ बाँधे खड़ा रहेगा। आपकी सारी कठोरता

शान्त हो जायगी। आपके लिए तो एक ही साधन है। आपके कलम में जादू है! आपने कितने ही युवकों को सन्मार्ग पर लगाया है। हृदय में सोयी हुई मानवता को जगाना आपका हिस्सा है। मैं चाहता हूँ, आप कुसुम की ओर से एक ऐसा करुणा-जनक, ऐसा दिल हिला देनेवाला पत्र लिखें कि वह लज्जित हो जाय और उसकी प्रेम-भावना सचेत हो उठे। मैं जीवन-पर्यन्त आपका आभारी रहूँगा।'

नवीनजी कवि ही तो ठहरे। इस तजवीज में वास्तविकता की अपेक्षा कवित्व ही की प्रधानता थी। आप मेरे कई गल्पों को पढ़कर रो पड़े हैं, इससे आपको विश्वास हो गया है कि मैं चतुर सँपेरे की भाँति जिस दिल को चाहूँ, नचा सकता हूँ। आपको यह मालूम नहीं कि सभी मनुष्य कवि नहीं होते, और न एक-से भावुक। जिन गल्पों को पढ़कर आप रोये हैं, उन्हीं गल्पों को पढ़कर कितने ही सज्जनों ने विरक्त होकर पुस्तक फेंक दी है। पर इन बातों का वह अवसर न था। वह समझते कि मैं अपना गला छुड़ाना चाहता हूँ, इसलिए मैंने सहृदयता से कहा—आपको बहुत दूर की सूझी। और मैं उस प्रस्ताव से सहमत हूँ, और यद्यपि आपने मेरी करुणोत्पादक शक्ति का अनुमान करने में अत्युक्ति से काम लिया है; लेकिन मैं आपको निराश न करूँगा। मैं पत्र लिखूँगा और यथाशक्ति उस युवक की न्याय-बुद्धि को जगाने की चेष्टा भी करूँगा, लेकिन आप अनुचित न समझें तो पहले मुझे वह पत्र दिखा दें, जो कुसुम ने अपने पति के नाम लिखे थे। उसने पत्र तो लौटा ही दिये हैं और यदि कुसुम ने उन्हें फाड़ नहीं डाला है, तो उसके पास होंगे। उन पत्रों को देखने से मुझे ज्ञात हो जायगा कि किन पहलुओं पर लिखने की गुञ्जाइश बाक़ी है।

नवीनजी ने जेब से पत्रों का एक पुलिन्दा निकालकर मेरे सामने रख दिया और बोले—मैं जानता था, आप इन पत्रों को देखना चाहेंगे, इसलिए इन्हें साथ लेता आया। आप इन्हें शौक से पढ़ें। कुसुम जैसी मेरी लड़की है, वैसी ही आपकी भी लड़की है। आपसे क्या परदा!

सुगन्धित, गुलाबी, चिकने कागज पर बहुत ही सुन्दर अक्षरों में लिखे हुए उन पत्रों को मैंने पढ़ना शुरू किया—

मेरे स्वामी, मुझे यहाँ आये एक सप्ताह हो गया; लेकिन आँखें पल-भर के लिए भी नहीं झपकी। सारी रात करवटें बदलते बीत जाती हैं। बार-बार सोचती हूँ, मुझसे ऐसा क्या अपराध हुआ कि उसकी आप मुझे यह सज़ा दे रहे हैं। आप मुझे झिड़कें, घुड़कें, कोसें, इच्छा हो तो मेरे कान भी पकड़ें। मैं इन सभी सज़ाओं को सहर्ष सह लूँगी; लेकिन यह निष्ठुरता नहीं सही जाती। मैं आपके घर एक सप्ताह रही। परमात्मा जानता है कि मेरे दिल में क्या-क्या अरमान थे। मैंने कितनी बार चाहा कि आपसे कुछ पूछूँ; आपसे अपने अपराधों को क्षमा कराऊँ; लेकिन आप मेरी परछाईं से भी दूर भागते थे। मुझे कोई अवसर न मिला। आपको याद होगा कि जब दोपहर को सारा घर सो जाता था, तो मैं आपके कमरे में जाती थी और घण्टों सिर झुकाये खड़ी रहती थी; पर आपने कभी आँख उठाकर न देखा। उस वक्त मेरी मन की क्या दशा होती थी, इसका कदाचित् आप अनुमान न कर सकेंगे। मेरी-जैसी अभागिनी स्त्रियाँ इसका कुछ अन्दाज़ कर सकती हैं। मैंने अपनी सहेलियों से उनकी सोहाग-रात की कथाएँ सुन-सुनकर अपनी कल्पना में सुखों का जो स्वर्ग बनाया था उसे आपने कितनी निर्दयता से नष्ट कर दिया!

मैं आपसे पूछती हूँ, क्या आपके ऊपर मेरा कोई अधिकार नहीं है? अदालत भी किसी अपराधी को दण्ड देती है, तो उसपर कोई-न कोई अभियोग लगाती है, गवाहियाँ लेती है उनका बयान सुनती है। आपने तो कुछ पूछा ही नहीं। मुझे अपनी ख़ता मालूम हो जाती, तो आगे के लिए सचेत हो जाती। आपके चरणों पर गिरकर कहती, मुझे क्षमा-दान दो। मैं शपथपूर्वक कहती हूँ, मुझे कुछ नहीं मालूम, आप क्यों रुष्ट हो गये। सम्भव है, आपने अपनी पत्नी में जिस गुणों के देखने की कामना की हो, वे मुझमें न हो। बेशक मैं अँगरेजी नहीं पढ़ी, अँगरेज़ी-समाज की रीति-नीति से परिचित नहीं, न अँगरेज़ी खेल ही खेलना जानती हूँ। और भी कितनी ही त्रुटियाँ मुझमें होंगी। मैं जानती हूँ कि मैं आपके योग्य न थी। आपको मुझसे कहीं अधिक रूपवती, गुणवती बुद्धिमती स्त्री मिलनी चाहिए थी; लेकिन मेरे देवता, दण्ड अपराधों का मिलना चाहिए, त्रुटियों का नहीं। फिर मैं तो आपके इशारे पर चलने को तैयार हूँ। आप मेरी दिलजोई करें, फिर देखिए, मैं अपनी

त्रुटियों को कितनी जल्द पूरा कर लेती हूँ। आपका प्रेम-कटाक्ष मेरे रूप को प्रदीप्त, मेरी बुद्धि को तीव्र, और मेरे भाग्य को बलवान कर देगा। वह विभूति पाकर मेरी कायाकल्प हो जायगी।

स्वामी, क्या आपने सोचा है? आप यह क्रोध किस पर कर रहे हैं? वह अबला, जो आपके चरणों पर पड़ी हुई आपसे क्षमा-दान माँग रही है, जो जन्म-जन्मान्तर के लिए आपकी चेरी है, क्या इस क्रोध को सहन कर सकती है? मेरा दिल बहुत कमज़ोर है। मुझे रुलाकर आपको पश्चात्ताप के सिवा और क्या हाथ आयेगा। इस क्रोधाग्नि की एक चिनगारी मुझे भस्म कर देने के लिए काफी है, अगर आपकी यह इच्छा है कि मैं मर जाऊँ, तो मैं मरने के लिए तैयार हूँ; केवल आपका इशारा चाहती हूँ। अगर मरने से आपका चित्त प्रसन्न हो, तो मैं बड़े हर्ष से अपने को आपके चरणों पर समर्पित कर दूँगी; मगर इतना कहे बिना नहीं रहा जाता कि मुझमें सौ ऐब हों, पर एक गुण भी है—मुझे दावा है कि आपकी जितनी सेवा मैं कर सकती हूँ, उतनी कोई दूसरी स्त्री नहीं कर सकती। आप विद्वान् हैं, उदार हैं, मनोविज्ञान के पण्डित हैं, आपकी लौंडी आपके सामने खड़ी दया की भीख माँग रही है। क्या उसे द्वार से ठुकरा दीजिएगा?

आपकी अपराधिनी,
—कुसुम

यह पत्र पढ़कर मुझे रोमाञ्च हो आया। यह बात मेरे लिए असह्य थी कि कोई स्त्री अपने पति की इतनी ख़ुशामद करने पर मजबूर हो जाय। पुरुष अगर स्त्री से उदासीन रह सकता है, तो स्त्री उसे क्यों नहीं ठुकरा सकती? यह दुष्ट समझता है कि विवाह ने एक स्त्री को उसका ग़ुलाम बना दिया। वह उस अबला पर जितना अत्याचार चाहे करे, कोई उसका हाथ नहीं पकड़ सकता, कोई चूँ भी नहीं कर सकता। पुरुष अपनी दूसरी, तीसरी, चौथी शादी कर सकता है, स्त्री से कोई सम्बन्ध न रखकर भी उस पर उसी कठोरता से शासन कर सकता है। वह जानता है कि स्त्री कुल-मर्यादा के बन्धनों में जकड़ी हुई है, उसे रो-रोकर मर जाने के सिवा और कोई उपाय नहीं है। अगर उसे भय होता कि औरत भी उसकी ईंट का जवाब पत्थर से नहीं, ईंट से भी नहीं, केवल थप्पड़ से दे सकती है, तो उसे कभी इस बदमिज़ाजी का साहस न होता। बेचारी स्त्री कितनी विवश है! शायद मैं कुसुम की जगह होता, तो इस निष्ठुरता का जवाब इसकी दसगुनी कठोरता से देता। उसकी छाती पर मूँग दलता? संसार के हँसने के ज़रा भी चिन्ता न करता। समाज अबलाओं पर इतना जुल्म देख सकता है और चूँ तक नहीं करता, उसके रोने या हँसने की मुझे ज़रा भी परवाह न होती। अरे अभागे युवक! तुझे ख़बर नहीं, तू अपने भविष्य की गर्दन पर कितनी बेदर्दी से छुरी फेर रहा है? यह वह समय है, जब पुरुष को अपने प्रणय-भण्डार से स्त्री के माता-पिता, भाई-बहन, सखियाँ-सहेलियाँ, सभी के प्रेम की पूर्ति करनी पड़ती है। अगर पुरुष में यह सामर्थ्य नहीं है, तो स्त्री की क्षुधित आत्मा को कैसे सन्तुष्ट रख सकेगा? परिणाम वही होगा, जो बहुधा होता है। अबला कुढ़-कुढ़कर मर जाती है। यही वह समय है, जिसकी स्मृति जीवन में सदैव के लिए मिठास पैदा कर देती है। स्त्री की प्रेम-क्षुधा इतनी तीव्र होती है कि वह पति का स्नेह पाकर अपना जीवन सफल समझती है, और इस प्रेम के आधार पर जीवन के सारे कष्टों को हँस-खेल-कर सह लेती है। यही वह समय है, जब हृदय में प्रेम का बसन्त आता है और उसमें नयी-नयी आशा-कोपलें निकलने लगती हैं। ऐसा कौन निर्दयी है, जो इस ऋतु में उस वृक्ष पर कुल्हाड़ी चलायेगा! यही वह समय है, जब शिकारी किसी पक्षी को उसके बसेरे से लाकर पिंजरे में बन्द कर देता है। क्या वह उसकी गर्दन पर छुरी चलाकर उसका मधुर गान सुनने को आशा रखता है?

मैंने दूसरा पत्र पढ़ना शुरू किया।

मेरे जीवन-धन, दो सप्ताह जवाब की प्रतीक्षा करने के बाद आज फिर यह उलहना देने बैठी हूँ। जब मैंने वह पत्र लिखा था, तो मेरा मन गवाही दे रहा था कि उसका उत्तर ज़रूर आयेगा। आशा के विरुद्ध आशा लगाये हुए थी। मेरा मन अब भी इसे स्वीकार नहीं करता कि जान-बूझकर उसका उत्तर नहीं दिया। क़दाचित् आपको अवकाश नहीं मिला, या ईश्वर न करे, कहीं आप अस्वस्थ तो नहीं हो गये? किससे पूछूँ? इस विचार से ही मेरा हृदय काँप रहा है। मेरी ईश्वर से यही प्रार्थना है कि आप प्रसन्न और स्वस्थ हों। पत्र मुझे न

लिखें, न सही, रोकर चुप ही तो हो जाऊँगी। आपको ईश्वर का वास्ता है; अगर आपको किसी प्रकार का कष्ट हो, तो मुझे तुरन्त पत्र लिखिए, मैं किसी को साथ लेकर आ जाऊँगी। मर्यादा और परिपाटी के बन्धनों से मेरा जी घबराता है, ऐसी दशा में भी यदि आप मुझे अपनी सेवा से वञ्चित रखते हैं, तो आप मुझसे मेरा वह अधिकार छीन रहे हैं, जो मेरे जीवन की सबसे मूल्यवान् वस्तु है। मैं आपसे और कुछ नहीं माँगती, आप मुझे मोटे-से-मोटा खिलाइए, मोटे-से-मोटा पहनाइए, मुझे ज़रा भी शिकायत न होगी। मैं आपके साथ घोर से-घोर विपत्ति में भी प्रसन्न रहूँगी। मुझे आभूषणों की लालसा नहीं, महल में रहने की लालसा नहीं, सैर-तमाशे की लालसा नहीं, धन बटोरने की लालसा नहीं। मेरे जीवन का उद्देश्य केवल आपकी सेवा करना है। यही उसका ध्येय है। मेरे लिए दुनिया में कोई देवता नहीं, कोई गुरु नहीं, कोई हाकिम नहीं। मेरे देवता आप हैं, मेरे गुरु आप हैं, मेरे राजा आप हैं। मुझे अपने चरणों से न हटाइए, मुझे ठुकराइए नहीं। मैं सेवा और प्रेम के फूल लिए, कर्तव्य और व्रत की भेंट अञ्चल में सजाये आपकी सेवा में आयी हूँ। मुझे इस भेंट को, इन फूलों को अपने चरणों पर रखने दीजिए। उपासक का काम तो पूजा करना है। देवता उसकी पूजा स्वीकार करता है या नहीं, यह सोचना उसका धर्म नहीं।

मेरे सिरताज, शायद आपको पता नहीं, आजकल मेरी क्या दशा है। यदि मालूम होता, तो आप इस निष्ठुरता का व्यवहार न करते। आप पुरुष हैं, आपके हृदय में दया है, सहानुभूति है, उदारता है, मैं विश्वास नहीं कर सकती कि आप मुझ-जैसी नाचीज़ पर क्रोध कर सकते हैं। मैं आपकी दया के योग्य हूँ—कितनी दुर्बल, कितनी अपङ्ग, कितनी बेज़बान! आप सूर्य हैं, मैं अणु हूँ; आप अग्नि हैं मैं तृण हूँ; आप राजा हैं, मैं भिखारिन हूँ। क्रोध तो बराबरवालों पर करना चाहिए, मैं भला आपके क्रोध का आघात कैसे सह सकती हूँ? अगर आप समझते हैं कि मैं आपकी सेवा के योग्य नहीं हूँ, तो मुझे अपने हाथों से विष का प्याला दे दीजिए। मैं उसे सुधा समझकर सिर और आँखों से लगाऊँगी और आँखें बन्द करके पी जाऊँगी। जब यह जीवन आपकी भेंट हो गया, तो आप मारें या जिलायें, यह आपकी इच्छा है। मुझे यही सन्तोष

काफ़ी है कि मेरी मृत्यु से आप निश्चिन्त हो गये। मैं तो इतना ही जानती हूँ कि मैं आपकी हूँ और सदैव आपकी रहूँगी; इस जीवन में ही नहीं, बल्कि अनन्त तक।

अभागिनी,
—कुसुम

यह पत्र पढ़कर मुझे कुसुम पर भी झुँझलाहट आने लगी और उस लौंडे से तो घृणा हो गयी। माना, तुम स्त्री हो, आजकल के प्रथानुसार पुरुष को तुम्हारे ऊपर हर तरह का अधिकार है; लेकिन नम्रता की भी तो कोई सीमा होती है? स्त्री में कुछ तो मान, कुछ अकड़ होनी चाहिए। अगर पुरुष उससे ऐंठता है, तो उसे भी चाहिए कि उसकी बात न पूछे। स्त्रियों को धर्म और त्याग का पाठ पढ़ा-पढ़ाकर हमने उनके आत्म-सम्मान और आत्म-विश्वास दोनों ही का अन्त कर दिया। अगर पुरुष स्त्री का मुहताज नहीं, तो स्त्री भी पुरुष की मुहताज क्यों हो? ईश्वर ने पुरुष को हाथ दिये हैं, तो क्या स्त्री को उससे वंचित रखा है? पुरुष के पास बुद्धि है, तो क्या स्त्री अबोध है? इसी नम्रता ने दो मरदों का मिजाज आसमान पर पहुँचा दिया। पुरुष रूठ गया, तो स्त्री के लिये मानो प्रलय आ गया। मैं तो समझता हूँ, कुसुम नहीं, उसका अभागा पति ही दया के योग्य है, जो कुसुम-जैसी स्त्री-रत्न की कद्र नहीं कर सकता। मुझे ऐसा सन्देह होने लगा कि इस लौंडे ने कोई दूसरा रोग पाल रखा है। किसी शिकारी के रङ्गीन जाल में फँसा हुआ है।

खैर, मैंने तीसरा पत्र खोला—

प्रियतम; अब मुझे मालूम हो गया कि मेरी जिन्दगी निरुद्देश्य है। जिस फूल को देखनेवाला, चुननेवाला कोई नहीं, वह खिले तो क्यों? क्या इसीलिए कि मुरझाकर जमीन पर गिर पड़े और पैरों से कुचल दिया जाय? मैं आपके घर में एक महीना रहकर दोबारा आयी हूँ। ससुरजी ही ने मुझे बुलाया, ससुरजी ही ने मुझे बिदा कर दिया। इतने दिनों में आपने एक बार भी मुझे दर्शन न दिये। आप दिन में बीसों ही बार घर में आते थे, अपने भाई-बहनों से हँसते-बोलते थे, या मित्रों के साथ सैर-तमाशे देखते थे; लेकिन मेरे पास आने की आपने कसम खा ली थी। मैंने कितनी बार आपके पास सन्देशे भेजे,

कितना अनुनय-विनय किया, कितनी बार बेशर्मी करके आपके कमरे में गयी; लेकिन आपने कभी मुझे आँख उठाकर भी न देखा। मैं तो कल्पना ही नहीं कर सकती कि कोई प्राणी इतना हृदयहीन हो सकता है। प्रेम के योग्य नहीं, विश्वास के योग्य नहीं, सेवा करने के भी योग्य नहीं, तो क्या दया के भी योग्य नहीं? मैंने उस दिन कितनी मेहनत और प्रेम से आपके लिए रसगुल्ले बनाये थे। आपने उन्हें हाथ से छुआ भी नहीं। जब आप मुझसे इतने विरक्त हैं, तो मेरी समझ में नहीं आता कि जीकर क्या करूँ? न-जाने वह कौन-सी आशा है, जो मुझे जीवित रखे हुए है। क्या अन्धेर है कि आप सजा तो देते हैं; पर अपराध नहीं बतलाते। यह कौन-सी नीति है? आपको ज्ञात है, इस एक मास में मैंने मुश्किल से दस दिन आपके घर में भोजन किया होगा। मैं इतनी कमजोर होगयी हूँ कि चलती हूँ तो आँखों के सामने अँधेरा छा जाता है। आँखों में जैसे ज्योति ही नहीं रही। हृदय में मानो रक्त का संचालन ही नहीं रहा। खैर, सता लीजिए, जितना जी चाहे। इस अनीति का अन्त भी एक दिन हो ही जायगा। अब तो मृत्यु ही पर सारी आशाएँ टिकी हुई हैं। अब मुझे प्रतीत हो रहा है कि मेरे मरने की खबर पाकर आप उछलेंगे और हल्की साँस लेंगे, आपकी आँखों से आँसू की एक बूँद भी न गिरेगी; पर यह आपका दोष नहीं, मेरा दुर्भाग्य है। उस जन्म में मैंने कोई बहुत बड़ा पाप किया था। मैं चाहती हूँ, मैं भी आपकी परवाह न करूँ, आप ही की भाँति आपसे आँखें फेर लूँ, मुँह फेर लूँ, दिल फेर लूँ; लेकिन न-जाने क्यों मुझमें वह शक्ति नहीं है। क्या लता वृक्ष की भाँति खड़ी रह सकती है? वृक्ष के लिए किसी सहारे की ज़रूरत नहीं। लता वह शक्ति कहाँ से लाये? वह तो वृक्ष से लिपटने के लिए पैदा की गयी है। उसे वृक्ष से अलग कर दो और वह सूख जायगी। मैं आपसे पृथक् अपने अस्तित्व की कल्पना ही नहीं कर सकती। मेरे जीवन की हर एक गति, प्रत्येक विचार, प्रत्येक कामना में आप मौजूद होते हैं। मेरा जीवन वह वृत्त है, जिसके केन्द्र आप हैं। मैं वह हार हूँ, जिसके प्रत्येक फूल में आप धागे की भाँति घुसे हैं। उस धागे के बगैर हार के फूल बिखर जायँगे और धूल में मिल जायँगे।

मेरी एक सहेली है शन्नो। उसका इस साल पाणिग्रहण हो गया है।

उसका पति जब ससुराल आता है, शन्नो के पाँव जमीन पर नहीं पड़ते। दिन-भर में न-जाने कितने रूप बदलती है। मुख-कमल खिल जाता है। उल्लास सँभाले नहीं सँभलता। उसे बिखेरती, लुटाती चलती है—हम-जैसे अभागों के लिए। जब आकर मेरे गले से लिपट जाती है, तो हर्ष और उन्माद की वर्षा से जैसे मैं लथपथ हो जाती हूँ। दोनों अनुराग से मतवाले हो रहे हैं। उनके पास धन नहीं है, जायदाद नहीं है। मगर अपनी दरिद्रता में ही मगन हैं। इस अखण्ड प्रेम का एक क्षण! उसकी तुलना में संसार की कौन-सी वस्तु रखी जा सकती है? मैं जानती हूँ, यह रँगरेलियाँ जौर बेफिक्रियाँ बहुत दिन न रहेंगी। जीवन की चिन्ताएँ और दुराशाएँ उन्हें भी परास्त कर देंगी, लेकिन ये मधुर स्मृतियाँ संचित धन की भाँति अन्त तक उन्हें सहारा देती रहेंगी। प्रेम में भीगी हुई सूखी रोटियाँ, प्रेम में रँगे हुए मोटे कपड़े और प्रेम के प्रकाश से आलोकित छोटीसी कोठरी, अपनी इस विपन्नता में भी वह स्वाद, वह शोभा और वह विश्राम रखती है, जो शायद देवताओं को स्वर्ग में भी नसीब नहीं। जब शन्नो का पति अपने घर चला जाता है, तो वह दुखिया किस तरह फूट-फूटकर रोती है कि मेरा हृदय गद्गद हो जाता है। उसके पत्र आ जाते हैं, तो मानो उसे कोई विभूति मिल जाती है। उसके रोने में भी, उसकी विफलताओं में भी, उसके उपालम्भों में भी एक स्वाद है, एक रस है। उसके आँसू व्यग्रता और विह्वलता के हैं, मेरे आँसू निराशा और दुःख के। उसकी व्याकुलता में प्रतीक्षा और उल्लास है, मेरी व्याकुलता में दैन्य और परवशता। उसके उपालम्भ में अधिकार और ममता है, मेरे उपालम्भ में भग्नता और रुदन।

पत्र लम्बा हुआ जाता है और दिल का बोझ हलका नहीं होता। भयङ्कर गरमी पड़ रही है। दादा मुझे मसूरी ले जाने का विचार कर रहे हैं। मेरी दुर्बलता से उन्हें 'टी० बी०' का सन्देह हो रहा है। वह नहीं जानते कि मेरे लिए मसूरी नहीं, स्वर्ग भी कालकोठरी है।

अभागिनी,

—कुसुम

मेरे पत्थर के देवता, कल मसूरी से लौट आयी। लोग कहते हैं, बड़ा

स्वास्थ्यवर्द्धक और रमणीक स्थान है, होगा। मैं तो एक दिन भी कमरे से नहीं निकली। भग्न-हृदयों के लिए संसार सूना है।

मैंने रात एक-बड़े मजे का सपना देखा। बतलाऊँ; पर क्या फायदा? न-जाने क्यों मैं अब भी मौत से डरती हूँ। आशा का कच्चा धागा मुझे अब भी जीवन से बाँधे हुए है। जीवन-उद्यान के द्वार पर जाकर बिना सैर किये लौट आना कितना हसरतनाक है। अन्दर क्या सुषमा है, क्या आनन्द है। मेरे लिए वह द्वार ही बन्द है। कितनी अभिलाषाओं से विहार का आनन्द उठाने चली थी—कितनी तैयारियों से—पर मेरे पहुँचते ही द्वार बन्द हो गया है।

अच्छा बतलाओ, मैं मर जाऊँगी तो मेरी लाश पर आँसू की दो बूँदें गिराओगे? जिसकी जिन्दगी-भर की जिम्मेदारी ली थी, जिसकी सदैव के लिए बाँह पकड़ी थी, क्या उसके साथ इतनी भी उदारता न करोगे? मरने-वालों के अपराध सभी क्षमा कर दिया करते हैं। तुम भी क्षमा कर देना। आकर मेरे शव को अपने हाथों से नहलाना, अपने हाथ से सोहाग के सिन्दूर लगाना, अपने हाथ से सोहाग की चूड़ियाँ पहनाना, अपने हाथ से मेरे मुँह में गंगाजल डालना, दो-चार पग कन्धा दे देना, बस, मेरी आत्मा सन्तुष्ट हो जायगी और तुम्हें आशीर्वाद देगी। मैं वचन देती हूँ कि मालिक के दरबार में तुम्हारा यश गाऊँगी। क्या यह भी महँगा सौदा है? इतने-से शिष्टाचार से तुम अपनी सारी जिम्मेदारियों से मुक्त हुए जाते हो! आह! मुझे विश्वास होता कि तुम इतना शिष्टाचार करोगे, तो मैं कितनी खुशी से मौत का स्वागत करती। लेकिन मैं तुम्हारे साथ अन्याय न करूँगी। तुम कितने ही निष्ठुर हो, इतने निर्दयी नहीं हो सकते। मैं जानती हूँ; तुम यह समाचार पाते ही आओगे और शायद एक क्षण के लिए मेरी शोक-मृत्यु पर तुम्हारी आँखें रो पड़ें! कहीं मैं अपने जीवन में वह शुभ अवसर देख सकती!

अच्छा, क्या मैं एक प्रश्न पूछ सकती हूँ? नाराज़ न होना। क्या मेरी जगह किसी और सौभाग्यवती ने लेली है? अगर ऐसा है, तो बधाई! ज़रा उसका चित्र मेरे पास भेज देना। मैं उसकी पूजा करूँगी, उसके चरणों पर शीश नवाऊँगी। मैं जिस देवता को प्रसन्न न कर सकी, उसी देवता से उसने वरदान प्राप्त कर लिया। ऐसी सौभागिनी के तो चरण धो-धो पीना चाहिए। मेरी

हार्दिक इच्छा है कि तुम उसके साथ सुखी रहो। यदि मैं उस देवी की कुछ सेवा कर सकती, अपरोक्ष न सही, परोक्ष रूप से ही तुम्हारे कुछ काम आ सकती। तुम मुझे केवल उसका शुभ नाम और स्थान बता दो, मैं सिर के बल दौड़ी हुई उसके पास जाऊँगी और कहूँगी—देवी, तुम्हारी लौंडी हूँ, इसलिए कि तुम मेरे स्वामी की प्रेमिका हो। मुझे अपने चरणों में शरण दो। मैं तुम्हारे लिए फूलों की सेज बिछाऊँगी, तुम्हारी माँग मोतियों से भरूँगी, तुम्हारी एड़ियों में महावर रचाऊँगी—यही मेरे जीवन की साधना होगी! यह न समझना कि मैं जलूँगी या कुढूँगी। जलन तब होती है, जब कोई मुझसे मेरी वस्तु छीन रहा हो। जिस वस्तु को अपना समझने का मुझे कभी सौभाग्य न हुआ, उसके लिए मुझे जलन क्यों हो?

अभी बहुत कुछ लिखना था; लेकिन डाक्टर साहब आ गये हैं। बेचारा हृदय-दाह को टी० बी० समझ रहा है।

दुःख की सतायी हुई,
—कुसुम

इन दोनों पत्रों ने मेरे धैर्य का प्याला भर दिया। मैं बहुत ही आवेशहीन आदमी हूँ। भावुकता मुझे छू भी नहीं गयी। अधिकांश कलाविदों की भाँति मैं भी शब्दों से आन्दोलित नहीं होता। क्या वस्तु दिल से निकलती है, क्या वस्तु केवल मर्म को स्पर्श करने के लिए लिखी गई है यह भेद बहुधा मेरे साहित्यिक आनन्द में बाधक हो जाता है, लेकिन इन पत्रों ने मुझे आपे से बाहर कर दिया। एक स्थान पर तो सचमुच मेरी आँखें भर आयीं। यह भावना कितनी वेदनापूर्ण थी कि वही बालिका, जिस पर माता-पिता प्राण छिड़कते रहते थे, विवाह होते ही इतनी विपदग्रस्त हो जाय! विवाह क्या हुआ, मानों उसकी चिता बनी, या उसकी मौत का परवाना लिखा गया। इसमें सन्देह नहीं कि ऐसी वैवाहिक दुर्घटनाएँ कम होती हैं; लेकिन समाज की वर्तमान दशा में उनकी सम्भावना बनी रहती है। जब तक स्त्री-पुरुष के अधिकार समान न होंगे, ऐसे आघात नित्य होते रहेंगे। दुर्बल को सताना कदाचित् प्राणियों का स्वभाव है। काटनेवाले कुत्तों से लोग दूर भागते हैं, सीधे कुत्ते पर बाल-वृन्द विनोद के लिए पत्थर फेकते हैं। तुम्हारे दो नौकर एक ही श्रेणी के हों,

उनमें कभी झगड़ा न होगा; लेकिन आज उनमें से एक को अफसर और दूसरे को उसका मातहत बना दो, फिर देखो, अफसर साहब अपने मातहत पर कितना रोब जमाते हैं। सुखमय दाम्पत्य की नींव अधिकार-साम्य ही पर रखी जा सकती है। इस वैषम्य में प्रेम का निवास हो सकता है, मुझे तो इसमें सन्देह है। हम आज जिसे स्त्री-पुरुषों में प्रेम कहते हैं, वह वही प्रेम है, जो स्वामी को अपने पशु से होता है। पशु सिर झुकाये काम किये चला जाय, स्वामी उसे भूसा और खली भी देगा, उसकी देह भी सहलायेगा, उसे आभूषण भी पहनायेगा; लेकिन जानवर ने जरा चाल धीमी की, जरा गर्दन टेढ़ी की कि मालिक का चाबुक पीठ पर पड़ा। इसे प्रेम नहीं कहते।

खैर, मैंने पाँचवाँ पत्र खोला—

जैसा मुझे विश्वास था, आपने मेरे पिछले पत्र का भी उत्तर न दिया। इसका खुला हुआ अर्थ यह है कि आपने मुझे परित्याग करने का संकल्प पर लिया है। जैसी आपकी इच्छा। पुरुष के लिए स्त्री पाँव की जूती है, स्त्री के लिए तो पुरुष देवतुल्य है, बल्कि देवता से भी बढ़कर। विवेक का उदय होते ही वह पति की कल्पना करने लगती है। मैंने भी वही किया। जिस समय मैं गुड़ियाँ खेलती थी, उसी समय आपने गुड्डे के रूप में मेरे मनोदेश में प्रवेश किया। मैंने आपके चरणों को पखारा, माला-फूल और नैवेद्य से आपका सत्कार किया। कुछ दिनों के बाद कहानियाँ सुनने और पढ़ने की चाट पड़ी, तब आप कथाओं के नायक के रूप में मेरे घर आये। मैंने आपको हृदय में स्थान दिया। बाल्यकाल ही से आप किसी-न-किसी रूप में मेरे जीवन में घुसे हुए थे। वे भावनाएँ मेरे अन्तस्तल की गहराइयों तक पहुँच गयी हैं। मेरे अस्तित्व का एक एक अणु उन भावनाओं से गुँथा हुआ है। उन्हें दिल से निकाल डालना सहज नहीं है। उसके साथ मेरे जीवन के परमाणु भी बिखर जायँगे, लेकिन आपकी यही इच्छा है तो यही सही। मैं आपकी सेवा में सब कुछ करने को तैयार थी। अभाव और विपन्नता का तो कहना ही क्या, मैं तो अपने को मिटा देने को भी राजी थी। आपकी सेवा में मिट जाना ही मेरे जीवन का उद्देश्य था। मैंने लज्जा और सङ्कोच का परित्याग किया, आत्म-सम्मान को पैरों से कुचला, लेकिन आप मुझे स्वीकार नहीं करना चाहते। मजबूर हूँ। आपका कोई दोष नहीं।

अवश्य मुझसे कोई ऐसी बात हो गयी है, जिसने आपको इतना कठोर बना दिया है। आप उसे जबान पर लाना भी उचित नहीं समझते। मैं इस निष्ठुरता के सिवा और हर एक सजा झेलने को तैयार थी। आपके हाथ से जहर का प्याला लेकर पी जाने में मुझे विलम्ब न होता, किन्तु विधि की गति निराली है! मुझे पहले इस सत्य के स्वीकार करने में बाधा थी कि स्त्री पुरुष की दासी है। मैं उसे पुरुष की सहचरी, अर्द्धाङ्गिनी समझती थी, पर अब मेरी आँखें खुल गयीं। मैंने कई दिन हुए एक पुस्तक में पढ़ा था कि आदिकाल में स्त्री पुरुष की उसी तरह सम्पत्ति थी, जैसा गाय-बैल या खेत-बारी। पुरुष को अधिकार था स्त्री को बेचे, गिरों रखे या मार डाले। विवाह की प्रथा उस समय केवल यह थी कि वर-पक्ष अपने सूर-सामन्तों को लेकर सशस्त्र आता था और कन्या को उड़ा ले जाता था। कन्या के साथ कन्या के घर में रुपया-पैसा, अनाज या पशु जो कुछ उसके हाथ लग जाता था, उसे भी उठा ले जाता था। वह स्त्री को अपने घर ले जाकर, उसके पैरों में बेड़ियाँ डालकर घर के अन्दर बन्द कर देता था। उसके आत्म-सम्मान के भावों को मिटाने के लिए यह उपदेश दिया जाता था कि पुरुष ही उसका देवता है, सोहाग स्त्री की सबसे बड़ी विभूति है। आज कई हजार वर्षों के बीतने पर पुरुष के उस मनोभाव में कोई परिवर्तन नहीं हुआ। पुरानी सभी प्रथाएँ कुछ विकृत या संस्कृत रूप में मौजूद हैं। आज मुझे मालूम हुआ कि उस लेखक ने स्त्री-समाज की दशा का कितना सुन्दर निरूपण किया था।

अब आपसे मेरा सविनय अनुरोध है और यही अन्तिम अनुरोध है कि आप मेरे पत्रों को लौटा दें। आपके दिये हुए गहने और कपड़े अब मेरे किसी काम के नहीं। इन्हें अपने पास रखने का मुझे कोई अधिकार नहीं। आप जिस समय चाहें, वापस मँगवा लें। मैंने उन्हें एक पेटारी में बन्द करके अलग रख दिया है। उसकी सूची भी वहीं रखी हुई है, मिला लीजिएगा। आज से आप मेरी जबान या कलम से कोई शिकायत न सुनेंगे। इस भ्रम को भूलकर भी दिल में स्थान न दीजिएगा कि मैं आपसे बेवफाई या विश्वासघात करूँगी। मैं इसी घर में कुढ़-कुढ़कर मर जाऊँगी, पर आपकी ओर से मेरा मन कभी मैला न होगा। मैं जिस जलवायु में पली हूँ, उसका मूल तत्व है

पति में श्रद्धा। ईर्ष्या या जलन भी उस भावना को मेरे दिल से नहीं निकाल सकती। मैं आपकी कुल-मर्यादा की रक्षिका हूँ। उस अमानत में जीते-जी खयानत न करूँगी। अगर मेरे बस में होता, तो मैं उसे भी वापस कर देती, लेकिन यहाँ मैं भी मजबूर हूँ और आप भी मजबूर हैं। मेरी ईश्वर से यही विनती है कि आप जहाँ रहें, कुशल से रहें। जीवन में मुझे सबसे कटु अनुभव जो हुआ, वह यही है कि नारी-जीवन अधम है—अपने लिए, अपने माता-पिता के लिए, अपने पति के लिए। उसकी कदर न माता के घर में है, न पति के घर में। मेरा घर शोकागार बना हुआ है। अम्माँ रो रही हैं, दादा रो रहे हैं, कुटुम्ब के लोग रो रहे हैं, एक मेरी ज़ात से लोगों को कितनी मानसिक वेदना हो रही है, कदाचित् वे सोचते होंगे, यह कन्या कुल में न आती तो अच्छा होता। मगर सारी दुनिया एक तरफ हो जाय, आपके ऊपर विजय नहीं पा सकती। आप मेरे प्रभु हैं। आपका फैसला अटल है। उसकी कहीं अपील नहीं, कहीं फरियाद नहीं। खैर, आज से यह काण्ड समाप्त हुआ। अब मैं हूँ और मेरा दलित, भग्न हृदय। हसरत यही है कि आपकी कुछ सेवा न कर सकी!

अभागिनी,
—कुसुम

(२)

मालूम नहीं, मैं कितनी देर तक मूक वेदना की दशा में बैठा रहा कि महाशय नवीन बोले—आपने इन पत्रों को पढ़कर क्या निश्चय किया?

मैंने रोते हुए हृदय से कहा—अगर इन पत्रों ने उस नर-पिशाच के दिल पर कोई असर न किया, तो मेरा पत्र भला क्या असर करेगा? इससे अधिक करुणा और वेदना मेरी शक्ति के बाहर है। ऐसा कौन-सा धार्मिक भाव है, जिसे इन पत्रों में स्पर्श न किया गया हो। दया, लज्जा, तिरस्कार, न्याय, मेरे विचार में तो कुसुम ने कोई पहलू नहीं छोड़ा। मेरे लिए अब यही अन्तिम उपाय है कि उस शैतान के सिर पर सवार हो जाऊँ और उससे मुँह-दर-मुँह बातें करके इस समस्या की तह तक पहुँचने की चेष्टा करूँ। अगर उसने मुझे कोई सन्तोषप्रद उत्तर न दिया, तो मैं उसका और अपना खून एक कर दूँगा।

या तो मुझीको फाँसी होगी, या वही कालेपानी जायगा। कुसुम ने जिस धैर्य और साहस से काम लिया है, वह सराहनीय है। आप उसे सान्त्वना दीजिएगा। मैं आज रात की गाड़ी से मुरादाबाद जाऊँगा और परसों तक जैसी कुछ परिस्थिति होगी, उसकी आपको सूचना दूँगा! मुझे तो यह कोई चरित्रहीन और बुद्धिहीन युवक मालूम होता है।

मैं उस बहक में जाने क्या-क्या बकता रहा। इसके बाद हम दोनों भोजन करके स्टेशन चले। वह आगरे गये, मैंने मुरादाबाद का रास्ता लिया। उनके प्राण अब भी सूखे जाते थे कि क्रोध के आवेश में कोई पागलपन न कर बैठूँ। मेरे बहुत समझाने पर उनका चित्त शान्त हुआ।

मैं प्रातःकाल मुरादाबाद पहुँचा और जाँच शुरू कर दी। इस युवक के चरित्र के विषय में मुझे जो सन्देह था, वह गलत निकला। महल्ले में, कालेज में, उसके इष्ट-मित्रों में, सभी उसके प्रशंसक थे। अँधेरा और गहरा होता हुआ जान पड़ा। सन्ध्या-समय मैं उसके घर जा पहुँचा। जिस निष्कपट भाव से वह दौड़कर मेरे पैरों पर झुका है, वह मैं नहीं भूल सकता। ऐसा वाक्-चतुर, ऐसा सुशील और विनीत युवक मैंने नहीं देखा। बाहर और भीतर में इतना आकाश-पाताल का अन्तर मैंने कभी न देखा था। मैंने कुशल-क्षेम और शिष्टाचार के दो-चार वाक्यों के बाद पूछा—तुमसे मिलकर चित्त प्रसन्न हुआ; लेकिन आखिर कुसुम ने क्या अपराध किया है, जिसका तुम उसे इतना कठोर दण्ड दे रहे हो? उसने तुम्हारे पास कई पत्र लिखे, तुमने एक का भी उत्तर न दिया। वह दो-तीन बार यहाँ भी आयी, पर तुम उससे बोले तक नहीं। क्या उस निर्दोष बालिका के साथ तुम्हारा यह अन्याय नहीं है?

युवक ने लज्जित भाव से कहा—बहुत अच्छा होता कि आपने इस प्रश्न को न उठाया होता। उसका जवाब देना मेरे लिए बहुत मुश्किल है। मैंने तो इसे आप लोगों के अनुमान पर छोड़ दिया था; लेकिन इस गलतफ़हमी को दूर करने के लिए मुझे विवश होकर कहना पड़ेगा।

यह कहते-कहते वह चुप हो गया। बिजली की बत्ती पर भाँति-भाँति के कीट-पतंगे जमा हो गये थे। कई झींगुर उछल-उछलकर मुँह पर आ जाते थे, और जैसे मनुष्य पर अपनी विजय का परिचय देकर उड़ जाते थे। एक बड़ा-

सा अँखफोड़ भी मेज पर बैठा था और शायद जस्त मारने के लिए अपनी देह तौल रहा था। युवक ने एक पंखा लाकर मेज पर रख दिया, जिसने विजयी कीटपतंगों को दिखा दिया कि मनुष्य इतना निर्बल नहीं है, जितना वे समझ रहे थे। एक क्षण में मैदान साफ हो गया और हमारी बातों में दखल देनेवाला कोई न रहा।

युवक ने सकुचाते हुए कहा—सम्भव है, आप मुझे अत्यन्त लोभी, कमीना और स्वार्थी समझें; लेकिन यथार्थ यह है कि इस विवाह से मेरी वह अभिलाषा न पूरी हुई, जो मुझे प्राणों से भी प्रिय थी। मैं विवाह पर रजामन्द न था, अपने पैरों में बेड़ियाँ न डालना चाहता था; किन्तु जब महाशय नवीन बहुत पीछे पड़ गये और उनकी बातों से मुझे यह आशा हुई कि वह सब प्रकार से मेरी सहायता करने को तैयार हैं, तब मैं राजी हो गया; पर विवाह होने के बाद उन्होंने मेरी बात भी न पूछी। मुझे एक पत्र भी न लिखा कि कब तक वह मुझे विलायत भेजने का प्रबन्ध कर सकेंगे। हालाँकि मैंने अपनी इच्छा उन पर पहले ही प्रकट कर दी थी; पर उन्होंने मुझे निराश करना ही उचित समझा। उनकी इस अकृपा ने मेरे सारे मनसूबे धूल में मिला दिये। मेरे लिए अब इसके सिवा और क्या रह गया है कि एल० एल० बी० पास कर लूँ और कचहरी में जूती फटफटाता फिरूँ।

मैंने पूछा—तो आखिर तुम नवीनजी से क्या चाहते हो? लेन-देन में तो उन्होंने शिकायत का कोई अवसर नहीं दिया। तुम्हें विलायत भेजने का खर्च तो शायद उनके काबू से बाहर हो।

युवक ने सिर झुकाकर कहा—तो यह उन्हें पहले ही मुझसे कह देना चाहिए था। फिर मैं विवाह ही क्यों करता? उन्होंने चाहे कितना ही खर्च कर डाला हो; पर इससे मेरा क्या उपकार हुआ? दोनों तरफ से दस-बारह हजार रुपये खाक में मिल गये और उनके साथ मेरी अभिलाषाएँ खाक में मिल गयीं। पिताजी पर तो कई हजार का ऋण हो गया है। वह अब मुझे इङ्गलैंड नहीं भेज सकते। क्या पूज्य नवीनजी चाहते तो मुझे इङ्गलैंड न भेज देते? उनके लिए दस-पाँच हजार की कोई हकीकत नहीं।

मैं सन्नाटे में आ गया। मेरे मुँह से अनायास निकल गया—छिः! वाह

री दुनिया! और वाह रे हिन्दू-समाज! तेरे यहाँ ऐसे-ऐसे स्वार्थ के दास पड़े हुए हैं, जो एक अबला का जीवन सङ्कट में डालकर, उसके पिता पर ऐसा अत्याचार पूर्ण दबाव डालकर ऊँचा पद प्राप्त करना चाहते हैं। विद्यार्जन के लिए विदेश जाना बुरा नहीं। ईश्वर सामर्थ्य दे तो शौक से जाओ; किन्तु पत्नी का परित्याग करके ससुर पर इसका भार रखना निर्लज्जता की पराकाष्ठा है। तारीफ की बात तो तब थी कि तुम अपने पुरुषार्थ से जाते। इस तरह किसी की गर्दन पर सवार होकर, अपना आत्म-सम्मान बेचकर गये तो क्या गये? इस पामर की दृष्टि में कुसुम का कोई मूल्य ही नहीं। वह केवल उसकी स्वार्थ-सिद्धि का साधन-मात्र है। ऐसे नीच प्रकृति के आदमी से कुछ तर्क करना व्यर्थ था। परिस्थिति ने हमारी चुटिया उसके हाथ में दे रखी थी और हमें उसके चरणों पर सिर झुकाने के सिवाय और कोई उपाय न था।

दूसरी गाड़ी से मैं आगरे जा पहुँचा और नवीनजी से यह वृत्तान्त कहा। उन बेचारे को क्या मालूम था कि यहाँ सारी जिम्मेदारी उन्हींके सिर डाल दी गयी है। यद्यपि इस मन्दी ने उनकी वकालत भी ठण्डी कर रखी है और वह दस-पाँच हजार का खर्च सुगमता से नहीं उठा सकते लेकिन इस युवक ने उनसे इसका संकेत भी किया होता, तो वह अवश्य कोई-न-कोई उपाय करते। कुसुम के सिवा दूसरा उनका कौन बैठा हुआ है? उन बेचारे को तो इस बात का ज्ञान ही न था। अतएव मैंने ज्योंही उनसे यह समाचार कहा, तो वह बोल उठे—छिः! इस जरा-सी बात को इस भले आदमी ने इतना तूल दे दिया। आप आज ही उसे लिख दें कि वह जिस वक्त जहाँ पढ़ने के लिए जाना चाहे, शौक से जा सकता है। मैं उसका सारा भार स्वीकार करता हूँ। साल-भर तक निर्दयी ने कुसुम को रुला-रुलाकर मार डाला।

घर में इसकी चर्चा हुई। कुसुम ने भी माँ से सुना। मालूम हुआ, एक हजार का चेक उसके पति के नाम भेजा जा रहा है; पर इस तरह, जैसे किसी सङ्कट का मोचन करने के लिए अनुष्ठान किया जा रहा हो।

कुसुम ने भृकुटी सिकोड़कर माँ से कहा—अम्माँ, दादा से कह दो, कहीं रुपये भेजने की जरूरत नहीं।

माता ने विस्मित होकर बालिका की ओर देखा—कैसे रुपये? अच्छा!

वह ! क्यों इसमें क्या हर्ज है ? लड़के का मन है, तो विलायत जाकर पढ़े। हम क्यों रोकने लगे ? यों भी उसीका है, वों भी उसीका है। हमें कौन छाती पर लादकर ले जाना है ?

'नहीं, आप दादा से कह दीजिए, एक पाई न भेजें।'

'आखिर इसमें क्या बुराई है ?'

'इसीलिए कि यह उसी तरह की डाकाजनी है, जैसी बदमाश लोग किया करते हैं। किसी आदमी को पकड़कर ले गये और उसके घरवालों से उसके मुक्तिधन के तौर पर अच्छी रकम ऐंठ ली।'

माता ने तिरस्कार की आँखों से देखा।

'कैसी बातें करती हो बेटी ? इतने दिनों के बाद तो जाके देवता सीधे हुए हैं, और तुम उन्हें फिर चिढ़ाये देती हो।'

कुसुम ने झल्लाकर कहा—ऐसे देवता का रूठे रहना ही अच्छा। जो आदमी इतना स्वार्थी, इतना दम्भी, इतना नीच है, उसके साथ मेरा निर्वाह न होगा। मैं कहे देती हूँ, वहाँ रुपये गये, तो मैं जहर खा लूँगी। इसे दिल्लगी न समझना। मैं ऐसे आदमी का मुँह भी नहीं देखना चाहती। दादा से कह देना और अगर तुम्हें डर लगता हो, तो मैं खुद कह दूँ। मैंने स्वतन्त्र रहने का निश्चय कर लिया है।

माँ ने देखा, लड़की का मुखमण्डल आरक्त हो उठा है। मानो इस प्रश्न पर वह न कुछ कहना चाहती है, न सुनना।

दूसरे दिन नवीनजी ने यह हाल मुझसे कहा, तो मैं एक आत्मविस्मृत की दशा में दौड़ा हुआ गया और कुसुम को गले लगा लिया। मैं नारियों में ऐसा ही आत्माभिमान देखना चाहता हूँ। कुसुम ने वही कर दिखाया, जो मेरे मन में था और जिसे प्रकट करने का साहस मुझमें न था।

साल-भर हो गया है, कुसुम ने पति के पास एक पत्र भी नहीं लिखा और न उसका जिक्र ही करती है। नवीनजी ने कई बार जमाई को मना लाने की इच्छा प्रकट की; पर कुसुम उसका नाम भी सुनना नहीं चाहती। उसमें स्वावलम्बन की ऐसी दृढ़ता आ गयी है कि आश्चर्य होता है। उसके मुख पर निराशा और वेदना के पीलेपन और तेजहीनता की जगह स्वाभिमान और स्वतन्त्रता की लाली और तेजस्विता भासित हो गयी है।

खुदाई फौजदार

सेठ नानकचन्द को आज फिर फिर वही लिफाफा मिला और वही लिखावट सामने आयी तो उनका चेहरा पीला पड़ गया। लिफाफा खोलते हुए हाथ और हृदय दोनों काँपने लगे। खत में क्या है, यह उन्हें खूब मालूम था। इसी तरह के दो खत पहले पा चुके थे। इस तीसरे खत में भी वही धमकियाँ हैं, इसमें उन्हें सन्देह न था। पत्र हाथ में लिये हुए आकाश की ओर ताकने लगे। वह दिल के मजबूत आदमी थे, धमकियों से डरना उन्होंने न सीखा था, मुर्दों से भी अपनी रकम वसूल कर लेते थे। दया या उपकार-जैसी मानवीय दुर्बलताएँ उन्हें छू भी न गयी थीं, नहीं तो महाजन ही कैसे बनते ! उसपर धर्मनिष्ठ भी थे। हर पूर्णमासी को सत्यनारायण की कथा सुनते थे। हर मंगल को महावीर जी को लड्डू चढ़ाते थे, नित्य-प्रति जमुना में स्नान करते थे और हर एकादशी को व्रत रखते और ब्राह्मणों को भोजन कराते थे। और इधर जबसे घी में करारा नफा होने लगा था, एक धर्मशाला बनवाने की फिक्र में थे। जमीन ठीक कर ली थी। उनके असामियों में सैकड़ों ही थवई और बेलदार थे, जो केवल सूद में काम करने को तैयार थे। इन्तज़ार यही था कि कोई ईंट और चूनेवाला फँस जाय और दस-बीस हजार का दस्तावेज लिखा ले, तो सूद में ईंट और चूना भी मिल जाय। इस धर्म-निष्ठा ने उनकी आत्मा को और भी शक्ति प्रदान कर दी थी। देवताओं के आशीर्वाद और प्रताप से उन्हें कभी किसी सौदे में घाटा नहीं हुआ और भीषण परिस्थितियों में भी वह स्थिरचित्त रहने के आदी थे; किन्तु जबसे यह धमकियों से भरे हुए पत्र मिलने लगे थे, उन्हें बरबस तरह-तरह की शंकाएँ व्यथित करने लगी थीं। कहीं सचमुच डाकुओं ने छापा मारा, तो कौन उनकी सहायता करेगा ? दैवी बाधाओं में तो देवताओं की सहायता पर वह तकिया कर सकते थे; पर सिर पर लटकती हुई इस तलवार के सामने वह श्रद्धा कुछ काम न देती थी। रात को उनके द्वार पर केवल एक चौकीदार रहता है। अगर दस-बीस हथियार-बन्द आदमी आ जायँ, तो वह अकेला क्या कर सकता है ? शायद उनकी

आहट पाते ही भाग खड़ा हो। पड़ोसियों में ऐसा कोई नज़र न आता था, जो इस संकट में काम आवे। यद्यपि सभी उनके असामी थे या रह चुके थे। लेकिन यह एहसान-फ़रामोशों का सम्प्रदाय है, जिस पत्तल में खाता है, उसी में छेद करता है; जिसके द्वार पर अवसर पड़ने पर नाक रगड़ता है, उसी का दुश्मन हो जाता है। इनसे कोई आशा नहीं। हाँ, किवाड़े सुदृढ़ हैं, उन्हें तोड़ना आसान नहीं, फिर अन्दर का दरवाजा भी तो है। सौ आदमी लग जायँ तो हिलाये न हिले और किसी ओर से हमले का खटका नहीं। इतनी ऊँची सपाट दीवार पर कोई क्या खा के चढ़ेगा? फिर उनके पास रायफलें भी तो हैं। एक रायफल से वह दर्जनों आदमियों को भूनकर रख देंगे। मगर इतने प्रतिबन्धों के होते हुए भी उनके मन में एक हूक-सी समायी रहती थी। कौन जाने चौकीदार भी उन्हीं में मिल गया हो, खिदमतगार भी आस्तीन के साँप हो गये हों! इसलिए वह अब बहुधा अन्दर ही रहते थे, और जब तक मिलने वालों का पता-ठिकाना न पूछ लें, उनसे मिलते न थे। फिर भी दो-चार घण्टे तो चौपाल में बैठने ही पड़ते थे, नहीं तो सारा कारोबार मिट्टी में न मिल जाता! जितनी देर बाहर रहते थे, उनके प्राण जैसे सूली पर टँगे रहते थे। इधर उनके मिजाज में बड़ी तब्दीली हो गयी थी। इतने विनम्र और मिष्टभाषी वह कभी न थे। गालियाँ तो क्या, किसी से तू-तकार भी न करते। सूद की दर भी कुछ घटा दी थी; लेकिन फिर भी चित्त को शान्ति न मिलती थी। आखिर कई मिनट तक दिल को मजबूत करने के बाद उन्होंने पत्र खोला, और जैसे गोली लग गयी। सिर में चक्कर आ गया और सारी चीजें नाचती हुई मालूम हुई। साँस फूलने लगी। आँखें फैल गयीं। लिखा था, तुमने हमारे दोनों पत्रों पर कुछ भी ध्यान न दिया। शायद तुम समझते होगे कि पुलिस तुम्हारी रक्षा करेगी; लेकिन यह तुम्हारा भ्रम है। पुलिस उस वक्त आयेगी, जब हम अपना काम करके सौ कोस निकल गये होंगे। तुम्हारी अक्ल पर पत्थर पड़ गया है, इसमें हमारा कोई दोष नहीं। हम तुमसे सिर्फ २५ हजार रुपये माँगते हैं। इतने रुपये दे देना तुम्हारे लिए कुछ भी मुश्किल नहीं। हमें पता है कि तुम्हारे पास एक लाख की मोहरें रखी हुई हैं; लेकिन विनाशकाले विपरीत बुद्धिः अब हम तुम्हें और ज्यादा न समझायेंगे। तुमको समझाने की चेष्टा करना ही व्यर्थ है। आज शाम तक अगर रुपये न आ गये, तो रात को तुम्हारे ऊपर धावा होगा। अपनी हिफाजत के लिए जिसे बुलाना चाहो बुला लो, जितने आदमी और हथियार जमा करना चाहो, जमा कर लो। हम ललकारकर आयेंगे और दिन-दहाड़े आयेंगे। हम चोर नहीं हैं, हम वीर हैं और हमारा विश्वास बाहुबल में है। हम जानते हैं कि लक्ष्मी उसी के गले में जयमाल डालती है, जो धनुष को तोड़ सकता है, मछली को वेध सकता है। यदि....

सेठजी ने तुरन्त बही-खाते बन्द कर दिये और रोकड़ संभालकर तिजोरी में रख दिया और सामने का द्वार भीतर से बन्द करके मरे हुए-से केसर के पास आकर बोले—आज फिर वही खत आया, केसर! अब आज ही आ रहे हैं।

केसर दोहरे बदन की स्त्री थी, यौवन बीत जाने पर भी युवती, शौक-सिंगार में लिप्त रहने वाली, उस फलहीन वृक्ष की तरह, जो पतझड़ में भी हरी-भरी पत्तियों से लदा रहता है। सन्तान की विफल कामना में जीवन का बड़ा भाग बिता चुकने के बाद, अब उसे अपनी संचित माया को भोगने की धुन सवार रहती थी। मालूम नहीं, कब आँखें बन्द हो जायँ, फिर यह थाती किसके हाथ लगेगी, कौन जाने? इसलिए उसे सबसे अधिक भय बीमारी का था, जिसे वह मौत का पैगाम समझती थी और नित्य ही कोई-न-कोई दवा खाती रहती थी। काया के इस वस्त्र को उस समय तक उतारना न चाहती थी, जब तक उसमें एक तार भी बाकी रहे। बाल-बच्चे होते तो वह मृत्यु का स्वागत करती; लेकिन अब तो उसके जीवन ही के साथ अन्त था, फिर क्यों न वह अधिक-से-अधिक समय तक जिये। हाँ, वह जीवन निरानन्द अवश्य था, उस मधुर ग्रास की भाँति, जिसे हम इसलिए खा जाते हैं कि रखे-रखे सड़ जायगा।

उसने घबड़ाकर कहा—मैं तुमसे कबसे कह रही हूँ कि दो-चार महीनों के लिए यहाँ से कहीं भाग चलो; लेकिन तुम सुनते ही नहीं। आखिर क्या करने पर तुले हुए हो?

सेठजी सशङ्क तो थे और यह स्वाभाविक था—ऐसी दशा में कौन शान्त रह सकता था—लेकिन वह कायर नहीं थे। उन्हें अब भी विश्वास था कि अगर कोई संकट आ पड़े, तो वह पीछे कदम न हटायेंगे। जो कुछ कमजोरी आ गयी थी, वह संकट को सिर पर मँड़राते देखकर भाग गयी थी। हिरन भी

तो भागने की राह न पाकर शिकारी पर चोट कर बैठता है। कभी-कभी नहीं, अकसर संकट पड़ने पर ही आदमी के जौहर खुलते हैं। इतनी देर में सेठजी ने एक तरह से भावी विपत्ति का सामना करने का पक्का इरादा कर लिया था। डरें क्यों, जो कुछ होना है, वह होकर रहेगा। अपनी रक्षा करना हमारा कर्तव्य है, मरना-जीना विधि के हाथ में है। सेठानीजी को दिलासा देते हुए बोले—तुम नाहक इतना डरती हो केसर, आखिर वे सब भी तो आदमी हैं, अपनी जान का मोह उन्हें भी है, नहीं तो यह कुकर्म ही क्यों करते ? मैं खिड़की की आड़ से दस-बीस आदमियों को गिरा सकता हूँ। पुलिस को इत्तला देने भी जा रहा हूँ। पुलिस का कर्तव्य है कि हमारी रक्षा करे। हम दस हजार सालाना टैक्स देते हैं, किसलिए ? मैं अभी दरोगाजी के पास जाता हूँ। जब सरकार हमसे टैक्स लेती है, तो हमारी मदद करना उसका धर्म हो जाता है।

राजनीति का यह तत्व उसकी समझ में नहीं आया। वह तो किसी तरह उस भय से मुक्त होना चाहती थी, जो उसके दिल में साँप की भाँति बैठा फुफकार रहा था। पुलिस का उसे जो अनुभव था, उससे चित्त को सन्तोष न होता था। बोली—पुलिसवालों को बहुत देख चुकी। वारदात के समय तो उनकी सूरत नहीं दिखायी देती। जब वारदात हो चुकती है, तब अलबत्ता शान के साथ आकर रोब जमाने लगते हैं।

'पुलिस तो सरकार का राज चला रही है। तुम क्या जानो ?'

'मैं तो कहती हूँ, यों अगर कल वारदात होनेवाली होगी, तो पुलिस को खबर देने से आज ही हो जायगी। लूट के माल में इनका भी साझा होता है।'

'जानता हूँ, देख चुका हूँ और रोज देखता हूँ; लेकिन मैं सरकार को दस हजार सालाना टैक्स देता हूँ। पुलिसवालों का आदर-सत्कार भी करता रहता हूँ। अभी जाड़ों में सुपरिंटेंडेंट साहब आये थे, तो मैंने कितनी रसद पहुँचायी थी। एक पूरा कनस्तर घी और एक शक्कर की पूरी बोरी भेज दी थी। यह सब खिलाना-पिलाना किस दिन काम आयेगा। हाँ, आदमी को सोलहो आने दूसरों के भरोसे न बैठना चाहिए; इसलिए मैंने सोचा है, तुम्हें भी बन्दूक चलाना सिखा दूँ ? हम दोनों बन्दूकें छोड़ना शुरू करेंगे, तो डाकुओं की क्या मजाल है कि अन्दर कदम रख सकें।'

प्रस्ताव हास्यजनक था। केसर ने मुसकराकर कहा—हाँ और क्या, अब आज मैं बन्दूक चलाना सीखूँगी ! तुमको जब देखो, हँसी ही सूझती है।

'इसमें हँसी की क्या बात है ? आजकल तो औरतों की फौजें बन रही हैं। सिपाहियों की तरह औरतें भी कवायद करती हैं, बन्दूक चलाती हैं, मैदानों में खेलती हैं। औरतों के घर में बैठने का जमाना अब नहीं है।'

'विलायत की औरतें बन्दूक चलाती होंगी, यहाँ की औरतें क्या चलायेंगी। हाँ, हाथ-भर की जबान चाहे चला लें।'

'यहाँ की औरतों ने बहादुरी के जो-जो काम किये हैं, उनसे इतिहास के पन्ने भरे पड़े हैं। आज भी दुनिया उन वृत्तान्तों को पढ़कर चकित हो जाती है।'

'पुराने जमाने की बातें छोड़ो। तब औरतें बहादुर रही होंगी। आज कौन बहादुरी कर रही हैं ?'

'वाह ! अभी हजारों औरतें घर-बार छोड़कर हँसते-हँसते जेल चली गयीं। यह बहादुरी नहीं थी ? अभी पञ्जाब में हरनाम कुँवर ने अकेले चार सशस्त्र डाकुओं को गिरफ्तार किया और लाट साहब तक ने उसकी प्रशंसा की।'

'क्या जाने वे कैसी औरतें हैं। मैं तो डाकुओं को देखते ही चक्कर खाकर गिर पड़ूँगी।'

उसी वक्त नौकर ने आकर कहा—सरकार, थाने से चार कानिस्टिबिल आये हैं। आपको बुला रहे हैं।

सेठजी प्रसन्न होकर बोले—'थानेदार भी हैं ?'

'नहीं सरकार, अकेले कानिस्टिबिल हैं।'

'थानेदार क्यों नहीं आया ?'—यह कहते हुए सेठजी ने पान खाया और बाहर निकले।

(२)

सेठजी को देखते ही चारों कान्सटेबिलों ने झुककर सलाम किया, बिलकुल अँगरेजी कायदे से, मानों अपने किसी अफसर को सैल्यूट कर रहे हों। सेठजी ने उन्हें बेंचों पर बैठाया और बोले—दरोगाजी का मिजाज तो अच्छा है ? मैं तो उनके पास आनेवाला था।

चारों में जो सबसे प्रौढ़ था, जिसकी आस्तीन पर कई बिल्ले लगे हुए थे,

बोला—आप क्यों तकलीफ करते, वह तो खुद ही आ रहे थे; पर एक बड़ी जरूरी तहकीकात आ गयी, इससे रुक गये। कल आपसे मिलेंगे। जबसे यहाँ डाकुओं की खबरें आयी हैं, बेचारे बहुत घबराये हुए हैं। आपकी तरफ हमेशा उनका ध्यान रहता है। कई बार कह चुके हैं कि मुझे सबसे ज्यादा फिकर सेठजी की है। गुमनाम खत तो आपके पास भी आये होंगे ?

सेठजी ने लापरवाही दिखाकर कहा—अजी, ऐसी चिट्ठियाँ आती ही रहती हैं, इनकी कौन परवाह करता है। मेरे पास तो तीन खत आ चुके हैं, मैंने किसीसे जिक्र भी नहीं किया।

कान्स्टेबिल हँसा—दरोगाजी को खबर मिली थी।

'सच !'

'हाँ, साहब ! रत्ती-रत्ती खबर मिलती रहती है। यहाँ तक मालूम हुआ है कि कल आपके मकान पर उनका धावा होनेवाला है। जभी तो आज दारोगाजी ने मुझे आपकी खिदमत में भेजा।'

'मगर वहाँ कैसे खबर पहुँची ? मैंने तो किसीसे कहा ही नहीं।'

कान्स्टेबिल ने रहस्यमय भाव से कहा—हुजूर, यह न पूछें ! इलाके के सबसे बड़े सेठ के पास ऐसे खत आयें और पुलिस को खबर न हो ! भला, कोई बात है। फिर ऊपर से बराबर ताकीद आती रहती है कि सेठजी को शिकायत का कोई मौका न दिया जाय। सुपरिंटेंडेंट साहब की खास ताकीद है आपके लिए। और हुजूर, सरकार भी तो आप ही के बूते पर चलती है। सेठ-साहूकारों के जान-माल की हिफाजत न करे, तो रहे कहाँ ? हमारे होते मजाल है कि कोई आपकी तरफ तिर्छी आँखों से देख सके; मगर यह कम्बख्त डाकू इतने दिलेर और तादाद में इतने ज्यादा हैं कि थाने के बाहर उनसे मुकाबिला करना मुश्किल है। दारोगाजी गारद मँगाने की बात सोच रहे थे; मगर ये हत्यारे कहीं एक जगह तो रहते नहीं, आज यहाँ हैं, तो कल यहाँ से दो सौ कोस पर। गारद मँगाकर ही क्या किया जाय ? इलाके की रिआया की तो हमें ज्यादा फिक्र नहीं, हुजूर मालिक हैं, आपसे क्या छिपायें, किसके पास रखा है इतना माल-असबाब ! और अगर किसी के पास दो-चार सौ की पूँजी निकल ही आयी तो उसके लिए पुलिस डाकुओं के पीछे अपनी जान हथेली

पर लिये न फिरेगी। उन्हें क्या, वह तो छूटते ही गोली चलाते हैं, और अकसर छिपकर। हमारे लिए तो हजार बन्दिशें हैं। कोई बात बिगड़ जाय तो उलटे अपनी ही जान आफत में फँस जाय। हमें तो ऐसे रास्ते चलना है कि साँप मरे और लाठी न टूटे, इसलिए दारोगाजी ने आपसे यह अर्ज करने को कहा है कि आपके पास जोखिम की जो चीजें हों, उन्हें लाकर सरकारी खजाने में जमा कर दीजिए। आपको उसकी रसीद दे दी जायगी। ताला और मुहर आप ही की रहेगी। जब यह हंगामा ठण्ढा हो जाय तो मँगवा लीजिएगा। इससे आपको भी बेफिक्री हो जायगी और हम भी जिम्मेदारी से बच जायँगे। नहीं खुदा न करे, कोई वारदात हो जाय, तो हुजूर को तो जो नुकसान हो वह तो हो ही, हमारे ऊपर भी जवाबदेही आ जाय। और यह जालिम सिर्फ माल-असबाब लेकर ही तो जान नहीं छोड़ते—खून करते हैं, घर में आग लगा देते हैं, यहाँ तक कि औरतों की बेइज्जती भी करते हैं। हुजूर तो जानते हैं, होता है वही जो तकदीर में लिखा है। आप इकबालवाले आदमी हैं, डाकू आपका कुछ नहीं बिगाड़ सकते। सारा कस्बा आपके लिए जान देने को तैयार है। आपका पूजा-पाठ, धर्म-कर्म खुदा खुद देख रहा है। यह उसी की बरकत है कि आप मिट्टी भी छू लें, तो सोना हो जाय; लेकिन आदमी भरसक अपनी हिफाजत करता है। हुजूर के पास मोटर है ही, जो कुछ रखना हो, उसपर रख दीजिए। हम चार आदमी आपके साथ हैं, कोई खटका नहीं। वहाँ एक मिनट में आपको फुरसत हो जायगी। पता चला है कि इस गोल में बीस जवान हैं। दो तो बैरागी बने हुए हैं, दो पंजाबियों के भेस में धुस्से और अलवान बेचते फिरते हैं। इन दोनों के साथ दो बहँगीवाले भी हैं। दो आदमी बलूचियों के भेस में छूरियाँ और ताले बेचते हैं। कहाँ तक गिनाऊँ, हुजूर ! हमारे थाने में तो हर एक का हुलिया रखा हुआ है।

खतरे में आदमी का दिल कमजोर हो जाता है और वह ऐसी बातों पर विश्वास कर लेता है, जिन पर शायद होश-हवास में न करता। जब किसी दवा से रोगी को लाभ नहीं होता, तो हम दुआ, तावीज, ओझों और सयानों की शरण लेते हैं, और यहाँ तो सन्देह करने का कोई कारण ही न था। सम्भव है, दारोगाजी का कुछ स्वार्थ हो, मगर सेठजी इसके लिए तैयार थे।

अगर दो-चार सौ बल खाने पड़ें, तो कोई बड़ी बात नहीं। ऐसे अवसर तो जीवन में आते ही रहते हैं और इस परिस्थिति में इससे अच्छा दूसरा क्या इन्तजाम हो सकता था; बल्कि इसे तो ईश्वरीय प्रेरणा समझना चाहिए। माना, उनके पास दो-दो बन्दूकें हैं, कुछ लोग मदद करने के लिए निकल ही आयेंगे, लेकिन है जान जोखिम। उन्होंने निश्चय किया, दारोगाजी की इस कृपा से लाभ उठाना चाहिए। इन्हीं आदमियों को कुछ दे-दिलाकर सारी चीजें निकलवा लेंगे। दूसरों का क्या भरोसा? कहीं कोई चीज उड़ा दें तो बस?

उन्होंने इस भाव से कहा, मानो दारोगाजी ने उन पर कोई विशेष कृपा नहीं की है; वह तो उनका कर्तव्य ही था—मैंने यहाँ ऐसा प्रबन्ध किया था कि यहाँ वह सब आते तो उनके दाँत खट्टे कर दिये जाते। सारा कस्बा मदद के लिए तैयार था। सभी से तो अपना मित्र-भाव है, लेकिन दारोगाजी की तजवीज मुझे पसन्द है। इससे वह भी अपनी जिम्मेदारी से बरी हो जाते हैं और मेरे सिर से भी फिक्र का बोझ उतर जाता है, लेकिन भीतर से चीजें बाहर निकाल-निकालकर लाना मेरे बूते की बात नहीं। आप लोगों की दुआ से नौकर-चाकरों की तो कमी नहीं है, मगर किसकी नीयत कैसी है, कौन जान सकता है? आप लोग कुछ मदद करें तो काम आसान हो जाय।

हेड कान्स्टेबिल ने बड़ी खुशी से यह सेवा स्वीकार कर ली और बोला—हम सब हुजूर के ताबेदार हैं, इसमें मदद की कौन सी बात है? तलब सरकार से पाते हैं, यह ठीक है; मगर देने वाले तो आप ही हैं। आप केवल सामान हमें दिखाये जायँ, हम बात-की-बात में सारी चीजें निकाल लायेंगे। हुजूर की खिदमत करेंगे तो कुछ इनाम-इकराम मिलेगा ही। तनख्वाह में गुजर नहीं होता सेठजी, आप लोगों की करम की निगाह न हो, तो एक दिन भी निबाह न हो। बाल-बच्चे भूखों मर जायँ। पन्द्रह-बीस रुपये में क्या होता है हुजूर, इतना तो हमारे लिए ही पूरा नहीं पड़ता।

सेठजी ने अन्दर जाकर केसर से यह समाचार कहा तो उसे जैसे आँखें मिल गयीं। बोली—भगवान् ने सहायता की, नहीं मेरे प्राण बड़े संकट में पड़े हुए थे।

सेठजी ने सर्वज्ञता के भाव से फरमाया—इसी को कहते हैं सरकार का

इन्तजाम! इसी मुस्तैदी के बल पर सरकार का राज थमा हुआ है। कैसी सुव्यवस्था है कि जरा-सी कोई बात हो, वहाँ तक खबर पहुँच जाती है और तुरन्त उसके रोक-थाम का हुक्म हो जाता है। और यहाँ वाले ऐसे बुद्धू हैं कि स्वराज्य-स्वराज्य चिल्ला रहे हैं। इनके हाथ में अख्तियार आ जाय तो दिन-दोपहर लूट मच जाय, कोई किसी की न सुने। ऊपर से ताकीद आयी है। हाकिमों का आदर-सत्कार कभी निष्फल नहीं जाता। मैं तो सोचता हूँ, कोई बहुमूल्य वस्तु घर में न छोड़ूँ। साले आयें तो अपना-सा मुँह लेकर रह जायँ।

केसर ने मन-ही-मन प्रसन्न होकर कहा—कुञ्जी उनके सामने फेंक देना कि जो चीज चाहो निकाल ले जाओ।

'साले झेंप जायँगे।'

'मुँह में कालिख लग जायगी।'

'घमण्ड तो देखो कि तिथि तक बता दी। यह नहीं समझे कि अंग्रेजी सरकार का राज है। तुम डाल-डाल चलो, तो वह पात-पात चलते हैं।

'समझे होंगे कि धमकी में आ जायँगे।'

तीन कांस्टेबिलों ने आकर सन्दूकचे और सेफ निकालने शुरू किये। एक बाहर सामान को मोटर पर लाद रहा था और हरेक चीज को नोटबुक पर टाँकता जाता था। आभूषण, मुहरें, नोट, रुपये, कीमती कपड़े, साड़ियाँ, लहँगे, शाल दुशाले, सब कार में रख दिये। मामूली बरतन, लोहे-लकड़ी के सामान, फर्श आदि के सिवा घर में और कुछ न बचा। और डाकुओं के लिए ये चीजें कौड़ी की भी नहीं। केसर का सिंगार-दान खुद सेठजी लाये और हेड के हाथ में देकर बोले—इसे बड़ी हिफाजत से रखना, भाई!

हेड ने सिंगार-दान लेकर कहा—मेरे लिए एक-एक तिनका इतना ही कीमती है।

सेठजी के मन में एक सन्देह उठा। पूछा—खजाने की कुञ्जी तो मेरे ही पास रहेगी?

'और क्या, यह तो मैं पहले ही अर्ज कर चुका; मगर यह सवाल आपके दिल में क्यों पैदा हुआ?'

'योंही, पूछा था'—सेठजी लज्जित हो गये।

'नहीं, अगर आपके दिल में कुछ शुबहा हो, तो हम लोग यहाँ भी आप की खिदमत के लिए हाजिर हैं। हाँ, हम जिम्मेदार न होंगे।'

'अजी नहीं हेड साहब, मैंने योंही पूछ लिया था। यह फिहरिस्त तो मुझे दे दोगे न?'

'फिहरिस्त आपको थाने में दारोगाजी के दस्तखत से मिलेगी। इसका क्या एतबार?

कार पर सारा सामान रख दिया गया। कस्बे के सैकड़ों आदमी तमाशा देख रहे थे। कार बड़ी थी, पर टसाठस भरी हुई थी। बड़ी मुश्किल से सेठ-जी के लिए जगह निकली। चारों कान्स्टेबिल आगे की सीट पर सिमटकर बैठे।

कार चली। केसर द्वार पर इस तरह खड़ी थी, मानो उसकी बेटी बिदा हो रही हो। बेटी ससुराल जा रही है, जहाँ वह मालकिन बनेगी; लेकिन उसका घर सूना किये जा रही है।

(३)

थाना यहाँ से पाँच मील पर था। कस्बे से बाहर निकलते ही पहाड़ों का पथरीला सन्नाटा था, जिसके दामन में हरा-भरा मैदान था और इसी मैदान के बीच में लाल मोरम की सड़क चक्कर खाती हुई लाल साँप-जैसी निकल गयी थी।

हेड ने सेठजी से पूछा—यह कहाँ तक सही है सेठजी कि आज से पचीस साल पहले आपके बाप केवल लोटा-डोर लेकर यहाँ खाली हाथ आये थे?

सेठजी ने गर्व करते हुए कहा—बिलकुल सही है। मेरे पास कुल तीन रुपये थे। उसीसे आटे-दाल की दूकान खोली थी। तकदीर का खेल है, भग-वान् की दया चाहिए, आदमी के बनते-बिगड़ते देर नहीं लगती। लेकिन मैंने कभी पैसे को दाँतों से नहीं पकड़ा। यथाशक्ति धर्म का पालन करता गया। धन की शोभा धर्म ही से है, नहीं तो धन से कोई फायदा नहीं।

'आप बिलकुल ठीक कहते हैं सेठजी। आपकी मूरत बनाकर पूजना चाहिए। तीन रुपये से तीन लाख कमा लेना मामूली काम नहीं है!'

'आधी रात तक सिर उठाने की फुरसत नहीं मिलती, खाँ साहब!'

'आपको तो यह सब कारोबार जञ्जाल-सा लगता होगा।'

'जञ्जाल तो है ही, मगर भगवान् की ऐसी माया है कि आदमी सब कुछ समझकर भी इसमें फँस जाता है और सारी उम्र फँसा रहता है। मौत आ जाती है, तभी छुट्टी मिलती है। बस, यही अभिलाषा है कि कुछ यादगार छोड़ जाऊँ।'

'आपके कोई औलाद हुई ही नहीं?'

'भाग्य में न थी खाँ साहब, और क्या कहूँ! जिनके घर में भूनी भाँग नहीं है, उनके यहाँ घास-फूस की तरह बच्चे-ही-बच्चे देख लो, जिन्हें भगवान् ने खाने को दिया है, वे सन्तान का मुँह देखने को तरसते हैं।'

'आप बिलकुल ठीक कहते हैं, सेठजी! जिन्दगी का मजा सन्तान से है। जिसके आगे अँधेरा है, उसके लिए धन-दौलत किस काम का?'

'ईश्वर की यही इच्छा है तो आदमी क्या करे। मेरा बस चलता, तो मायाजाल से निकल भागता खाँ साहब, एक क्षण-भर यहाँ न रहता, कहीं तीर्थ-स्थान मे बैठकर भगवान् का भजन करता। मगर करूँ क्या? मायाजाल तोड़े नहीं टूटता।'

'एक बार दिल मजबूत करके तोड़ क्यों नहीं देते? सब उठाकर गरीबों को बाँट दीजिए। साधु सन्तों को नहीं, न मोटे ब्राह्मणों को बल्कि उनको, जिनके लिए यह जिन्दगी बोझ हो रही है, जिनकी यही एक आरजू है कि मौत आकर उनकी विपत्ति का अन्त कर दे।'

'इस मायाजाल को तोड़ना आदमी का काम नहीं है, खाँ साहब! भगवान् की इच्छा होती है, तभी मन में वैराग्य आता है।'

'आज भगवान् ने आपके ऊपर दया की है। हम इस मायाजाल को मकड़ी के जाले की तरह तोड़कर आपको आजाद करने के लिए भेजे गये हैं। भगवान् आपकी भक्ति से प्रसन्न हो गये हैं और आपको इस बन्धन में नहीं रखना चाहते, जीवन-मुक्त कर देना चाहते हैं।'

'ऐसी भगवान् की दया हो जाती, तो क्या पूछना खाँ साहब!'

'भगवान् की ऐसी ही दया है सेठजी, विश्वास मानिए। हमें इसीलिए उन्होंने मृत्युलोक में तैनात किया है। हम कितने ही मायाजाल के कैदियों की बेड़ियाँ काट चुके हैं। आज आपकी बारी है।'

सेठजी की नाड़ियों में जैसे रक्त का प्रवाह बन्द हो गया। सहमी हुई आँखों से सिपाहियों को देखा। फिर बोले—आप बड़े हँसोड़ हो, खाँ साहब!

'हमारे जीवन का सिद्धान्त है कि किसीको कष्ट मत दो; लेकिन ये रुपये वाले कुछ ऐसी औंधी खोपड़ी के लोग हैं कि जो उनका उद्धार करने आता है, उसी के दुश्मन हो जाते है। हम आपकी बेड़ियाँ काटने आये हैं; लेकिन अगर आपसे कहें कि यह सब जमा-जथा और लता-पता छोड़कर घर की राह लीजिए, तो आप चीखना-चिल्लाना शुरू कर देंगे। हम लोग वही खुदाई फौजदार हैं, जिनके इत्तलाई खत आपके पास पहुँच चुके हैं!'

सेठजी मानों आकाश से पाताल में गिर पड़े। सारी ज्ञानेन्द्रियों ने जवाब दे दिया और इसी मूर्च्छा की दशा में वह मोटरकार से नीचे ढकेल दिये गये और गाड़ी चल पड़ी।

सेठजी की चेष्टा जाग पड़ी। बदहवास गाड़ी के पीछे. दौड़े—हुजूर, सरकार, तबाह हो जायँगे, दया कीजिए, घर में एक कौड़ी भी नहीं है........

हेड साहब ने खिड़की से बाहर हाथ निकाला और तीन रुपये जमीन पर फेंक दिये। मोटर की चाल तेज हो गयी।

सेठजी सिर पकड़कर बैठ गये और विक्षिप्त नेत्रों से मोटरकार को देखा, जैसे कोई शव स्वर्गारोही प्राण को देखे। उनके जीवन का स्वप्न उड़ा चला जा रहा था।

वेश्या

छः महीने बाद कलकत्ते से घर आने पर दयाकृष्ण ने पहला काम जो किया, वह अपने प्रिय मित्र सिंगारसिंह से मातमपुरसी करने जाना था। सिंगार के पिता का आज तीन महीने हुए देहान्त हो गया था। दयाकृष्ण बहुत व्यस्त रहने के कारण उस समय न आ सका था। मातमपुरसी की रस्म पत्र लिखकर अदा कर दी थी; लेकिन ऐसा एक दिन भी नहीं बीता कि सिंगार की याद उसे न आयी हो। अभी वह दो-चार महीने और कलकत्ते रहना चाहता था; क्योंकि वहाँ उसने जो कारोबार जारी किया था, उसे सङ्गठित रूप में लाने के लिए उसका वहाँ मौजूद रहना जरूरी था और उसकी थोड़े दिन की गैरहाजिरी से भी हानि की शङ्का थी। किन्तु जब सिंगार की स्त्री लीला का परवाना आ पहुँचा तो वह अपने को न रोक सका। लीला ने साफ-साफ तो कुछ न लिखा था, केवल उसे तुरन्त बुलाया था; लेकिन दयाकृष्ण को पत्र के शब्दों से कुछ ऐसा अनुमान हुआ कि वहाँ की परिस्थिति चिन्ता-जनक है और इस अवसर पर उसका वहाँ पहुँचना जरूरी है। सिंगार सम्पन्न बाप का बेटा था, बड़ा ही अल्हड़, बड़ा ही जिद्दी, बड़ा ही आरामपसन्द। दृढ़ता या लगन उसे छू भी नहीं गयी थी। उसकी माँ उसके बचपन ही में मर चुकी थी और बाप ने उसके पालने में नियन्त्रण की अपेक्षा स्नेह से ज्यादा काम लिया था। उसे कभी दुनिया की हवा नहीं लगने दी। उद्योग भी कोई वस्तु है, यह वह जानता ही न था। उसके महज इशारे पर हर एक चीज सामने आ जाती थी। वह जवान बालक था, जिसमें न अपने विचार थे, न सिद्धान्त। कोई भी आदमी उसे बड़ी आसानी से अपने कपट-बाणों का निशाना बना सकता था। मुख्तारों और मुनीमों के दाँव-पेंच समझना उसके लिए लोहे के चने चबाना था। उसे किसी ऐसे समझदार और हितैषी मित्र की जरूरत थी, जो स्वार्थियों के हथकण्डों से उसकी रक्षा करता रहे। दयाकृष्ण पर इस घर के बड़े-बड़े एहसान थे। उस दोस्ती का हक अदा करने के लिए उसका आना आवश्यक था।

मुँह-हाथ धोकर सिंगारसिंह के घर पर ही भोजन का इरादा करके

दयाकृष्ण उससे मिलने चला। नौ बज गये थे, हवा और धूप में गर्मी आने लगी थी।

सिंगारसिंह उसकी खबर पाते ही बाहर निकल आया। दयाकृष्ण उसे देखकर चौंक पड़ा। लम्बे-लम्बे केशों की जगह उसके सिर पर घुँघराले बाल थे (वह सिक्ख था), आड़ी माँग निकाली हुई। आँखों में न आँसू थे, न शोक का कोई दूसरा चिन्ह, चेहरा कुछ जर्द अवश्य था पर उस पर विलासिता की मुसकराहट थी। वह एक महीन रेशमी कमीज और मखमली जूते पहने हुए था; मानों किसी महफिल से उठा आ रहा हो। संवेदना के शब्द दयाकृष्ण के ओठों तक आकर निराश लौट गये। वहाँ बधाई के शब्द ज्यादा अनुकूल प्रतीत हो रहे थे।

सिंगारसिंह लपककर उसके गले से लिपट गया और बोला—तुम खूब आये यार, इधर तुम्हारी बहुत याद आ रही थी; मगर पहले यह बतला दो, वहाँ का कारोबार बन्द कर आये या नहीं? अगर वह झंझट छोड़ आये हो, तो पहले उसे तिलांजलि दे आओ। अब आप यहाँ से जाने न पायेंगे। मैंने तो भई, अपना कैंड़ा बदल दिया। बताओ, कब तक तपस्या करता। अब तो आये-दिन जलसे होते हैं। मेंने सोचा—यार, दुनिया में आये, तो कुछ दिन सैर-सपाटे का आनन्द भी उठा लो। नहीं तो एक दिन यों ही हाथ मलते चले जायँगे। कुछ भी साथ न जायगा।

दयाकृष्ण विस्मय से उसके मुँह की ओर ताकने लगा। यह वही सिंगार है या कोई और! बाप के मरते ही इतनी तब्दीली!

दोनों मित्र कमरे में गये और सोफे पर बैठे। सरदार साहब के सामने इस कमरे में फर्श और मसनद थी, आलमारी थी। अब दर्जनों गद्देदार सोफे और कुर्सियाँ हैं, कालीन का फर्श है, रेशमी परदे हैं, बड़े-बड़े आईने हैं। सरदार साहब को संचय की धुन थी, सिंगार को उड़ाने की धुन है।

सिंगार ने एक सिगार जलाकर कहा—तेरी बहुत याद आती थी यार, तेरी जान की कसम।

दयाकृष्ण ने शिकवा किया—क्यों झूठ बोलते हो भाई, महीनों गुजर जाते थे, एक खत लिखने की तो आपको फुर्सत न मिलती थी, मेरी याद आती थी!

सिंगार ने अल्हड़पन से कहा—बस, इसी बात पर मेरी सेहत का एक जाम पियो। अरे यार, इस जिन्दगी में और क्या रखा है? हँसी-खेल में जो वक्त कट जाय, उसे गनीमत समझो। मैंने तो यह तपस्या त्याग दी। अब तो आये-दिन जलसे होते हैं, कभी दोस्तों की दावत है, कभी दरिया की सैर, कभी गाना-बजाना, कभी शराब के दौर। मैंने कहा, लाओ कुछ दिन यह बहार भी देख लूँ। हसरत क्यों दिल में रह जाय। आदमी संसार में कुछ भोगने के लिए आता है, यही जिन्दगी के मजे हैं। जिसने ये मजे नहीं चक्खे, उसका जीना वृथा है। बस, दोस्तों की मजलिस हो, बगल में माशूक हो और हाथ में प्याला हो, इसके सिवाय मुझे और कुछ न चाहिए।

उसने आलमारी खोलकर एक बोतल निकाली और दो गिलासों में शराब ढालकर बोला—यह मेरी सेहत का जाम है। इन्कार न करना। मैं तुम्हारी सेहत का जाम पीता हूँ।

दयाकृष्ण को कभी शराब पीने का अवसर न मिला था। वह इतना धर्मात्मा तो न था कि शराब पीना पाप समझता, हाँ, उसे दुर्व्यसन समझता था। गन्ध ही से उसका जी मालिश करने लगा। उसे भय हुआ कि वह शराब की घूँट चाहे मुँह में ले ले, उसे कण्ठ के नीचे नहीं उतार सकता। उसने प्याले को शिष्टाचार के तौर पर हाथ में ले लिया, फिर उसे ज्यों-का-त्यों मेज पर रखकर बोला—तुम जानते हो, मैंने कभी नहीं पी। इस समय मुझे क्षमा करो। दस-पाँच दिन में यह फन भी सीख जाऊँगा; मगर यह तो बताओ, अपना कारोबार भी कुछ देखते हो, या इसी में पड़े रहते हो।

सिंगार ने अरुचि से मुँह बनाकर कहा—ओह, क्या जिक्र तुमने छेड़ दिया, यार? कारोबार के पीछे इस छोटी-सी जिन्दगी को तबाह नहीं कर सकता। न कोई साथ लाया है, न साथ ले जायगा। पापा ने मर-मरकर धन संचय किया। क्या हाथ लगा? पचास तक पहुँचते-पहुँचते चल बसे। उनकी आत्मा अब भी संसार के सुखों के लिए तरस रही होगी। धन छोड़कर मरने से फाके-मस्त रहना कहीं अच्छा है। धन की चिन्ता तो नहीं सताती, यह हाय-हाय तो नहीं होती कि मेरे बाद क्या होगा! तुमने गिलास मेज पर रख दिया। जरा पियो,

आँखें खुल जायँगी। दिल हरा हो जायगा। और लोग सोडा और बरफ मिलाते हैं, मैं तो खालिस पीता हूँ। इच्छा हो, तो तुम्हारे लिए बरफ मँगाऊँ?

दयाकृष्ण ने फिर क्षमा माँगी; मगर सिंगार गिलास पर गिलास पीता गया। उसकी आँखें लाल-लाल निकल आयीं, ऊल-जलूल बकने लगा, खूब डींगें मारीं, फिर बेसुरे राग में एक बाजारू गीत गाने लगा। अन्त में उसी कुर्सी पर पड़ा-पड़ा बेसुध हो गया। /

(२)

सहसा पीछे का परदा हटा और लीला ने उसे इशारे से बुलाया। दयाकृष्ण की धमनियों में शतगुण वेग से रक्त दौड़ने लगा। उसकी सङ्कोचमय, भीरु प्रकृति भीतर से जितनी ही रूपासक्त थी, बाहर से उतनी ही विरक्त। सुन्दरियों के सम्मुख आकर वह स्वयं अवाक् हो जाता था, उसके कपोलों पर लज्जा की लाली दौड़ जाती थी और आँखें झुक जाती थीं; लेकिन मन उनके चरणों पर लोटकर अपने-आपको समर्पित कर देने के लिए विकल हो जाता था। मित्रगण उसे बूढ़े बाबा कहा करते थे। स्त्रियाँ उसे अरसिक समझकर उससे उदासीन रहती थीं। किसी युवती के साथ लङ्का तक रेल में एकान्त-यात्रा करके भी वह उससे एक शब्द भी बोलने का साहस न करता। हाँ, यदि युवती स्वयं उसे छेड़ती, तो वह अपने प्राण तक उसकी भेंट कर देता। उसके इस सङ्कोचमय, अवरुद्ध जीवन में लीला ही एक युवती थी, जिसने उसके मन को समझा था और उससे सवाक सहृदयता का व्यवहार किया था। तभी से दयाकृष्ण मन से उसका उपासक हो गया था। उसके अनुभवशून्य हृदय में लीला नारी-जाति का सबसे सुन्दर आदर्श थी। उसकी प्यासी आत्मा को शर्बत या लेमनेड की उतनी इच्छा न थी, जितना ठण्डे, मीठे पानी की। लीला में रूप है, लावण्य है, सुकुमारता है, इन बातों की ओर उसका ध्यान न था। उससे ज्यादा रूपवती, लावण्यमयी और सुकुमार युवतियाँ उसने पार्कों में देखी थीं। लीला में सहृदयता है, विचार है, दया है, इन्हीं तत्वों की ओर उसका आकर्षण था। उसकी रसिकता में आत्म-समर्पण के सिवा और कोई भाव न था। लीला के किसी आदेश का पालन करना उसकी सबसे बड़ी कामना थी, उसकी आत्मा की तृप्ति के लिए इतना काफ़ी था। उसने काँपते हाथों से परदा उठाया और

अन्दर जाकर खड़ा हो गया और विस्मय- भरी आँखों से उसे देखने लगा। उसने लीला को यहाँ न देखा होता, तो पहचान भी न सकता। वह रूप, यौवन और विकास की देवी इस तरह मुरझा गयी थी, जैसे किसी ने उसके प्राणों को चूसकर निकाल लिया हो। करुण-स्वर में बोला—यह तुम्हारा क्या हाल है, लीला? बीमार हो क्या? मुझे सूचना तक न दी।

लीला मुसकराकर बोली—तुमसे मतलब? मैं बीमार हूँ या अच्छी हूँ, तुम्हारी बला से! तुम तो अपने सैर-सपाटे करते रहे। छः महीने के बाद जब आपको याद आयी है, तो पूछते हो बीमार हो? मैं उस रोग में ग्रस्त हूँ, जो प्राण लेकर ही छोड़ता है। तुमने इन महाशय की हालत देखी? उनका यह रङ्ग देखकर मेरे दिल पर क्या गुजरती है, यह क्या मैं अपने मुँह से कहूँ तभी समझोगे? मैं अब इस घर में जबरदस्ती पड़ी हूँ और बेहयाई से जीती हूँ। किसीको मेरी चाह या चिन्ता नहीं है। पापा क्या मरे, मेरा सोहाग ही उठ गया। कुछ समझाती हूँ, तो बेवकूफ बनायी जाती हूँ। रात-रात-भर न जाने कहाँ गायब रहते हैं। जब देखो, नशे में मस्त हफ्तों घर में नहीं आते कि दो बातें कर लूँ; अगर इनके यही ढंग रहे, तो साल-दो-साल में रोटियों के मुहताज हो जायँगे।

दया ने पूछा—यह लत इन्हें कैसे पड़ गयी? ये बातें तो इनमें न थीं।

लीला ने व्यथित स्वर में कहा—रुपये की बलिहारी है और क्या! इसीलिए तो बूढ़े मर-मरके कमाते हैं और मरने के बाद लड़कों के लिए छोड़ जाते हैं। अपने मन में समझते होंगे, हम लड़कों के लिए बैठने का ठिकाना किये जाते हैं। मैं कहती हूँ, तुम उनके सर्वनाश का सामान किये जाते हो, उनके लिए जहर बोये जाते हो। पापा ने लाखों रुपये की सम्पत्ति न छोड़ी होती, तो आज यह महाशय किसी काम में लगे होते, कुछ घर की चिन्ता होती, कुछ जिम्मेदारी होती, नहीं तो बैंक से रुपये निकाले और उड़ाये। अगर मुझे विश्वास होता कि सम्पत्ति समाप्त करके वह सीधे मार्ग पर आ जायँगे, तो मुझे जरा भी दुःख न होता; पर मुझे तो यह भय है कि ऐसे लोग फिर किसी काम के नहीं रहते। या तो जेलखाने में मरते हैं या अनाथालय में। आपकी एक वेश्या से आशनाई है। माधुरी नाम है और वह इन्हें उल्टे छुरे से मूँड़ रही है, जैसा उसका धर्म

है। आपको यह खब्त हो गया कि वह मुझ पर जान देती है। उससे विवाह का प्रस्ताव भी किया जा चुका है। मालूम नहीं, उसने क्या जवाब दिया। कई बार जी में आया कि जब यहाँ किसी से कोई नाता ही नहीं है, तो अपने घर चली जाऊँ; लेकिन डरती हूँ कि तब तो यह और भी स्वतन्त्र हो जायँगे। मुझे किसी पर विश्वास है, तो वह तुम हो। इसीलिए तुम्हें बुलाया था कि शायद तुम्हारे समझाने-बुझाने का कुछ असर हो। अगर तुम भी असफल हुए, तो मैं एक क्षण यहाँ न रहूँगी। भोजन तैयार है, चलो कुछ खा लो।

दयाकृष्ण ने सिंगारसिंह की ओर संकेत करके कहा—और यह ?

'यह तो अब कहीं दो-तीन बजे चेतेंगे।'

'बुरा न मानेंगे।'

'मैं अब इन बातों की परवाह नहीं करती। मैंने तो निश्चय कर लिया है कि अगर मुझे कभी आँखें दिखायीं, तो मैं भी इन्हें मजा चखा दूँगी। मेरे पिताजी फौज में सूबेदार मेजर हैं। मेरी देह में उनका रक्त है।'

लीला की मुद्रा उत्तेजित हो गयी। विद्रोह की वह आग, जो महीनों से पड़ी सुलग रही थी, प्रचण्ड हो उठी।

उसने उसी लहजे में कहा—मेरी इस घर में इतनी साँसत हुई है, इतना अपमान हुआ है और हो रहा है कि मैं उसका किसी तरह भी प्रतीकार करके आत्मग्लानि का अनुभव न करूँगी। मैंने पापा से अपना हाल छिपा रखा है। आज लिख दूँ, तो इनकी सारी मशीखत उतर जाय। नारी होने का दण्ड भोग रही हूँ, लेकिन नारी के धैर्य की भी सीमा है।

दयाकृष्ण उस सुकुमारी का वह तमतमाया हुआ चेहरा, वे जलती हुई आँखें, वह काँपते हुए होंठ देखकर काँप उठा। उसकी दशा उस आदमी की सी हो गयी, जो किसी रोगी को दर्द से तड़पते देखकर वैद्य को बुलाने दौड़े। आर्द्र कण्ठ से बोला—इस समय मुझे क्षमा करो लीला, फिर कभी तुम्हारा निमन्त्रण स्वीकार करूँगा। तुम्हें अपनी ओर से इतना ही विश्वास दिलाता हूँ कि मुझे अपना सेवक समझती रहना। मुझे न मालूम था कि तुम्हें इतना कष्ट है, नहीं तो शायद अब तक मैंने कुछ युक्ति सोची होती। मेरा यह शरीर तुम्हारे किसी काम आये, इससे बढ़कर सौभाग्य की बात मेरे लिए और क्या होगी।

दयाकृष्ण यहाँ से चला; तो उसके मन में इतना उल्लास भरा हुआ था, मानों विमान पर बैठा हुआ स्वर्ग की ओर जा रहा है। आज उसे जीवन में एक ऐसा लक्ष्य मिल गया था, जिसके लिए वह जी भी सकता है और मर भी सकता है। वह एक महिला का विश्वासपात्र हो गया था। इस रत्न को वह अपने हाथ से कभी न जाने देगा, चाहे उसकी जान ही क्यों न चली जाय।

(३)

एक महीना गुजर गया। दयाकृष्ण सिंगारसिंह के घर नहीं आया। न सिंगारसिंह ने उसकी परवाह की। इस एक ही मुलाकात में उसने समझ लिया था कि दया इस नये रंग में आनेवाला आदमी नहीं है। ऐसे सात्विकजनों के लिए उसके यहाँ स्थान न था। वहाँ तो रँगीले, रसिया, अय्याश और बिगड़े-दिलों ही की चाह थी। हाँ, लीला को हमेशा उसकी याद आती रहती थी।

मगर दयाकृष्ण के स्वभाव में अब वह संयल नहीं है। विलासिता का जादू उस पर भी चलता हुआ मालूम होता है। माधुरी के घर उसका भी आना-जाना शुरू हो गया है। वह सिंगारसिंह का मित्र नहीं रहा, प्रतिद्वन्दी हो गया है। दोनों एक ही प्रतिमा के उपासक हैं; मगर उनकी उपासना में अन्तर है। सिंगार की दृष्टि में माधुरी केवल विलास की एक वस्तु है, केवल विनोद का एक यन्त्र। दयाकृष्ण विनय की मूर्ति है, जो माधुरी की सेवा में ही प्रसन्न है। सिंगार माधुरी के हास-विलास को अपना जरखरीद हक समझता है, दयाकृष्ण इसी में सन्तुष्ट है कि माधुरी उसकी सेवाओं को स्वीकार करती है। माधुरी की ओर से जरा भी अरुचि देखकर वह उसी तरह बिगड़ जायगा, जैसे अपनी प्यारी घोड़ी की मुँहजोरी पर। दयाकृष्ण अपने को उसकी कृपा-दृष्टि के योग्य ही नहीं समझता। सिंगार जो कुछ माधुरी को देता है, गर्व-भरे आत्म-प्रदर्शन के साथ; मानो उस पर कोई एहसान कर रहा हो। दयाकृष्ण के पास देने को है ही क्या; पर वह जो कुछ भेंट करता है वह ऐसी श्रद्धा से, मानो देवता को फूल चढ़ाता हो। सिंगार का आसक्त मन माधुरी को अपने पिंजरे में बन्द रखना चाहता है, जिसमें उस पर किसी की निगाह न पड़े। दयाकृष्ण निर्लिप्त भाव से उसकी स्वच्छन्द क्रीड़ा का आनन्द उठाता है। माधुरी को अब तक जितने आदमियों से साबिका पड़ा था, वे सब सिंगार-सिंह की ही भाँति कामुकी, ईर्ष्यालु, दम्भी और कोमल भावों से शून्य थे, रूप

को भोगने की वस्तु समझनेवाले। दयाकृष्ण उन सबों से अलग था—सहृदयी, भद्र और सेवाशील, मानो उस पर अपनी आत्मा का समर्पण कर देना चाहता हो। माधुरी को अब अपने जीवन में कोई ऐसा पदार्थ मिल गया है, जिसे वह बड़ी एहतियात से सँभालकर रखना चाहती है। जड़ाऊ गहने अब उसकी आँखों में उतने मूल्यवान् नहीं रहे, जितनी यह फकीर की दी हुई तावीज। जड़ाऊ गहने हमेशा मिलेंगे, यह तावीज खो गयी, तो फिर शायद ही कभी हाथ आये। जड़ाऊ गहने केवल उसकी विलास-प्रवृत्ति को उत्तेजित करते हैं। पर इस तावीज में कोई दैवी शक्ति है, जो न-जाने कैसे उसमें सदनुराग और परिष्कार-भावना को जगाती है। दयाकृष्ण कभी प्रेम-प्रदर्शन नहीं करता, अपनी विरह-व्यथा के राग नहीं अलापता, पर माधुरी को उस पर पूरा विश्वास है। सिंगारसिंह के प्रलाप में उसे बनावट और दिखावे का आभास होता है। वह चाहती है, यह जल्द यहाँ से टले; लेकिन दयाकृष्ण के संयत भाषण में उसे गहराई तथा गाम्भीर्य और गुरुत्व का आभास होता है। औरों की वह प्रेमिका है; लेकिन दयाकृष्ण की आशिक, जिसके कदमों की आहट पाकर उसके अन्दर एक तूफान उठने लगता है। उसके जीवन में यह नयी अनुभूति है। अब तक वह दूसरों के भोग की वस्तु थी, अब कम-से-कम एक प्राणी की दृष्टि में वह आदर और प्रेम की वस्तु है। /

सिंगारसिंह को जबसे दयाकृष्ण के इस प्रेमाभिनय की सूचना मिली है, वह उसके खून का प्यासा हो गया है। ईर्ष्याग्नि से फुँका जा रहा है। उसने दयाकृष्ण के पीछे कई शोहदे लगा रखे हैं कि वे उसे जहाँ पायें, उसका काम तमाम कर दें। वह खुद पिस्तौल लिये उसकी टोह में रहता है। दयाकृष्ण इस खतरे को समझता है, जानता है; अपने नियत समय पर माधुरी के पास बिला नागा आ जाता है। मालूम होता है, उसे अपनी जान का कुछ भी मोह नहीं है। शोहदे उसे देखकर क्यों कतरा जाते हैं, मौका पाकर भी क्यों उस पर वार नहीं करते, इसका रहस्य वह नहीं समझता।

एक दिन माधुरी, ने उससे कहा—कृष्णजी, तुम यहाँ न आया करो। तुम्हें तो पता नहीं है; पर यहाँ तुम्हारे बीसों दुश्मन हैं। मैं डरती हूँ कि किसी दिन कोई बात न हो जाय।

शिशिर की तुषार-मण्डित सन्ध्या थी। माधुरी एक काश्मीरी शाल ओढ़े अँगीठी के सामने बैठी हुई थी। कमरे में बिजली का रजत प्रकाश फैला हुआ था। दयाकृष्ण ने देखा, माधुरी की आँखें सजल हो गयी हैं और वह मुँह फेरकर उन्हें दयाकृष्ण से छिपाने की चेष्टा कर रही है। प्रदर्शन पर सुख भोग करनेवाली रमणी क्यों इतना संकोच कर रही है, यह उसका अनाड़ी मन न समझ सका। हाँ, माधुरी के गोरे, प्रसन्न, सङ्कोच-हीन मुख पर लज्जा-मिश्रित मधुरिमा की ऐसी छटा उसने कभी न देखी थी। आज उसने उस मुख पर कुल-वधू की भीरु आकांक्षा और दृढ़ वात्सल्य देखा और उसके अभिनय में सत्य का उदय हो गया।

उसने स्थिर भाव से जवाब दिया—मैं तो किसी की बुराई नहीं करता, मुझसे किसी को क्यों वैर होने लगा। मैं यहाँ किसी का बाधक नहीं, किसी का विरोधी नहीं। दाता के द्वार पर सभी भिक्षुक जाते हैं। अपना-अपना भाग्य है, किसी को एक चुटकी मिलती है, किसी को पूरा थाल। कोई क्यों किसी से जले? अगर किसी पर तुम्हारी विशेषकृपा है, तो मैं उसे भाग्यशाली समझकर उसका आदर करूँगा। जलूँ क्यों?

माधुरी ने स्नेह-कातर स्वर में कहा—जी नहीं, आप कल से न आया कीजिए।

दयाकृष्ण मुसकराकर बोला—तुम मुझे यहाँ आने से नहीं रोक सकतीं। भिक्षुक को तुम दुत्कार सकती हो, द्वार पर आने से नहीं रोक सकतीं।

माधुरी स्नेह की आँखों से उसे देखने लगी, फिर बोली—क्या सभी आदमी तुम्हीं-जैसे निष्कपट हैं?

'तो फिर मैं क्या करूँ?'

'यहाँ न आया करो।'

'यह मेरे बस की बात नहीं।'

माधुरी एक क्षण तक विचार करके बोली—एक बात कहूँ, मानोगे? चलो, हम-तुम किसी दूसरे नगर की राह लें।

'केवल इसीलिए कि कुछ लोग मुझसे खार खाते हैं?'

'खार नही खाते, तुम्हारी जान के ग्राहक हैं।'

दयाकृष्ण उसी अविचलित भाव से बोला—जिस दिन प्रेम का यह पुरस्कार मिलेगा, वह मेरे जीवन का नया दिन होगा, माधुरी! इससे अच्छी मृत्यु और क्या हो सकती है? तब मैं तुमसे पृथक् न रहकर तुम्हारे मन में, तुम्हारी स्मृति में रहूँगा।

माधुरी ने कोमल हाथ से उसके गाल पर थपकी दी। उसकी आँखें भर आयी थीं। इन शब्दों में जो प्यार भरा हुआ था, वह जैसे पिचकारी की धार की तरह उसके हृदय में समा गया। ऐसी विकल वेदना! ऐसा नशा! इसे वह क्या कहे?

उसने करुण स्वर में कहा—ऐसी बातें न किया करो कृष्ण, नहीं तो मैं सच कहती हूँ, एक दिन जहर खाकर तुम्हारे चरणों पर सो जाऊँगी। तुम्हारे इन शब्दों में न-जाने क्या जादू था कि मैं जैसे फुँक उठी। अब आप खुदा के लिए यहाँ न आया कीजिए, नहीं तो देख लेना, मैं एक दिन प्राण दे दूँगी। तुम क्या जानो, हत्यारा सिंगार किस बुरी तरह तुम्हारे पीछे पड़ा हुआ है। मैं उसके शोहदों की खुशामद करते-करते हार गयी। कितना कहती हूँ, दयाकृष्ण से मेरा कोई सम्बन्ध नहीं, उसके सामने तुम्हारी कितनी निन्दा करती हूँ, कितना कोसती हूँ; लेकिन उस निर्दयी को मुझ पर विश्वास नहीं आता। तुम्हारे लिए मैंने इन गुण्डों की कितनी मिन्नतें की हैं, उनके हाथों कितना अपमान सहा है, वह तुमसे न कहना ही अच्छा है। जिनका मुँह देखना भी मैं अपनी शान के खिलाफ समझती हूँ, उनके पैरों पड़ी हूँ; लेकिन ये कुत्ते हड्डियों के टुकड़े पाकर और भी शेर हो जाते हैं। मैं अब उनसे तंग आ गयी हूँ और तुमसे हाथ जोड़कर कहती हूँ कि यहाँ से किसी ऐसी जगह चले चलो, जहाँ हमें कोई न जानता हो। वहाँ शान्ति के साथ पड़े रहें। मैं तुम्हारे साथ सब कुछ झेलने को तैयार हूँ। आज इसका निश्चय कराये बिना मैं तुम्हें न जाने दूँगी। मैं जानती हूँ, तुम्हें मुझ पर अब भी विश्वास नहीं है। तुम्हें सन्देह है कि तुम्हारे साथ कपट करूँगी।

दयाकृष्ण ने टोंका—नहीं माधुरी, तुम मेरे साथ अन्याय कर रही हो। मेरे मन में कभी ऐसा सन्देह नहीं आया। पहले ही दिन मुझे न-जाने क्यों, कुछ ऐसा प्रतीत हुआ कि तुम अपनी और बहनों से पृथक् हो। मैंने तुममें वह शील और संकोच देखा, जो मैंने कुलवधुओं में देखा है।

माधुरी ने उसकी आँखों में आँखें गड़ाकर कहा—तुम झूठ बोलने की कला में इतने निपुण नहीं हो कृष्ण, कि वेश्या को भुलावा दे सको! मैं न शीलवती हूँ, न संकोचवती हूँ और न अपनी दूसरी बहनों से भिन्न हूँ। मैं वेश्या हूँ, उतनी ही कलुषित, उतनी ही विलासान्ध, उतनी ही मायाविनी, जितनी मेरी दूसरी बहनें; बल्कि उनसे कुछ ज्यादा। न तुम अन्य पुरुषों की तरह मेरे पास विनोद और वासना-तृप्ति के लिए आये थे। नहीं महीनों आते रहने पर भी तुम यों अलिप्त न रहते। तुमने कभी डींग नहीं मारी, मुझे धन का प्रलोभन नहीं दिया। मैंने भी कभी तुमसे धन की आशा नहीं की। तुमने अपनी वास्तविक स्थिति मुझसे कह दी। फिर भी मैंने तुम्हें एक नहीं, अनेक ऐसे अवसर दिये कि कोई दूसरा आदमी उन्हें न छोड़ता; लेकिन तुम्हें मैं अपने पंजे में न ला सकी। तुम चाहे और जिस इरादे से आये हो, भोग की इच्छा से नहीं आये। अगर मैं तुम्हें इतना नीच, इतना हृदयहीन, इतना विलासान्ध समझती, तो इस तरह तुम्हारे नाज न उठाती। फिर मैं भी तुम्हारे साथ मित्र-भाव रखने लगी। समझ लिया, मेरी परीक्षा हो रही है। जब तक इस परीक्षा में सफल न हो जाऊँ, तुम्हें नहीं पा सकती। तुम जितने सज्जन हो, उतने ही कठोर हो।

यह कहते हुए माधुरी ने दयाकृष्ण का हाथ पकड़ लिया और अनुराग और समर्पण-भरी चितवनों से उसे देखकर बोली—सच बताओ कृष्ण, तुम मुझमें क्या देखकर आकर्षित हुए थे? देखो, बहानेबाजी न करना। तुम रूप पर मुग्ध होने वाले आदमी नहीं हो, मैं कसम खा सकती हूँ।

दयाकृष्ण ने संकट में पड़ कर कहा—रूप इतनी तुच्छ वस्तु नहीं है, माधुरी! वह मन का आईना है।

'यहाँ मुझसे रूपवान् स्त्रियों की कमी नहीं है।'

'यह तो अपनी-अपनी निगाह है। मेरे पूर्व संस्कार रहे होंगे।'

माधुरी ने भँवें सिकोड़कर कहा—तुम फिर झूठ बोल रहे हो, चेहरा कहे देता है।

दयाकृष्ण ने परास्त होकर पूछा—पूछकर क्या करोगी, माधुरी? मैं डरता हूँ, कहीं तुम मुझसे घृणा न करने लगो। सम्भव है, तुम मेरा जो रूप देख रही हो, वह मेरा असली रूप न हो।

माधुरी का मुँह लटक गया। विरक्त-सी होकर बोली—इसका खुले शब्दों में यह अर्थ है कि तुम्हें मुझ पर विश्वास नहीं। ठीक है, वेश्याओं पर विश्वास करना भी नहीं चाहिए। विद्वानों और महात्माओं का उपदेश कैसे न मानोगे ?

नारी-हृदय इस समस्या पर विजय पाने के लिए अपने अस्त्रों से काम लेने लगा।

दयाकृष्ण पहले ही हमले में हिम्मत छोड़ बैठा। बोला—तुम तो नाराज हुई जाती हो, माधुरी ! मैंने तो केवल इस विचार से कहा था कि तुम मुझे धोखेबाज समझने लगोगी। तुम्हें शायद मालूम नहीं है, सिंगारसिंह ने मुझ पर कितने एहसान किये हैं। मैं उन्हीं के टुकड़ों पर पला हूँ। इसमें रत्ती-भर भी मुबालगा नहीं है। यहाँ आकर जब मैंने उनके रंग-ढंग देखे और उनकी साध्वी स्त्री लीला को बहुत दुखी पाया, तो सोचते-सोचते मुझे यही उपाय सूझा कि किसी तरह सिंगारसिंह को तुम्हारे पंजे से छुड़ाऊँ। मेरे इस अभिमान का यही रहस्य है, लेकिन उन्हें छुड़ा तो न सका, खुद फँस गया। मेरे इस फरेब की जो सजा चाहो दो, सिर झुकाये हुए हूँ।

माधुरी का अभिमान टूट गया। जल कर बोली—तो यह कहिए कि आप लीला देवी के आशिक हैं। मुझे पहले से मालूम होता, तो तुम्हें इस घर में घुसने न देती। तुम तो एक छिपे रुस्तम निकले।

वह तोते के पिंजरे के पास जाकर उसे पुचकारने का बहाना करने लगी। मन में जो एक दाह उठ रही थी, उसे कैसे शान्त करे ?

दयाकृष्ण ने तिरस्कार-भरे स्वर में कहा—मैं लीला का आशिक नहीं हूँ, माधुरी ! उस देवी को कलंकित न करो। मैं आज तुमसे शपथ खाकर कहता हूँ कि मैंने कभी उसे इस निगाह से नहीं देखा। उसके प्रति मेरा वही भाव था, जो अपने किसी आत्मीय को दुःख में देखकर हर एक मनुष्य के मन में आता है।

'किसी से प्रेम करना तो पाप नहीं है, तुम व्यर्थ में अपनी और लीला की सफाई दे रहे हो।'

'मैं नहीं चाहता कि लीला पर किसी तरह का आक्षेप किया जाय।'

'अच्छा साहब, लीजिए; लीला का नाम न लूँगी। मैंने मान लिया, वह सती है, साध्वी है और केवल उनकी आज्ञा से........

दयाकृष्ण ने बात काटी—उनकी कोई आज्ञा नहीं थी।

'ओ हो, तुम तो जबान पकड़ते हो, कृष्ण ! क्षमा करो, उनकी आज्ञा से नहीं तुम अपनी इच्छा से आये। अब तो राजी हुए अब यह बताओ, आगे तुम्हारे क्या इरादे हैं ? मैं वचन तो दे दूँगी; मगर अपने संस्कारों को नहीं बदल सकती। मेरा मन दुर्बल है। मेरा सतीत्व कब का नष्ट हो चुका है। अन्य मूल्यवान् पदार्थों की तरह रूप और यौवन की रक्षा भी बलवान् हाथों से हो सकती है। मैं तुमसे पूछती हूँ, तुम मुझे अपनी शरण में लेने पर तैयार हो ! तुम्हारा आश्रय पाकर तुम्हारे प्रेम की शक्ति से, मुझे विश्वास है, मैं जीवन के सारे प्रलोभनों का सामना कर सकती हूँ। मैं इस सोने के महल को ठुकरा दूँगी; लेकिन इसके बदले मुझे किसी हरे वृक्ष की छाँह तो मिलनी चाहिए। वह छाँह तुम मुझे दोगे ? अगर नहीं दे सकते, तो मुझे छोड़ दो। मैं अपने हाल में मगन हूँ। मैं वादा करती हूँ, सिंगारसिंह से मैं कोई सम्बन्ध न रखूँगी। वह मुझे घेरेगा, रोयेगा। सम्भव है, गुण्डों से मेरा अपमान कराये, आतंक दिखाये। लेकिन मैं सब कुछ झेल लूँगी, तुम्हारी खातिर से....'

आगे और कुछ न कहकर वह तृष्णा-भरी, लेकिन उसके साथ ही निरपेक्ष नेत्रों से दयाकृष्ण की ओर देखने लगी, जैसे दूकानदार गाहक को बुलाता तो है पर साथ ही यह भी दिखाना चाहता है कि उसे उसकी परवाह नहीं है।

दयाकृष्ण क्या जवाब दे ? संघर्षमय संसार में वह अभी केवल एक कदम टिका पाया है। इधर वह अंगुल-भर जगह भी उससे छिन गयी है। शायद जोर मारकर वह फिर वह स्थान पा जाय; लेकिन वहाँ बैठने की जगह नहीं। और एक दूसरे प्राणी को लेकर तो वह खड़ा भी नहीं रह सकता। अगर मान लिया जाय कि अदम्य उद्योग से दोनों के लिए स्थान निकाल लेगा, तो आत्म सम्मान को कहाँ ले जाय ? संसार क्या कहेगा ? लीला क्या फिर उसका मुँह देखना चाहेगी ? सिंगार से वह फिर आँखें मिला सकेगा ? यह भी छोड़ो। लीला अगर उसे पतित समझती है, समझे। सिंगार अगर उससे जलता है तो जले, उसे इसकी परवाह नहीं। लेकिन अपने मन को क्या करे ? विश्वास उसके अन्दर आकर जाल में फँसे पक्षी की भाँति फड़फड़ा कर निकल भागता है। कुलीना अपने साथ विश्वास का वरदान लिये आती

है। उसके साहचर्य में हमें कभी सन्देह नहीं होता। वहाँ सन्देह के लिए प्रत्यक्ष प्रमाण चाहिए। कुत्सिता सन्देह का संस्कार लिये आती है। वहाँ विश्वास के लिए प्रत्यक्ष—अत्यन्त प्रत्यक्ष—प्रमाण की जरूरत है। उसने नम्रता से कहा—तुम जानती हो, मेरी क्या हालत है ?

'हाँ, खूब जानती हूँ।'

'और उस हालत में तुम प्रसन्न रह सकोगी ?'

'तुम ऐसा प्रश्न क्यों करते हो, कृष्ण ? मुझे दुःख होता है। तुम्हारे मन में जो सन्देह है, वह मैं जानती हूँ, समझती हूँ। मुझे भ्रम हुआ था कि तुमने भी मुझे जान लिया है, समझ लिया है। अब मालूम हुआ, मैं धोखे में थी।'

वह उठकर वहाँ से जाने लगी। दयाकृष्ण ने उसका हाथ पकड़ लिया और प्रार्थी-भाव से बोला—तुम मेरे साथ अन्याय कर रही हो, माधुरी! मैं सत्य कहता हूँ, ऐसी कोई बात नहीं है....

माधुरी ने खड़े-खड़े विरक्त मन से कहा—तुम झूठ बोल रहे हो, बिलकुल झूठ। तुम अब भी मन से यह स्वीकार नहीं कर रहे हो कि कोई स्त्री स्वेच्छा से रूप का व्यवसाय नहीं करती। पैसे के लिए अपनी लज्जा को उघाड़ना, तुम्हारी समझ में कुछ ऐसे आनन्द की बात है, जिसे वेश्या शौक से करती है। तुम वेश्या में स्त्रीत्व का होना सम्भव से बहुत दूर समझते हो। तुम इसकी कल्पना ही नहीं कर सकते कि वह क्यों अपने प्रेम में स्थिर नहीं होती। तुम नहीं जानते, कि प्रेम के लिए उसके मन में कितनी व्याकुलता होती है और जब वह सौभाग्य से उसे पा जाती है, तो किस तरह प्राणों की भाँति उसे संचित रखती है। खारे पानी के समुद्र में मीठे पानी का छोटा-सा पात्र कितना प्रिय होता है, इसे वह क्या जाने, जो मीठे पानी के मटके उँडेलता रहता हो।

दयाकृष्ण कुछ ऐसे असमंजस में पड़ा हुआ था कि उसके मुँह से एक भी शब्द न निकला। उसके मन में जो शंका चिनगारी की भाँति छिपी हुई है, वह बाहर निकलकर कितनी भयंकर ज्वाला उत्पन्न कर देगी। उसने कपट का जो अभिनय किया था, प्रेम का जो स्वाँग रचा था, उसकी ग्लानि उसे और भी व्यथित कर रही थी।

सहसा माधुरी ने निष्ठुरता से पूछा—तुम यहाँ क्यों बैठे हो ?

दयाकृष्ण ने अपमान को पीकर कहा—मुझे सोचने के लिए कुछ समय दो, माधुरी !

'क्या सोचने के लिए ?'

'अपना कर्त्तव्य।'

'मैंने अपना कर्त्तव्य सोचने के लिए तो तुमसे समय नहीं माँगा। तुम अगर मेरे उद्धार की बात सोच रहे हो, तो उसे दिल से निकाल डालो। मैं भ्रष्टा हूँ और तुम साधुता के पुतले हो—जब तक यह भाव तुम्हारे अन्दर रहेगा, मैं तुमसे उसी तरह बात करूँगी जैसे औरों के साथ करती हूँ। अगर भ्रष्टा हूँ, तो जो लोग यहाँ अपना मुँह काला करने आते हैं, वे कुछ कम भ्रष्ट नहीं हैं। तुम जो एक मित्र की स्त्री पर दाँत लगाये हुए हो, तुम जो एक सरला अबला के साथ झूठे प्रेम का स्वाँग करते हो, तुम्हारे हाथों अगर मुझे स्वर्ग भी मिलता हो, तो उसे ठुकरा दूँ।

दयाकृष्ण ने लाल आँखें करके कहा—तुमने फिर वही आक्षेप किया ?

माधुरी तिलमिला उठी। उसकी रही-सही मृदुता भी ईर्ष्या के उमड़ते हुए प्रवाह में समा गयी। लीला पर आक्षेप भी असह्य है, इसलिए कि वह कुलवधू है! मैं वेश्या हूँ, इसलिए मेरे प्रेम का उपहार भी स्वीकार नहीं किया जा सकता!

उसने अविचलित भाव से कहा—आक्षेप नहीं कर रही हूँ, सच्ची बात कह रही हूँ। तुम्हारे डर से बिल खोदने जा रही हूँ। तुम स्वीकार करो या न करो, तुम लीला पर मरते हो। तुम्हारी लीला तुम्हें मुबारक रहे। मैं अपने सिंगार-सिंह ही में प्रसन्न हूँ, उद्धार की लालसा अब नहीं रही। पहले जाकर अपना उद्धार करो। अब से खबरदार कभी भूल कर भी यहाँ न आना, नहीं तो पछताओगे। तुम जैसे रँगे हुए पतितों का उद्धार नहीं करते। उद्धार वही कर सकते हैं, जो उद्धार के अभिमान को हृदय में आने ही नहीं देते। जहाँ प्रेम है, वहाँ किसी तरह का भेद नहीं रह सकता।

यह कहने के साथ ही वह उठ कर बराबर वाले दूसरे कमरे में चली गयी और अन्दर से द्वार बन्द कर लिया। दयाकृष्ण कुछ देर वहाँ मर्माहत-सा रहा, फिर धीरे-धीरे नीचे उतर गया, मानों देह में प्राण न हो।

४

दो दिन दयाकृष्ण घर से न निकला। माधुरी ने उसके साथ जो व्यवहार किया, इसकी उसे आशा न थी। माधुरी को उससे प्रेम था, इसका उसे विश्वास था; लेकिन जो प्रेम इतना असहिष्णु हो, जो दूसरे के मनोभावों का जरा भी विचार न करे, जो मिथ्या कलंक आरोपण करने में भी संकोच न करे, वह उन्माद हो सकता है, प्रेम नहीं। उसने बहुत अच्छा किया कि माधुरी के कपट-जाल में न फँसा नहीं तो उसकी न-जाने क्या दुर्गति होती।

पर दूसरे क्षण उसके भाव बदल जाते और माधुरी के प्रति उसका मन कोमलता से भर जाता। अब वह अपनी अनुदारता पर, अपनी संकीर्णता पर पछताता। उसे माधुरी पर सन्देह करने का कोई कारण न था। ऐसी दशा में ईर्ष्या स्वाभाविक है और वह ईर्ष्या ही क्या, जिसमें डंक न हो, विष न हो। माना, समाज उसकी निन्दा करता। यह भी मान लिया कि माधुरी सती भार्या न होती। कम-से-कम सिंगारसिंह तो उसके पंजे से निकल जाता। दयाकृष्ण के सिर से ऋण का भार तो कुछ हलका हो जाता, लीला का जीवन तो सुखी हो जाता।

सहसा किसी ने द्वार खटखटाया। उसने द्वार खोला, तो सिंगारसिंह सामने खड़ा था। बाल बिखरे हुए, कुछ अस्त-व्यस्त।

दयाकृष्ण ने हाथ मिलाते हुए पूछा—क्या पाँव-पाँव ही आ रहे हो, मुझे क्यों न बुला लिया?

सिंगार ने उसे चुभती हुई आँखों से देखकर कहा—मैं तुमसे यह पूछने आया हूँ कि माधुरी कहाँ है? अवश्य तुम्हारे घर में होगी।

'क्यों, अपने घर पर होगी, मुझे क्या खबर? मेरे घर क्यों आने लगी?'

'इन बहानों से काम न चलेगा, समझ गये? मैं कहता हूँ, मैं तुम्हारा खून पी जाऊँगा वरना ठीक-ठीक बता दो, वह कहाँ गयी?'

'मैं बिलकुल कुछ नहीं जानता, तुम्हें विश्वास दिलाता हूँ। मैं तो दो दिन से घर से निकला ही नहीं।'

'रात को मैं उसके पास था। सबेरे मुझे उसका यह पत्र मिला। मैं उसी वक्त दौड़ा हुआ उसके घर गया। वहाँ उसका पता न था। नौकरों से इतना

मालूम हुआ, ताँगे पर बैठकर कहीं गयी है। कहाँ गयी है, यह कोई न बता सका। मुझे शक हुआ, यहाँ आयी होगी। जब तक तुम्हारे घर की तलाशी न ले लूँगा, मुझे चैन न आयेगी।'

उसने मकान का एक-एक कोना देखा, तख्त के नीचे, आलमारी के पीछे। तब निराश होकर बोला—बड़ी बेवफा और मक्कार औरत है। जरा इस खत को पढ़ो।

दोनों फर्श पर बैठ गये। दयाकृष्ण ने पत्र लेकर पढ़ना शुरू किया—

'सरदार साहब! मैं आज कुछ दिनों के लिए यहाँ से जा रही हूँ, कब लौटूँगी, कुछ नहीं जानती। कहाँ जा रही हूँ, यह भी नहीं जानती। जा इसलिए रही हूँ कि इस बेशर्मी और बेहयाई की जिन्दगी से मुझे घृणा हो रही है, और घृणा हो रही है उन लम्पटों से, जिनके कुत्सित विलास का मैं खिलौना थी और जिनमें तुम मुख्य हो। तुम महीनों से मुझ पर सोने और रेशम की वर्षा कर रहे हो; मगर मैं तुमसे पूछती हूँ, उससे लाख गुने सोने और दस लाख गुने रेशम पर भी तुम अपनी बहन या स्त्री को इस रूप के बाजार में बैठने दोगे? कभी नहीं। उन देवियों में कोई ऐसी वस्तु है, जिसे तुम संसार-भर की दौलत से भी मूल्यवान् समझते हो। लेकिन जब तुम शराब के नशे में चूर, अपने एक-एक अंग में काम का उन्माद भरे आते थे, तो तुम्हें कभी ध्यान आता था कि तुम उसी अमूल्य वस्तु को किस निर्दयता के साथ पैरों से कुचल रहे हो? कभी ध्यान आता था कि अपनी कुल-देवियों को इस अवस्था में देखकर तुम्हें कितना दुःख होता? कभी नहीं। यह उन गीदड़ों और गिद्धों की मनोवृत्ति है, जो किसी लाश को देखकर चारों ओर से जमा हो जाते हैं, और उसे नोच-नोचकर खाते हैं। यह समझ रक्खो, नारी अपना बस रहते हुए कभी पैसों के लिए अपने को समर्पित नहीं करती। यदि वह ऐसा कर रही है, तो समझ लो कि उसके लिए और कोई आश्रय, और कोई आधार नहीं है, और पुरुष इतना निर्लज्ज है कि उसकी दुरवस्था से अपनी वासना तृप्त करता है और इसके साथ ही इतना निर्दय कि उसके माथे पर पतिता का कलंक लगा कर उसे उसी दुरवस्था में मरते देखना चाहता है। क्या वह नारी नहीं है? क्या नारीत्व के पवित्र मन्दिर में उसका स्थान नहीं है? लेकिन तुम उसे उस

मन्दिर में घुसने नहीं देते। उसके स्पर्श से मन्दिर की प्रतिमा भ्रष्ट हो जायगी। खैर, पुरुष-समाज जितना अत्याचार चाहे, कर ले। हम असहाय हैं, आत्माभिमान को भूल बैठी हैं लेकिन....'

सहसा सिंगारसिंह ने उसके हाथ से वह पत्र छीन लिया और जेब में रखता हुआ बोला—क्या बड़े गौर से पढ़ रहे हो, कोई नयी बात नहीं है। सब कुछ वही है, जो तुमने सिखाया है। यही करने तो तुम उसके यहाँ जाते थे। मैं कहता हूँ, तुम्हें मुझसे इतनी जलन क्यों हो गयी? मैंने तो तुम्हारे साथ कोई बुराई न की थी। इस साल-भर में मैंने माधुरी पर दस हजार से कम न फूँके होंगे। घर में जो कुछ मूल्यवान् था, वह मैंने उसके चरणों पर चढ़ा दिया और आज उसे साहस हो रहा है कि वह हमारी कुल-देवियों की बराबरी करे! यह सब तुम्हारा प्रसाद है। सत्तर चूहे खाके बिल्ली हज को चली! कितनी बेवफा जात है! ऐसों को तो गोली मार दे। जिसपर सारा घर लुटा दिया, जिसके पीछे सारे शहर में बदनाम हुआ, वह आज मुझे उपदेश करने चली है! जरूर इसमें कोई-न-कोई रहस्य है। कोई नया शिकार फँसा होगा; मगर मुझसे भागकर जायगी कहाँ, ढूँढ़ न निकालूँ तो नाम नहीं। कम्बख्त कैसी प्रेम-भरी बातें करती थी कि मुझपर घड़ों नशा चढ़ जाता था। बस, कोई नया शिकार फँस गया। यह बात न हो, तो मूँछ मुड़ा लूँ।

दयाकृष्ण उसके सफाचट चेहरे की ओर देखकर मुसकराया—तुम्हारी मूँछें तो पहले ही मुड़ चुकी हैं!

इस हलके-से विनोद ने जैसे सिंगारसिंह के घाव पर मरहम रख दिया। वह बे-सरो-सामान घर, वह फटा फर्श, वे टूटी-फूटी चीजें देखकर उसे दयाकृष्ण पर दया आ गयी। चोट की तिलमिलाहट में वह जवाब देने के लिए ईंट-पत्थर ढूँढ़ रहा था; पर अब चोट ठण्ढी पड़ गयी थी और दर्द घनीभूत हो रहा था। दर्द के साथ-साथ सौहार्द भी जाग रहा था। जब आग ही गयी तो धुआँ कहाँ से आता?

उसने पूछा—सच कहना, तुमसे भी कभी प्रेम की बातें करती थी?

दयाकृष्ण ने मुसकराते हुए कहा—मुझसे! मैं तो खाली उसकी सूरत देखने जाता था।

'सूरत देखकर दिल पर काबू तो नहीं रहता।'

'यह तो अपनी-अपनी रुचि है।'

'है मोहनी, देखते ही कलेजे पर छुरी चल जाती है।'

'मेरे कलेजे पर तो कभी छुरी नहीं चली। यही इच्छा होती थी कि इसके पैरों पर गिर पड़ूँ।'

'इसी शायरी ने तो यह अनर्थ किया। तुम-जैसे बुद्धुओं को किसी देहातिन से शादी करके रहना चाहिए। चले थे वेश्या से प्रेम करने!'

एक क्षण के बाद उसने फिर कहा—मगर है बेवफा, मक्कार!

'तुमने उससे वफा की आशा की, मुझे तो यही अफसोस है।'

'तुमने वह दिल ही नहीं पाया, तुमसे क्या कहूँ।'

एक मिनट के बाद उसने सहृदय-भाव से कहा—अपने पत्र में उसने बातें तो सच्ची लिखी हैं, चाहे कोई माने या न माने? सौन्दर्य को बाजारू चीज समझना कुछ बहुत अच्छी बात तो नहीं है।

दयाकृष्ण ने पुचारा दिया—जब स्त्री अपना रूप बेचती है, तो उसके खरीदार भी निकल आते हैं। फिर यहाँ तो कितनी ही जातियाँ हैं, जिनका यही पेशा है।

'यह पेशा चला कैसे?'

'स्त्रियों की दुर्बलता से।'

'नहीं, मैं समझता हूँ, बिस्मिल्लाह पुरुषों ने की होगी।'

इसके बाद एकाएक जेब से घड़ी निकालकर देखता हुआ बोला—ओहो! दो बज गये और अभी मैं यहीं बैठा हूँ। आज शाम को मेरे यहाँ खाना खाना। जरा इस विषय पर बातें होंगी। अभी तो उसे ढूँढ़ निकालना है। वह है कहीं इसी शहर में। घरवालों से भी कुछ नहीं कहा। बुढ़िया नायका सिर पीट रही थी। उस्तादजी अपनी तकदीर को रो रहे थे। न-जाने कहाँ जाकर छिप रही।

उसने उठकर दयाकृष्ण से हाथ मिलाया और चला।

दयाकृष्ण ने पूछा—मेरी तरफ से तो तुम्हारा दिल साफ हो गया?

सिंगार ने पीछे फिरकर कहा—हुआ भी और नहीं भी हुआ। और बाहर निकल गया।

५

सात-आठ दिन तक सिंगारसिंह ने सारा शहर छाना, पुलिस में रिपोर्ट की, समाचार-पत्रों में नोटिस छपायी, अपने आदमी दौड़ाये; लेकिन माधुरी का कुछ भी सुराग न मिला कि फिर महफिल गर्म होती। मित्रवृन्द सुबह-शाम हाजिरी देने आते और अपना-सा मुँह लेकर लौट जाते। सिंगार के पास उनके साथ गपशप करने का समय न था।

गरमी के दिन, सजा हुआ कमरा भट्ठी बना हुआ था। खस की टट्टियाँ भी थीं, पंखा भी; लेकिन गरमी जैसे किसी के समझाने-बुझाने की परवाह नहीं करना चाहती, अपने दिल का बुखार निकालकर ही रहेगी।

सिंगारसिंह अपने भीतरवाले कमरे मे बैठा हुआ पेग-पर-पेग चढ़ा रहा था; पर अन्दर की आग न शान्त होती थी। इस आग ने ऊपर की घास-फूस को जलाकर भस्म कर दिया था और अब अन्तस्तल की जड़ विरक्ति और अचल विचार को द्रवित करके बड़े वेग से ऊपर फेंक रही थी। माधुरी की बेवफाई ने उसके आमोदी हृदय को इतना आहत कर दिया था कि अब अपना जीवन ही उसे बेकार-सा मालूम होता था। माधुरी उसके जीवन में सबसे सत्य वस्तु थी, सत्य भी और सुन्दर भी। उसके जीवन की सारी रेखाएँ इसी बिन्दु पर आकर जमा हो जाती थीं। वह विन्दु एकाएक पानी के बुल-बुले की भाँति मिट गया और अब वे सारी रेखाएँ, वे सारी भावनाएं वे सारी मृदु स्मृतियाँ उन झल्लायी हुई मधु-मक्खियों की तरह भनभनाती फिरती थीं, जिनका छत्ता जला दिया गया हो। जब माधुरी ने कपट व्यवहार किया तो और किससे कोई आशा की जाय? इस जीवन ही में क्या है? आम में रस ही न रहा, तो गुठली किस काम की?

लीला कई दिनों से महफिल में सन्नाटा देखकर चकित हो रही थी। उसने कई महीनों से घर के किसी विषय में बोलना छोड़ दिया था। बाहर से जो आदेश मिलता था, उसे बिना कुछ कहे-सुने पूरा करना ही उसके जीवन का क्रम था। वीतराग-सी हो गयी थी। न किसी शौक से वास्ता था, न सिंगार से।

मगर इस कई दिन के सन्नाटे ने उसके उदास मन को भी चिन्तित कर दिया। चाहती थी कि कुछ पूछे; लेकिन पूछे कैसे? मान जो टूट जाता। मान ही किस बात का? मान तब करे, जब कोई उसकी बात पूछता हो। मान-अपमान से उसे प्रयोजन नहीं। नारी ही क्यों हुई?

उसने धीरे धीरे कमरे का पर्दा हटाकर अन्दर झाँका। देखा, सिंगारसिंह सोफा पर चुपचाप लेटा हुआ है, जैसे कोई पक्षी साँझ के सन्नाटे में परों में मुँह छिपाये बैठा हो।

समीप आकर बोली—मेरे मुँह पर तो ताला डाल दिया गया है; लेकिन क्या करूँ, बिना बोले रहा नहीं जाता। कई दिन से सरकार की महफिल में सन्नाटा क्यों है? तबीअत तो अच्छी है?

सिंगार ने उसकी ओर आँखें उठायीं। उनमें व्यथा भरी हुई थी। कहा—तुम अपने मैके क्यों नहीं चली जातीं लीला?

'आपकी जो आज्ञा; पर यह तो मेरे प्रश्न का उत्तर न था।'

'वह कोई बात नहीं। मैं बिलकुल अच्छा हूँ। ऐसे बेहयाओं को मौत भी नहीं आती। अब इस जीवन से जी भर गया। कुछ दिनों के लिए बाहर जाना चाहता हूँ। तुम अपने घर चली जाओ, तो मैं निश्चिन्त हो जाऊँ।'

'भला, आपको मेरी इतनी चिन्ता तो है।'

'अपने साथ जो कुछ ले जाना चाहती हो, ले जाओ।'

'मैंने इस घर की चीजों को अपनी समझना छोड़ दिया है।'

'मैं नाराज होकर नहीं कह रहा हूँ, लीला! न-जाने कब लौटूँ, तुम यहाँ अकेली कैसे रहोगी?'

कई महीने के बाद लीला ने पति की आँखों में स्नेह की झलक देखी।

'मेरा विवाह तो इस घर की सम्पत्ति से नहीं हुआ है, तुमसे हुआ है। जहाँ तुम रहोगे, वहीं मैं भी रहूँगी।'

'मेरे साथ तो अब तक तुम्हें रोना ही पड़ा।'

लीला ने देखा, सिंगार की आँखों में आँसू की एक बूँद नीले आकाश में चन्द्रमा की तरह गिरने-गिरने हो रही थी। उसका मन भी पुलकित हो उठा। महीनों की क्षुधाग्नि में जलने के बाद अन्न का एक दाना पाकर वह उसे कैसे ठुकरा दे? पेट नहीं भरेगा, कुछ भी नहीं होगा, लेकिन उस दाने को ठुकराना क्या उसके बस की बात थी?

उसने बिलकुल पास आकर, अपने अञ्चल को उसके समीप ले जाकर कहा—मैं तो तुम्हारी हो गयी। हँसाओगे, हँसूँगी, रुलाओगे, रोऊँगी, रखोगे तो रहूँगी, निकालोगे तो भी रहूँगी, मेरा घर तुम हो, धर्म तुम हो, अच्छी हूँ तो तुम्हारी हूँ, बुरी हूँ तो तुम्हारी हूँ।

और दूसरे क्षण सिंगार के विशाल सीने पर उसका सिर रखा हुआ था और उसके हाथ थे लीला की कमर में। दोनों के मुख पर हर्ष की लाली थी, आँखों में हर्ष के आँसू और मन में एक ऐसा तूफान, जो उन्हें न-जाने कहाँ उड़ा ले जायगा।

एक क्षण के बाद सिंगार ने कहा—तुमने कुछ सुना, माधुरी भाग गयी और पगला दयाकृष्ण उसकी खोज में निकला है!

लीला को विश्वास न आया—दयाकृष्ण!

'हाँ जी, जिस दिन वह भागी है, उसके दूसरे ही दिन वह भी चल दिया।'

'वह तो ऐसा नहीं है। और माधुरी क्यों भागी?'

'दोनों में प्रेम हो गया था। माधुरी उसके साथ रहना चाहती थी। वह राजी न हुआ।'

लीला ने एक लम्बी साँस ली। दयाकृष्ण के वे शब्द याद आये, जो उसने कई महीने पहले कहे थे। दयाकृष्ण की वे याचना-भरी आँखें उसके मन को मसोसने लगीं।

सहसा किसी ने बड़े जोर से द्वार खोला और धड़धड़ाता हुआ भीतर वाले कमरे के द्वार पर आ गया।

सिंगार ने चकित होकर कहा—'अरे? तुम्हारी यह क्या हालत है, कृष्णा? किधर से आ रहे हो?'

दयाकृष्ण की आँखें लाल थीं, सिर और मुँह पर गर्द जमी हुई, चेहरे पर घबराहट, जैसे कोई दीवाना हो।

उसने चिल्लाकर कहा—तुमने सुना, माधुरी इस संसार में नहीं रही!

और दोनों हाथों से सिर पीट-पीटकर रोने लगा, मानो हृदय और प्राणों को आँखों से बहा देगा।

चमत्कार

बी० ए० पास करने के बाद चन्द्रप्रकाश को एक ट्यूशन करने के सिवा और कुछ न सूझा। उनकी माता पहले ही मर चुकी थीं, इसी साल पिता का भी देहान्त हो गया और प्रकाश जीवन के जो मधुर स्वप्न देखा करता था, वे सब धूल में मिल गये। पिता ऊँचे ओहदे पर थे, उनकी कोशिश से चन्द्रप्रकाश को कोई अच्छी जगह मिलने की पूरी आशा थी; पर वे सब मनसूबे धरे रह गये और अब गुज़र-बसर के लिए वही ३०) महीने की ट्यूशन रह गई। पिता ने कुछ सम्पत्ति भी न छोड़ी, उलटे बधू का बोझ और सिर पर लाद दिया और स्त्री भी मिली, तो पढ़ी-लिखी, शौकीन, जबान की तेज़, जिसे मोटा खाने और मोटा पहनने से मर जाना कबूल था। चन्द्रप्रकाश को ३०) की नौकरी करते शर्म तो आयी; लेकिन ठाकुर साहब ने रहने का स्थान देकर उसके आँसू पोंछ दिये। यह मकान ठाकुर साहब के मकान से बिलकुल मिला हुआ था—पक्का, हवादार, साफ-सुथरा और जरूरी सामान से लैस। ऐसा मकान २०) से कम पर न मिलता, काम केवल दो घण्टे का। लड़का था तो लगभग उन्हीं की उम्र का; पर बड़ा कुन्दजेहन, कामचोर। अभी नवें दरजे में पढ़ता था। सबसे बड़ी बात यह कि ठाकुर और ठकुराइन दोनों प्रकाश का बहुत आदर करते थे; बल्कि उसे लड़का ही समझते थे। वह नौकर नहीं, घर का आदमी था और घर के हर एक मामले में उसकी सलाह ली जाती थी। ठाकुर साहब अँगरेज़ी नहीं जानते थे। उनकी समझ में अँगरेजीदां लौंडा भी उनसे ज्यादा बुद्धिमान्, चतुर और तजरबेकार था।

२

सन्ध्या का समय था। प्रकाश ने अपने शिष्य वीरेन्द्र को पढ़ाकर छड़ी उठायी, तो ठकुराइन ने आकर कहा—अभी न जाओ बेटा, जरा मेरे साथ आओ, तुमसे कुछ सलाह करनी है।

प्रकाश ने मन में सोचा—आज कैसी सलाह है, वीरेन्द्र के सामने क्यों

नहीं कहा ? उसे भीतर ले जाकर रमा देवी ने कहा—तुम्हारी क्या सलाह है, बीरू का ब्याह दूँ ? एक बहुत अच्छे घर से सन्देसा आया है।

प्रकाश ने मुसकराकर कहा—यह तो बीरू बाबू ही से पूछिए।

'नहीं, मैं तुमसे पूछती हूँ।'

प्रकाश ने असमंजस में पड़कर कहा—मैं इस विषय में क्या सलाह दे सकता हूँ ? उनका बीसवाँ साल तो है; लेकिन यह समझ लीजिए कि पढ़ना हो चुका।

'तो अभी न करूँ, यही सलाह है ?'

'जैसा आप उचित समझें। मैंने तो दोनों बातें कह दीं।'

'तो कर डालूँ ? मुझे यही डर लगता है कि लड़का कहीं बहक न जाय।'

'मेरे रहते इसकी तो आप चिंता न करें। हाँ, इच्छा हो, तो कर डालिए। कोई हरज भी नहीं है।'

'सब तैयारियाँ तुम्हीं को करनी पड़ेंगी, यह समझ लो।'

'तो मैं इनकार कब करता हूँ।'

रोटी की खैर मनानेवाले शिक्षित युवकों में एक प्रकार की दुविधा होती है, जो उन्हें अप्रिय सत्य कहने से रोकती है। प्रकाश में भी यही कमजोरी थी।

बात पक्की हो गयी और विवाह का सामान होने लगा। ठाकुर साहब उन मनुष्यों में थे, जिन्हें अपने ऊपर विश्वास नहीं होता। उनकी निगाह में प्रकाश की डिग्री, उनके साठ साल के अनुभव से कहीं मूल्यवान् थी। विवाह का सारा आयोजन प्रकाश के हाथों में था। दस-बारह हजार रुपये खर्च करने का अधिकार कुछ कम गौरव की बात न थी। देखते-देखते एक फटेहाल युवक जिम्मेदार मैनेजर बन बैठा। कहीं कपड़ेवाला उसे सलाम करने आया है, कहीं मुहल्ले का बनिया घेरे हुए है, कहीं गैस और शामियानेवाला खुशामद कर रहा है। वह चाहता, तो दो-चार सौ रुपये बड़ी आसानी से बना लेता, लेकिन इतना नीच न था। फिर उसके साथ क्या दगा करता, जिसने सब कुछ उसी पर छोड़ दिया था ? पर जिस दिन उसने पाँच हजार के जेवर खरीदे, उस दिन उसका मन चंचल हो उठा।

घर आकर चम्पा से बोला—हम तो यहाँ रोटियों के मुहताज हैं और दुनिया में ऐसे आदमी पड़े हुए हैं, जो हजारों-लाखों रुपयों के जेवर बनवा डालते हैं। ठाकुर साहब ने आज बहू के चढ़ावे के लिए पाँच हजार के ज़ेवर खरीदे। ऐसी-ऐसी चीजें कि देखकर आँखें ठण्डी हो जायँ। सच कहता हूँ, बाज चीजों पर तो आँख नहीं ठहरती थी।

चम्पा ईर्ष्या-जनित विराग से बोली—उँह, हमें क्या करना है ? जिन्हें ईश्वर ने दिया है, वे पहनें। यहाँ तो रो-रोकर मरने ही के लिए पैदा हुए हैं।

चन्द्रप्रकाश—इन्हीं लोगों को मौज है। न कमाना, न धमाना। बाप-दादा छोड़ गये हैं, मजे से खाते और चैन करते हैं। इसीसे कहता हूँ, ईश्वर बड़ा अन्यायी है।

चम्पा—अपना-अपना पुरुषार्थ है, ईश्वर का क्या दोष ? तुम्हारे बाप-दादा छोड़ गये होते, तो तुम भी मौज करते। यहाँ तो रोटियाँ चलनी मुश्किल हैं, गहने-कपड़े को कौन रोये। और न इस जिन्दगी में कोई ऐसी आशा ही है। कोई गत की साड़ी भी नहीं रही कि किसी भले आदमी के घर जाऊँ, तो पहन लूँ। मैं तो इसी सोच में हूँ कि ठकुराइन के यहाँ ब्याह में कैसे जाऊँगी। सोचती हूँ, बीमार पड़ जाती तो जान बचती।

यह कहते-कहते उसकी आँखें भर आयीं।

प्रकाश ने तसल्ली दी—साड़ी तुम्हारे लिए लाऊँ ? अब क्या इतना भी न कर सकूँगा ? मुसीबत के ये दिन क्या सदा बने रहेंगे ? जिन्दा रहा, तो एक दिन तुम सिर से पाँव तक जेवरों से लदी रहोगी।

चम्पा मुसकराकर बोली—चलो, ऐसी मन की मिठाई मैं नहीं खाती। निबाह होता जाय, यही बहुत है। गहनों की साध नहीं है।

प्रकाश ने चम्पा की बातें सुनकर लज्जा और दुःख से सिर झुका लिया। चम्पा उसे इतना पुरुषार्थहीन समझती है !

(३)

रात को दोनों भोजन करके लेटे, तो प्रकाश ने फिर गहनों की बात छेड़ी। गहने उसकी आँखों में बसे हुए थे—इस शहर में ऐसे बढ़िया गहने बनते हैं, मुझे इसकी आशा न थी।

चम्पा ने कहा—कोई और बात करो। गहनों की बात सुनकर जी जलता है।

'वैसी चीजें तुम पहनो, तो रानी मालूम होने लगो।'

'गहनों से क्या सुन्दरता बढ़ जाती है? मैंने तो ऐसी बहुत-सी औरतें देखी हैं, जो गहने पहनकर भद्दी दीखने लगती हैं।'

'ठाकुर साहब भी मतलब के यार हैं। यह न हुआ कि कहते, इसमें से कोई चीज चम्पा के लिए भी लेते जाओ।'

'तुम भी कैसी बच्चों की-सी बातें करते हो?'

'इसमें बचपन की क्या बात है? कोई उदार आदमी कभी इतनी कृपणता न करता।'

'मैंने तो कोई ऐसा उदार आदमी नहीं देखा, जो अपनी बहू के गहने किसी गैर को दे दे।'

'मैं गैर नहीं हूँ। हम दोनों एक ही मकान में रहते हैं, मैं उनके लड़के को पढ़ाता हूँ और शादी का सारा इन्तजाम कर रहा हूँ। अगर सौ-दो-सौ की कोई चीज दे देते, तो वह निष्फल न जाती। मगर धनवानों का हृदय धन के भार से दबकर सिकुड़ जाता है। उनमें उदारता के लिए स्थान ही नहीं रहता।'

रात के बारह बज गये हैं, फिर भी प्रकाश को नींद नहीं आती। बार-बार वही चमकीले गहने आँखों के सामने आ जाते हैं। कुछ बादल हो आये हैं, और बार-बार बिजली चमक उठती है।

सहसा प्रकाश चारपाई से उठ खड़ा हुआ। उसे चम्पा का आभूषणहीन अंग देखकर दया आयी। यही तो खाने-पहनने की उम्र है और इसी उम्र में इस बेचारी को हर एक चीज के लिए तरसना पड़ रहा है। वह दबे-पाँव कमरे से बाहर निकलकर छत पर आया। ठाकुर साहब की छत इस छत से मिली हुई थी। बीच में एक पाँच फीट ऊँची दीवार थी। वह दीवार पर चढ़कर ठाकुर साहब की छत पर आहिस्ता से उतर गया। घर में बिलकुल सन्नाटा था।

उसने सोचा—पहले जीने से उतरकर ठाकुर साहब के कमरे में चलूँ। अगर वह जाग गये, तो जोर से हँसूँगा और कहूँगा—कैसा चरका दिया, या कह दूँगा, मेरे घर की छत से कोई आदमी इधर आता दिखायी दिया; इसलिए मैं भी उसके पीछे-पीछे आया कि देखूँ, यह क्या करता है। अगर संदूक की कुञ्जी मिल गयी तो फिर फतह है। किसी का मुझ पर सन्देह ही न होगा। सब लोग नौकरों पर सन्देह करेंगे। मैं भी कहूँगा—साहब नौकरों की हरकत है, इन्हें छोड़कर और कौन ले जा सकता है? मैं बेदाग बच जाऊँगा। शादी के बाद कोई दूसरा घर लूँगा। फिर धीरे-धीरे एक-एक चीज चम्पा को दूँगा, जिसमें उसे कोई सन्देह न हो।

फिर भी वह जीने से उतरने लगा तो उसकी छाती धड़क रही थी।

(४)

धूप निकल आयी थी। प्रकाश अभी सो रहा था कि चम्पा ने उसे जगाकर कहा—बड़ा गजब हो गया। रात को ठाकुर साहब के घर में चोरी हो गयी। चोर गहने की सन्दूकची उठा ले गया।

प्रकाश ने पड़े-पड़े पूछा—किसी ने पकड़ा नहीं चोर को?

'किसी को खबर भी हो! वह सन्दूकची ले गया, जिसमें ब्याह के गहने रखे थे। न-जाने कैसे कुञ्जी उड़ा ली और न-जाने कैसे उसे मालूम हुआ कि इस सन्दूक में सन्दूकची रखी है!'

'नौकरों की कार्रवाई होगी। बाहरी चोर का यह काम नहीं है।'

'नौकर तो उनके तीनों पुराने हैं।'

'नीयत बदलते क्या देर लगती है। आज मौका देखा, उड़ा ले गये!'

'तुम जाकर जरा उन लोगों को तसल्ली तो दो। ठकुराइन बेचारी रो रही थीं। तुम्हारा नाम ले-लेकर कहती थीं कि बेचारा महीनों इन गहनों के लिए दौड़ा, एक-एक चीज अपने सामने जँचवायी और चोर दाढ़ीजारों ने उसकी सारी मेहनत पर पानी फेर दिया।'

प्रकाश चटपट उठ बैठा और घबड़ाता हुआ-सा जाकर ठकुराइन से बोला—यह तो बड़ा अनर्थ हो गया माताजी, मुझ से तो अभी-अभी चम्पा ने कहा।

ठाकुर साहब सिर पर हाथ रखे बैठे हुए थे। बोले—कहीं सेंध नहीं, कोई ताला नहीं टूटा, किसी दरवाजे की चूल नहीं उतरी। समझ में नहीं आता, चोर आया किधर से!

ठकुराइन ने रोकर कहा—मैं तो लुट गयी भैया, ब्याह सिर पर खड़ा है, कैसे क्या होगा, भगवान्! तुमने दौड़-धूप की थी, तब कहीं जाके चीजें आयी थीं। न-जाने किस मनहूस सायत से लग्न आयी थी।

प्रकाश ने ठाकुर साहब के कान में कहा—मुझे तो किसी नौकर की शरारत मालूम होती है।

ठकुराइन ने विरोध किया—अरे नहीं भैया, नौकरों में ऐसा कोई नहीं। दस-दस हजार रुपये यों ही ऊपर रखे रहते थे, कभी एक पाई भी नहीं गयी।

ठाकुर साहब ने नाक सिकोड़कर कहा—तुम क्या जानो, आदमी का मन कितना जल्द बदल जाया करता है। जिसने अब तक चोरी नहीं की, वह कभी चोरी न करेगा, यह कोई नहीं कह सकता। मैं पुलिस में रिपोर्ट करूँगा और एक-एक नौकर की तलाशी कराऊँगा। कहीं माल उड़ा दिया होगा। जब पुलिस के जूते पड़ेंगे, तो आप ही कबूलेंगे।

प्रकाश ने पुलिस का घर में आना खतरनाक समझा। कहीं उन्हीं के घर में तलाशी ले, तो अनर्थ ही हो जाय। बोले—पुलिस में रिपोर्ट करना और तहकीकात कराना व्यर्थ है। पुलिस माल तो न बरामद कर सकेगी। हाँ, नौकरों को मार-पीट भले ही लेगी। कुछ नजर भी उसे चाहिए, नहीं तो कोई दूसरा ही स्वाँग खड़ा कर देगी। मेरी तो सलाह है कि एक-एक नौकर को एकान्त में बुलाकर पूछा जाय।

ठाकुर साहब ने मुँह बना कर कहा—तुम भी क्या बच्चों की सी बातें करते हो, प्रकाश बाबू! भला, चोरी करने वाला अपने आप कबूलेगा! तुम मार-पीट भी तो नहीं करते। हाँ पुलिस में रिपोर्ट करना मुझे भी फिजूल मालूम होता है। माल बरामद होने से रहा, उलटे महीनों की परेशानी हो जायगी।

प्रकाश—लेकिन कुछ न कुछ तो करना ही पड़ेगा।

ठाकुर—कोई लाभ नहीं। हाँ, अगर कोई खुफिया पुलिस हो, जो चुपके-चुपके पता लगावे, तो अलबत्ता माल निकल आये; लेकिन यहाँ ऐसी पुलिस कहाँ! तकदीर ठोंक कर बैठ रहो, और क्या।

प्रकाश—आप बैठ रहिए; लेकिन मैं यों बैठने वाला नहीं। मैं इन्हीं नौकरों के सामने चोर का नाम निकलवाऊँगा।

ठकुराइन—नौकरों पर मुझे पूरा विश्वास है। किसी का नाम निकल भी आवे, तो मुझे सन्देह ही रहेगा। किसी बाहर के आदमी का काम है। चाहे जिधर से आया हो; पर चोर आया बाहर से। तुम्हारे कोठे से भी तो आ सकता है।

ठाकुर—हाँ, जरा अपने कोठे पर तो देखो, शायद कुछ निशान मिले। कल दरवाजा तो खुला नहीं रह गया?

प्रकाश का दिल धड़कने लगा। बोला—मैं तो दस बजे द्वार बन्द कर लेता हूँ। हाँ, कोई पहले से ही मौका पाकर कोठे पर चला गया हो और वहाँ छिपा बैठा रहा हो, तो बात दूसरी है।

तीनों आदमी छत पर गये, तो बीच की मुँड़ेर पर किसी के पाँव की रगड़ के निशान दिखायी दिये। जहाँ प्रकाश का पाँव पड़ा था, वहाँ का चूना लग जाने के कारण छत पर पाँव का निशान पड़ गया था। प्रकाश की छत पर जाकर मुँड़ेर की दूसरी तरफ देखा, तो वैसे ही निशान वहाँ भी दिखाई दिये। ठाकुर साहब सिर झुकाये खड़े थे, संकोच के मारे कुछ कह न सकते थे। प्रकाश ने उनके मन की बात खोल दी—इससे तो स्पष्ट होता है कि चोर मेरे ही घर में से आया। अब तो कोई सन्देह ही नहीं रहा।

ठाकुर साहब ने कहा—हाँ, मैं भी यही समझता हूँ; लेकिन इतना पता लग जाने से ही क्या हुआ। माल तो जाना था, सो गया। अब चलो, आराम से बैठें। आज रुपये की कोई फिक्र करनी होगी।

प्रकाश—मैं आज ही यह घर छोड़ दूँगा।

ठाकुर—क्यों, इसमें तुम्हारा कोई दोष नहीं।

प्रकाश—आप कहें; लेकिन मैं समझता हूँ मेरे सिर बड़ा भारी अपराध लग गया। मेरा दरवाजा नौ-दस बजे तक खुला ही रहता है। चोर ने रास्ता देख लिया। संभव है, दो-चार दिन में फिर आ घुसे। घर में अकेली एक औरत सारे घर की निगरानी नहीं कर सकती। इधर वह तो रसोई में बैठी है, उधर कोई आदमी चुपके से ऊपर चढ़ जाय, तो जरा भी आहट नहीं मिल सकती। मैं घूम-घामकर कभी नौ बजे आया, कभी दस बजे। और शादी के दिनों में तो देर होती ही रहेगी। उधर का रास्ता बन्द हो जाना चाहिए। मैं तो समझता हूँ, इस चोरी की सारी जिम्मेदारी मेरे सिर है।

ठकुराइन डरीं—तुम चले जाओगे भैया, तब तो घर और फाड़ खायगा।

प्रकाश—कुछ भी हो माताजी, मुझे बहुत जल्द घर छोड़ना ही पड़ेगा। मेरी गफलत से चोरी हुई, उसका मुझे प्रायश्चित करना ही पड़ेगा।

प्रकाश चला गया, तो ठाकुर ने स्त्री से कहा—बड़ा लायक आदमी है।

ठकुराइन—क्या बात है। चोर उधर से आया, यही बात उसे लग गयी।

'कहीं यह चोर को पकड़ पावे, तो कच्चा खा जाय।'

'मार ही डाले!'

'देख लेना, कभी-न-कभी माल बरामद करेगा।'

'अब इस घर में कदापि न रहेगा, कितना ही समझाओ।'

'किराये के २०) और दे दूँगा।'

'हम किराया क्यों दें? वह आप ही घर छोड़ रहे हैं। हम तो कुछ कहते नहीं।'

'किराया तो देना ही पड़ेगा। ऐसे आदमी के साथ कुछ बल भी खाना पड़े, तो बुरा नहीं लगता।'

'मैं तो समझती हूँ, वह किराया लेंगे ही नहीं।'

'तीस रुपये में गुजर भी तो न होता होगा।'

(५)

प्रकाश ने उसी दिन वह घर छोड़ दिया। उस घर में रहने से जोखिम था। लेकिन जब तक शादी की धूमधाम रही, प्रायः सारे दिन यहीं रहते थे। चम्पा से कहा—एक सेठजी के यहाँ ५०) महीने का काम और मिल गया है; मगर वह रुपये मैं उन्हीं के पास जमा करता जाऊँगा। वह आमदनी केवल जेवरों में खर्च होगी। उसमें से एक पाई भी घर के खर्च में न आने दूँगा। चम्पा फड़क उठी। पति-प्रेम का यह परिचय पाकर उसने अपने भाग्य को सराहा, देवताओं में उसकी श्रद्धा और भी बढ़ गयी।

अब तक प्रकाश और चम्पा के बीच में कोई परदा न था। प्रकाश के पास जो कुछ था, वह चम्पा का था। चम्पा ही के पास उसके बक्स, संदूक आलमारी की कुञ्जियाँ रहती थीं; मगर अब प्रकाश का एक संदूक हमेशा बन्द रहता। उसकी कुञ्जी कहाँ है, इसका चम्पा को पता नहीं। वह पूछती है, इस सन्दूक में क्या है, तो वह कह देते हैं—कुछ नहीं, पुरानी किताबें मारी-मारी फिरती थीं, उठा के सन्दूक में बन्द कर दी हैं। चम्पा को सन्देह का कोई कारण न था।

एक दिन चम्पा पति को पान देने गयी तो देखा, वह उस सन्दूक को खोले हुए देख रहे हैं। उसे देखते ही उन्होंने सन्दूक जल्दी से बन्द कर दिया। उनका चेहरा जैसे फक हो गया। सन्देह का अंकुर जमा; मगर पानी न पाकर सूख गया। चम्पा किसी ऐसे कारण की कल्पना ही न कर सकी, जिससे सन्देह को आश्रय मिलता।

लेकिन पाँच हजार की सम्पत्ति को इस तरह छोड़ देना कि उसका ध्यान ही न आवे, प्रकाश के लिए असम्भव था। वह कहीं बाहर से आता तो एक बार सन्दूक अवश्य खोलता।

एक दिन पड़ोस में चोरी हो गयी। उस दिन से प्रकाश अपने कमरे ही में सोने लगा। असाढ़ के दिन थे। उमस के मारे दम घुटता था। ऊपर एक साफ-सुथरा बरामदा था, जो बरसात में सोने के लिए ही शायद बनाया गया था। चम्पा ने कई बार ऊपर सोने के लिए कहा, पर प्रकाश ने न माना। अकेला घर कैसे छोड़ दे?

चम्पा ने कहा—चोरी ऐसों के यहाँ नहीं होती। चोर घर में कुछ देख कर ही जान खतरे में डालता है। यहाँ क्या रखा है?

प्रकाश ने क्रुद्ध होकर कहा—कुछ नहीं है, बरतन-भाँड़े तो हैं ही। गरीब के लिए अपनी हाँड़ी ही बहुत है।

एक दिन चम्पा ने कमरे में झाड़ू लगायी, तो सन्दूक को खिसकाकर दूसरी तरफ रख दिया। प्रकाश ने सन्दूक का स्थान बदला हुआ पाया, तो सशंक होकर बोला—सन्दूक तुमने हटाया?

यह पूछने की कोई बात न थी। झाड़ू लगाते वक्त प्रायः चीजें इधर-उधर खिसक ही जाती हैं। बोली—मैं क्यों हटाने लगी?

'फिर किसने हटाया?'

'मैं नहीं जानती।'

'घर में तुम रहती हो, जानेगा कौन?'

'अच्छा, अगर मैंने ही हटा दिया, तो इसमें पूछने की क्या बात है?'

'कुछ नहीं, यों ही पूछता था।'

मगर जब तक सन्दूक खोलकर सब चीजें देख न ले, प्रकाश को चैन कहाँ? चम्पा ज्योंही भोजन पकाने लगी, उसने सन्दूक खोला और आभूषणों को देखने लगा। आज चम्पा ने पकौड़ियाँ बनायी थीं। पकौड़ियाँ गरम-गरम

ही मजा देती हैं। प्रकाश को पकौड़ियाँ पसन्द भी थीं। उसने थोड़ी-सी पकौड़ियाँ एक तश्तरी में रखीं और प्रकाश को देने गयी। प्रकाश ने उसके देखते ही सन्दूक धमाके से बन्द कर दिया और ताला लगाकर उसे बहलाने के इरादे से बोला—तश्तरी में क्या लायीं ? अच्छा, पकौड़ियाँ हैं ?

आज चम्पा को सन्देह हो गया। सन्दूक में क्या है, यह देखने की उत्सुकता हुई। प्रकाश उसकी कुञ्जी कहीं छिपाकर रखता था। चम्पा किसी तरह वह कुञ्जी उड़ा लेने की चाल सोचने लगी। एक दिन एक बिसाती कुञ्जियों का गुच्छा बेचने आ निकला। चम्पा ने उस ताले की कुञ्जी ले ली और सन्दूक खोल डाली। अरे ! ये तो आभूषण हैं। उसके एक-एक आभूषण को निकाल कर देखा। ये गहने कहाँ से आये ! मुझसे कभी इनकी चर्चा नहीं की। सहसा उसके मन में भाव उठा—कहीं ये ठाकुर साहब के गहने तो नहीं हैं। चीजें वही थीं, जिनका वह बखान करते रहते थे। उसे अब कोई सन्देह न रहा; लेकिन इतना घोर पतन ! लज्जा और खेद से उसका सिर झुक गया।

उसने तुरन्त सन्दूक बन्द कर दिया और चारपाई पर लेटकर सोचने लगी। इनकी इतनी हिम्मत पड़ी कैसे ? यह दुर्भावना इनके मन में आयी ही क्यों ? मैंने तो कभी आभूषणों के लिये आग्रह नहीं किया। अगर आग्रह भी करती, तो क्या उसका आशय यह होता कि वह चोरी करके लावें ? चोरी—आभूषणों के लिए ! इनका मन क्यों इतना दुर्बल हो गया ?

उसके जी में आया, इन गहनों को उठा ले और ठकुराइन के चरणों पर डाल दे। उनसे कहे—यह मत पूछिए, ये गहने मेरे पास कैसे आये। आपकी चीज आपके पास आ गयी, इसी से सन्तोष कर लीजिए।

लेकिन परिणाम कितना भयंकर होगा !

(६)

उस दिन से चम्पा कुछ उदास रहने लगी। प्रकाश से उसे वह प्रेम न रहा, न वह सम्मान-भाव। बात-बात पर तकरार होती। अभाव में जो परस्पर सद्भाव था, वह गायब हो गया। तब एक दूसरे से दिल की बात कहता था, भविष्य के मनसूबे बाँधे जाते थे, आपस में सहानुभूति थी। अब दोनों ही दिलगीर रहते। कई-कई दिनों तक आपस में एक बात भी न होती।

कई महीने गुजर गये। शहर के एक बैंक में असिस्टेण्ट मैनेजर की जगह खाली हुई। प्रकाश ने अर्थशास्त्र पढ़ा था; लेकिन शर्त यह थी कि नकद दस हजार की जमानत दाखिल की जाय। इतनी बड़ी रकम कहाँ से आवे। प्रकाश तड़प-तड़पकर रह जाता था।

एक दिन ठाकुर साहब से इस विषय में बात चल पड़ी।

ठाकुर साहब ने कहा—तुम क्यों नहीं दरख्वास्त भेजते ?

प्रकाश ने सिर झुकाकर कहा—दस हजार की नकद जमानत माँगते हैं। मेरे पास रुपये कहाँ रखे हैं ?

'अजी, तुस दरख्वास्त तो दो। अगर सारी बातें तय हो जायँ, तो जमानत भी दे दी जायगी। इसकी चिन्ता न करो।'

प्रकाश ने स्तम्भित होकर कहा—आप जमानत दे देंगे ?

'हाँ हाँ, यह कौन-सी बड़ी बात है।'

प्रकाश घर चला तो बहुत रंजीदा था। उसको यह जगह अब अवश्य मिलेगी; लेकिन फिर भी वह प्रसन्न नहीं है। ठाकुर साहब की सरलता, उनका उस पर इतना अटल विश्वास उसे आहत कर रहा है। उनकी शराफत उसके कमीनेपन को कुचले डालती है।

उसने घर आकर चम्पा को यह खुशखबरी सुनायी। चम्पा ने सुनकर मुँह फेर लिया। एक क्षण के बाद बोली—ठाकुर साहब से तुमने क्यों जमानत दिलवायी ? प्रकाश ने चिढ़कर कहा—फिर और किससे दिलवाता ?

'यही न होता कि जगह न मिलती। रोटियाँ तो मिल ही जातीं। रुपये-पैसे की बात है। कहीं भूल-चूक हो जाय, तो तुम्हारे साथ उनके रुपये भी जायँ।'

'यह तुम कैसे समझती हो कि भूल-चूक होगी ? क्या मैं ऐसा अनाड़ी हूँ ?'

चम्पा ने विरक्त मन से कहा—आदमी की नीयत भी तो हमेशा एक-सी नहीं रहती !

प्रकाश ठक-से रह गया। उसने चम्पा को चुभती हुई आँखों से देखा; पर चम्पा ने मुँह फेर लिया था। वह उसके भावों के विषय में कुछ निश्चय न कर सका; लेकिन ऐसी खुशखबरी सुन कर भी चम्पा का उदासीन रहना उसे विकल करने लगा। उसके मन में प्रश्न उठा—इस वाक्य में कहीं आक्षेप तो

नहीं छिपा हुआ है। चम्पा ने सन्दूक खोलकर देख तो नहीं लिया ? इस प्रश्न का उत्तर पाने के लिए इस समय वह अपनी एक आँख भी भेंट कर सकता था।

भोजन करते समय प्रकाश ने चम्पा से पूछा—तुमने क्या सोचकर कहा था कि आदमी की नीयत तो हमेशा एक-सी नहीं रहती ? जैसे यह उसके जीवन या मृत्यु का प्रश्न हो।

चम्पा ने संकट में पड़कर कहा—कुछ नहीं, मैंने दुनिया की बात कही थी। प्रकाश को संतोष न हुआ।

'क्या जितने आदमी बैंकों में नौकर हैं, उनकी नीयत बदलती रहती है ?' वह बोला।

चम्पा ने गला छुड़ाना चाहा—तुम जबान पकड़ते हो। ठाकुर साहब के यहाँ इस शादी ही में तुम अपनी नीयत ठीक नहीं रख सके। सौ-दो-सौ रुपये की चीजें घर में रख ही लीं।

प्रकाश के दिल से बोझ उतर गया। मुसकराकर बोला—अच्छा, तुम्हारा संकेत उस तरफ था; लेकिन मैंने कमीशन के सिवा उनकी एक पाई भी नहीं छुई। और कमीशन लेना तो कोई पाप नहीं ! बड़े-बड़े हुक्काम खुले-खजाने कमीशन लिया करते हैं।

चम्पा ने तिरस्कार के भाव से कहा—जो आदमी अपने ऊपर इतना विश्वास रखे, उसकी आँख बचाकर एक पाई भी लेना मैं पाप समझती हूँ। तुम्हारी सज्जनता तो मैं जब जानती कि तुम कमीशन के रुपये ले जाकर उनके हवाले कर देते। इन छः महीनों में उन्होंने तुम्हारे साथ क्या-क्या सलूक किये, कुछ याद है ? मकान तुमने खुद छोड़ा; लेकिन वह २०) महीने देते जाते हैं। इलाके से कोई सौगात आती है, तो तुम्हारे यहाँ जरूर भेजते हैं। तुम्हारे पास घड़ी न थी, अपनी घड़ी तुम्हें दे दी। तुम्हारी महरी जब नागा करती है, खबर पाते ही अपना नौकर भेज देते हैं। मेरी बीमारी ही में डाक्टर साहब की फीस उन्होंने दी, और दिन में दो बार हाल-चाल भी पूछने आया करते थे। यह जमानत ही क्या छोटी बात है ? अपने सम्बन्धियों तक की जमानत तो जल्दी कोई करता ही नहीं, तुम्हारी जमानत के लिए दस हजार रुपये नकद निकाल

कर दे दिये। इसे तुम छोटी बात समझते हो ? आज तुमसे कोई भूल-चूक हो जाय, तो उनके रुपये तो जब्त हो ही जायँगे। जो आदमी अपने ऊपर इतनी दया रखे, उसके लिए हमें भी प्राण देने को तैयार रहना चाहिए।

प्रकाश भोजन करके लेटा, तो उसकी आत्मा उसे धिक्कार रही थी। दुखते हुए फोड़े में कितना मवाद भरा हुआ है, यह उस वक्त मालूम होता है, जब नश्तर लगाया जाता है। मन का विकार उस वक्त मालूम होता है, जब कोई उसे हमारे सामने खोलकर रख देता है। किसी सामाजिक या राजनीतिक अन्याय का व्यंग्य-चित्र देखकर क्यों हमारे मन को चोट लगती है ? इसीलिए कि वह चित्र हमारी पशुता को खोलकर हमारे सामने रख देता है। वह, जो मनो-सागर में बिखरा हुआ पड़ा था, जैसे केंद्रीभूत होकर वृहदाकार हो जाता है। तब हमारे मुँह से निकल पड़ता है—उफ्फोह ! चम्पा के इन तिरस्कार-भरे शब्दों ने प्रकाश के मन में ग्लानि उत्पन्न कर दी। वह सन्दूक कई गुना भारी होकर शिला की भाँति उसे दबाने लगा। मन में फैला हुआ विकार एक बिंदु पर एकत्र होकर टीसने लगा।

(७)

कई दिन बीत गये। प्रकाश को बैंक में जगह मिल गयी। इसी उत्सव में उसके यहाँ मेहमानों की दावत है। ठाकुर साहब, उनकी स्त्री, वीरू और उसकी नवेली बहू—सभी आये हुए हैं। चम्पा सेवा-सत्कार में लगी हुई है। बाहर दो-चार मित्र गा-बजा रहे हैं। भोजन करने के बाद ठाकुरसाहब चलने को तैयार हुए।

प्रकाश ने कहा—आज आपको यहीं रहना होगा, दादा ! मैं इस वक्त न जाने दूँगा।

चम्पा को उसका यह आग्रह बुरा लगा। चारपाइयाँ नहीं हैं, बिछावन नहीं है और न काफी जगह ही है। रात-भर उन्हें तकलीफ देने और आप तकलीफ उठाने की कोई जरूरत उसकी समझ में न आयी; लेकिन प्रकाश आग्रह करता ही रहा, यहाँ तक कि ठाकुर साहब राजी हो गये।

बारह बज गये थे। ठाकुर साहब ऊपर सो रहे थे। बीरू और प्रकाश बाहर बरामदे में थे। तीनों स्त्रियाँ अन्दर कमरे में थीं। प्रकाश जाग रहा था।

बीरू के सिरहाने उसकी कुञ्जियों का गुच्छा पड़ा हुआ था। प्रकाश ने गुच्छा उठा लिया। फिर कमरा खोलकर उसमें से गहनों का संदूकचा निकाला और ठाकुर साहब के घर की तरफ चला। कई महीने पहले वह इसी भाँति कंपित हृदय के साथ ठाकुर साहब के घर में घुसा था। उसके पाँव तब भी इसी तरह थरथरा रहे थे; लेकिन तब काँटा चुभने की वेदना थी, आज काँटा निकलने की। तब ज्वर का चढ़ाव था—उन्माद, ताप और विकलता से भरा हुआ; अब ज्वर का उतार था—शान्त और शीतल। तब कदम पीछे हटता था, आज आगे बढ़ रहा था।

ठाकुर साहब के घर पहुँचकर उसने धीरे से बीरू का कमरा खोला और अन्दर जाकर ठाकुर साहब की खाट के नीचे संदूकचा रख दिया फिर तुरन्त बाहर आकर धीरे से द्वार बन्द किया और घर को लौट पड़ा। हनुमान संजीवनी बूटीवाला धवलागिर उठाये जिस गर्वीले आनन्द का अनुभव कर रहे थे, कुछ वैसा ही आनन्द प्रकाश को भी हो रहा था। गहनों को अपने घर ले जाते समय उनके प्राण सूखे हुए थे, मानो किसी गहरी अथाह खाई में गिरा जा रहा हो। आज सन्दूकचे को लौटाकर उसे मालूम हो रहा था, जैसे वह किसी विमान पर बैठा हुआ आकाश की ओर उड़ा जा रहा है—ऊपर, ऊपर और ऊपर!

वह घर पहुँचा, तो बीरू सोया हुआ था। कुञ्जी उसने सिरहाने रख दी।

(८)

ठाकुर साहब प्रातःकाल चले गये।

प्रकाश सन्ध्या-समय पढ़ाने जाया करता था। आज वह अधीर होकर तीसरे ही पहर जा पहुँचा। देखना चाहता था, वहाँ आज क्या गुल खिल रहे हैं।

वीरेन्द्र ने उसे देखते ही खुश होकर कहा—बाबूजी, कल आपके यहाँ की दावत बड़ी मुबारक थी। जो गहने चोरी गये थे, सब मिल गये।

ठाकुर साहब भी आ गये और बोले—बड़ी मुबारक दावत थी तुम्हारी! पूरा सन्दूक-का-सन्दूक मिल गया। एक चीज भी नहीं छुई। जैसे केवल रखने ही के लिए ले गया हो।

प्रकाश को इन बातों पर कैसे विश्वास आये, जब तक वह अपनी आँखों से सन्दूक देख न ले। कहीं ऐसा भी हो सकता है कि चोरी गया हुआ माल छः महीने बाद मिल जाय, और ज्यों-का-त्यों!

सन्दूक को देखकर उसने गम्भीर भाव से कहा—बड़े आश्चर्य की बात है। मेरी बुद्धि तो कुछ काम नहीं करती।

ठाकुर—किसी की बुद्धि कुछ काम नहीं करती भई, तुम्हारी ही क्यों। बीरू की माँ कहती है, कोई दैवी घटना है। आज मुझे भी देवताओं में श्रद्धा हो गयी।

प्रकाश—अगर आँखों-देखी बात न होती, तो मुझे तो कभी विश्वास ही न आता।

ठाकुर—आज इस खुशी में हमारे यहाँ दावत होगी।

प्रकाश—आपने कोई अनुष्ठान तो नहीं कराया था?

ठाकुर—अनुष्ठान तो बीसों ही कराये।

प्रकाश—बस, तो यह अनुष्ठान ही की करामात है।

घर लौट कर प्रकाश ने चम्पा को यह खबर सुनायी, तो वह दौड़कर उनके गले से चिपट गई और न-जाने क्यों रोने लगी, जैसे उसका बिछुड़ा हुआ पति बहुत दिनों के बाद घर आ गया हो।

प्रकाश ने कहा—आज उनके यहाँ हमारी दावत है।

'मैं कल एक हजार कँगलों को भोजन कराऊँगी।'

'तुम तो सैकड़ों का खर्च बतला रही हो।'

'मुझे इतना आनन्द हो रहा है कि लाखों खर्च करने पर भी अरमान पूरा न होगा।'

प्रकाश की आँखों से भी आँसू निकल आये।

मोटर के छींटे

क्या नाम कि प्रातःकाल स्नान-पूजा से निपट, तिलक लगा, पीताम्बर पहन, खड़ाऊँ पाँव में डाल, बगल में पत्रा दबा, हाथ में मोटा-सा शत्रु-मस्तक-भंजन ले एक जजमान के घर चला। विवाह की साइत विचारनी थी। कम-से-कम एक कलदार का डौल था। जलपान ऊपर से। और मेरा जलपान मामूली जलपान नहीं है। बाबुओं को तो मुझे निमन्त्रित करने की हिम्मत ही नहीं पड़ती। उनका महीने-भर का नाश्ता मेरा एक दिन का जलपान है। इस विषय में तो हम अपने सेठों-साहूकारों के कायल हैं। ऐसा खिलाते हैं, ऐसा खिलाते हैं, और इतने खुले मन से कि चोला आनन्दित हो उठता है। जजमान का दिल देखकर ही मैं उनका निमन्त्रण स्वीकार करता हूँ। खिलाते समय किसी ने रोनी सूरत बनायी और मेरी क्षुधा गायब हुई। रोकर किसी ने खिलाया तो क्या? ऐसा भोजन कम-से-कम मुझे नहीं पचता। जजमान ऐसा चाहिए कि ललकारता जाय—लो शास्त्रीजी, एक बालूशाही और मैं कहता जाऊँ—नहीं जजमान अब नहीं।

रात खूब वर्षा हुई थी, सड़क पर जगह-जगह पानी जमा था। मैं अपने विचारों में मगन चला जाता था कि एक मोटर छप-छप करती हुई निकल गयी। मुँह पर छींटे पड़े। जो देखता हूँ, तो धोती पर मानो किसी ने कीचड़ घोलकर डाल दिया हो। कपड़े भ्रष्ट हुए वह अलग, देह भ्रष्ट हुई वह अलग, आर्थिक क्षति जो हुई, वह अलग। अगर मोटर वालों को पकड़ पाता, तो ऐसी मरम्मत करता कि वे भी याद करते। मन मसोसकर रह गया। इस वेश में जजमान के घर तो जा नहीं सकता था, अपना घर भी मील-भर से कम न था। फिर आने-जाने वाले सब मेरी ओर देख-देख कर तालियाँ बजा रहे थे। ऐसी दुर्गति मेरी कभी नहीं हुई थी। अब क्या करोगे मन? घर जाओगे, तो पण्डिताइन क्या कहेंगी?

मैंने चटपट अपने कर्तव्य का निश्चय कर लिया। इधर-उधर से दस-बारह

बारह पत्थर के टुकड़े बटोर लिये और दूसरी मोटर की राह देखने लगा। ब्रह्मतेज सिर पर चढ़ बैठा। अभी दस मिनट भी न गुजरे होंगे कि एक मोटर आती हुई दिखायी दी। ओहो! वही मोटर थी। शायद स्वामी को स्टेशन से लेकर लौट रही थी। ज्योंही समीप आयी, मैंने एक पत्थर चलाया, भरपूर जोर लगाकर चलाया। साहब की टोपी उड़कर सड़क के उस बाजू पर गिरी। मोटर की चाल धीमी हुई। मैंने दूसरा फैर किया। खिड़की के शीशे चूर-चूर हो गये और एक टुकड़ा साहब बहादुर के गाल में भी लगा। खून बहने लगा। मोटर रुकी और साहब उतरकर मेरी तरफ आये और घूँसा तानकर बोले—सूअर, हम तुमको पुलिस में देगा। इतना सुनना था कि मैंने पोथी-पत्रा जमीन पर फेंका और साहब की कमर पकड़कर अड़ंगी लगायी, तो कीचड़ में भद-से गिरे। मैंने चट सवारी गाँठी और गरदन पर एक पचीस रद्दे ताबड़तोड़ जमाये कि साहब चौंधिया गये। इतने में उनकी पत्नीजी उतर आयीं। ऊँची एड़ी का जूता, रेशमी साड़ी, गालों पर पाउडर, ओठों पर रंग, भौंवों पर स्याही, मुझे छाते से गोदने लगीं। मैंने साहब को छोड़ दिया और डण्डा सम्भालता हुआ बोला—देवीजी, आप मरदों के बीच में न पड़ें, कहीं चोट-चपेट आ जाय, तो मुझे दुःख होगा।

साहब ने अवसर पाया, तो सम्भलकर उठे और अपने बूटदार पैरों से मुझे एक ठोकर जमायी। मेरे घुटने में बड़ी चोट लगी। मैंने बौखलाकर डण्डा उठा लिया और साहब के पाँव में जमा दिया। वह कटे पेड़ की तरह गिरे। मेम साहब छतरी तानकर दौड़ीं। मैंने धीरे से उनकी छतरी छीनकर फेंक दी। ड्राइवर अभी तक बैठा था। अब वह भी उतरा और छड़ी लेकर मुझपर पिल पड़ा। मैंने एक डण्डा उसके भी जमाया, लोट गया। पचासों आदमी तमाशा देखने जमा हो गये। साहब भूमि पर पड़े-पड़े बोले—रैस्केल, हम तुमको पुलिस में देगा।

मैंने फिर डण्डा सँभाला और चाहता था कि खोपड़ी पर जमाऊँ कि साहब ने हाथ जोड़कर कहा—नहीं-नहीं, बाबा, हम पुलिस में नहीं जायगा। माफी दो।

मैंने कहा—हाँ, पुलिस का नाम न लेना, नहीं तो यहीं खोपड़ी रंग दूँगा। बहुत होगा छः महीने की सजा हो जायगी, मगर तुम्हारी आदत छुड़ा दूँगा। मोटर चलाते हो, तो छींटे उड़ाते चलते हो, मारे घमण्ड के अन्धे हो जाते हो। सामने या बगल में कौन जा रहा है, इसका कुछ ध्यान ही नहीं रखते।

एक दर्शक ने आलोचना की—अरे महाराज, मोटरवाले जान बूझकर छींटे उड़ाते हैं और जब आदमी लथपथ हो जाता है, तो सब उसका तमाशा देखते हैं और खूब हँसते हैं। आपने बड़ा अच्छा किया, कि एक को ठीक कर दिया।

मैंने साहब को ललकार कर कहा—सुनता है कुछ, जनता क्या कहती है? साहब ने उस आदमी की ओर लाल-लाल आँखों से देखकर कहा—तुम झूठ बोलता है, बिलकुल झूठ बोलता है।

मैंने डाँटा—अभी तुम्हारी हेकड़ी कम नहीं हुई, आऊँ फिर, और दूँ एक सोंटा कसके?

साहब ने घिघियाकर कहा—अरे नहीं बाबा, सच बोलता है, सच बोलता है। अब तो खुश हुआ।

दूसरा दर्शक बोला—अभी जो चाहें कह दें; लेकिन ज्योंही गाड़ी पर बैठे, फिर वही हरकत शुरू कर देंगे। गाड़ी पर बैठते ही सब अपने को नवाब का नाती समझने लगते हैं।

दूसरे महाशय बोले—इससे कहिए थूककर चाटे।

तीसरे सज्जन ने कहा—नहीं, कान पकड़ कर उठाइए-बैठाइए।

चौथा बोला—अरे ड्राइवर को भी। ये सब और बदमाश होते हैं। मालदार आदमी घमण्ड करे, तो एक बात है, तुम किस बात पर अकड़ते हो? चक्कर हाथ में लिया और आँखों पर परदा पड़ा।

मैंने यह प्रस्ताव स्वीकार किया। ड्राइवर और मालिक दोनों ही को कान पकड़कर उठाना-बैठाना चाहिए और मेम साहब गिनें। सुनो मेम साहब, तुमको गिनना होगा। पूरी सौ बैठकें। एक भी कम नहीं, ज्यादा जितनी चाहें, हो जायँ।

दो आदमियों ने साहब का हाथ पकड़कर उठाया, दो ने ड्राइवर-महोदय का। ड्राइवर बेचारे की टाँग में चोट थी, फिर भी वह बैठकें लगाने लगा। साहब की अकड़ अभी काफी थी। आप लेट गये और ऊल-जलूल बकने लगे। मैं उस समय रुद्र बना हुआ था। दिल में ठान लिया था कि इससे बिना सौ बैठकें लगवाये न छोड़ूँगा। चार आदमियों को हुक्म दिया कि गाड़ी को ढकेलकर सड़क के नीचे गिरा दो।

हुक्म की देर थी। चार की जगह पचास आदमी लिपट गये और गाड़ी को ढकेलने लगे। वह सड़क बहुत ऊँची थी। दोनों तरफ की जमीन नीची। गाड़ी नीचे गिरती और टूट-टाटकर ढेर हो जाती। गाड़ी सड़क के किनारे तक पहुँच चुकी थी, कि साहब काँखकर उठ खड़े हुए और बोले—बाबा, गाड़ी को मत तोड़ो, हम उठे-बैठेगा।

मैंने आदमियों को अलग हट जाने का हुक्म दिया; मगर सबों को एक दिल्लगी मिल गयी थी। किसी ने मेरी ओर ध्यान न दिया। लेकिन जब मैं डण्डा लेकर उनकी ओर दौड़ा तब सब गाड़ी छोड़कर भागे और साहब ने आँखें बन्द करके बैठकें लगानी शुरू कीं।

मैंने दस बैठकों के बाद मेम साहब से पूछा—कितनी बैठकें हुईं?

मेम साहब ने रोष से जवाब दिया—हम नहीं गिनता।

'तो इस तरह साहब दिन-भर काँखते रहेंगे और मैं न छोड़ूँगा। अगर उनको कुशल से घर ले जाना चाहती हो, तो बैठकें गिन दो। मैं उनको रिहा कर दूँगा।'

साहब ने देखा कि बिना दण्ड भोगे जान न बचेगी, तो बैठकें लगाने लगे। एक, दो, तीन, चार, पाँच........।

सहसा एक दूसरी मोटर आती दिखायी दी। साहब ने देखा और नाक रगड़कर बोले—पंडितजी, आप मेरा बाप है। मुझ पर दया करो, अब हम कभी मोटर पर न बैठेंगे। मुझे भी दया आ गयी। बोला—नहीं, मोटर पर बैठने से मैं नहीं रोकता, इतना ही कहता हूँ कि मोटर पर बैठकर भी आदमियों को आदमी समझो।

दूसरी गाड़ी तेज चली आती थी। मैंने इशारा किया। सब आदमियों ने दो-दो पत्थर उठा लिये। उस गाड़ी का मालिक स्वयं ड्राइव कर रहा था। गाड़ी धीमी करके धीरे से सरक जाना चाहता था कि मैंने बढ़कर उसके दोनों कान पकड़े और खूब जोर से हिलाकर और दोनों गालों पर एक-एक पड़ाका देकर बोला—गाड़ी से छींटा न उड़ाया करो, समझे। चुपके-से चले जाओ।

यह महोदय बक-झक तो करते रहे; मगर एक सौ आदमियों को पत्थर लिये खड़ा देखा, तो बिना कान-पूँछ डुलाये चलते हुए।

उनके जाने के एक ही मिनट बाद दूसरी गाड़ी आयी। मैंने ५० आदमियों को राह रोक लेने का हुक्म दिया। गाड़ी रुक गयी। मैंने उन्हें भी चार पड़ाके देकर विदा किया; मगर यह बेचारे भले आदमी थे। मजे से चाटें खाकर चलते हुए।

सहसा एक आदमी ने कहा—पुलिस आ रही है।

और सब-के-सब हुर हो गये। मैं भी सड़क के नीचे उतर गया और एक गली में घुसकर गायब हो गया।

कैदी

चौदह साल तक निरन्तर मानसिक वेदना और शारीरिक यातना भोगने के बाद आइवन ओखोटस्क जेल से निकला; पर उस पक्षी की भाँति नहीं, जो शिकारी के पिंजरे से पंखहीन होकर निकला हो बल्कि उस सिंह की भाँति, जिसे कटघरे की दीवारों ने और भी भयंकर तथा और भी रक्त-लोलुप बना दिया हो। उसके अन्तस्तल में एक द्रव ज्वाला उमड़ रही थी, जिसने अपने ताप से उसके बलिष्ठ शरीर, सुडौल अंग-प्रत्यंग और लहराती हुई अभिलाषाओं को झुलस डाला था और आज उसके अस्तित्व का एक-एक अणु एक-एक चिनगारी बना हुआ था—क्षुधित, चंचल और विद्रोहमय।

जेलर ने उसे तौला। प्रवेश के समय दो मन तीस सेर था, आज केवल एक मन पाँच सेर।

जेलर ने सहानुभूति दिखाकर कहा—तुम बहुत दुर्बल हो गये हो, आइवन! अगर जरा भी कुपथ्य हुआ, तो बुरा होगा।

आइवन ने अपने हड्डियों के ढाँचे को विजय-भाव से देखा और अपने अन्दर एक अग्निमय प्रवाह का अनुभव करता हुआ बोला—कौन कहता है कि मैं दुर्बल हो गया हूँ?

'तुम खुद देख रहे होगे।'

'दिल की आग जब तक नहीं बुझेगी, आइवन नहीं मरेगा मि० जेलर, सौ वर्ष तक नहीं, विश्वास रखिए।'

आइवन इसी प्रकार बहकी-बहकी बातें किया करता था; इसलिए जेलर ने ज्यादा परवाह न की। सब उसे अर्द्ध-विक्षिप्त समझते थे। कुछ लिखा-पढ़ी हो जाने के बाद उसके कपड़े और पुस्तकें मँगवायी गयीं; पर वे सारे सूट अब उसे उतारे हुए-से लगते थे। कोटों की जेबों में कई नोट निकले, कई नगद रुबेल। उसने सब कुछ वहीं जेल के वार्डरों और निम्न कर्मचारियों को दे दिया मानो उसे कोई राज्य मिल गया है।

जेलर ने कहा—यह नहीं हो सकता, आइवन! तुम सरकारी आदमियों को रिश्वत नहीं दे सकते।

आइवन साधु-भाव से हँसा—यह रिश्वत नहीं है, मि० जेलर ! इन्हें रिश्वत देकर अब मुझे इनसे क्या लेना-देना है ? अब ये अप्रसन्न होकर मेरा क्या बिगाड़ लेंगे और प्रसन्न होकर मुझे क्या देंगे ? यह उन कृपाओं का धन्यवाद है जिनके बिना चौदह साल तो क्या, मेरा यहाँ चौदह घंटे रहना असह्य हो जाता।

जब वह जेल के फाटक से निकला, तो जेलर और सारे अन्य कर्मचारी उसके पीछे उसे मोटर तक पहुँचाने चले।

(२)

पन्द्रह साल पहले आइवन मास्को के सम्पन्न और सम्भ्रान्त कुल का दीपक था।

उसने विद्यालय में ऊँची शिक्षा पायी थी, खेल में अभ्यस्त था, निर्भीक था, उदार और सहृदय था। दिल आईने की भाँति निर्मल, शील का पुतला, दुर्बलों की रक्षा के लिए जान पर खेलनेवाला, जिसकी हिम्मत संकट के सामने नंगी तलवार हो जाती थी। उसके साथ हेलेन नाम की एक युवती पढ़ती थी, जिस पर विद्यालय के सारे युवक प्राण देते थे। वह जितनी ही रूपवती थी, उतनी ही तेज थी, बड़ी कल्पनाशील; पर अपने मनोभावों को ताले में बन्द रखनेवाली। आइवन में क्या देखकर वह उसकी ओर आकर्षित हो गयी, वह कहना कठिन है। दोनों में लेश-मात्र भी सामंजस्य न था। आइवन सैर और शराब का प्रेमी था, हेलेन कविता एवं संगीत और नृत्य पर जान देती थी। आइवन की निगाह में रुपये केवल इसलिए थे कि दोनों हाथों से उड़ाये जायँ, हेलेन अत्यन्त कृपण। आइवन को लेक्चर-हाल कारागार-सा लगता था; हेलेन इस सागर की मछली थी। पर कदाचित् यह विभिन्नता ही उनमें स्वाभाविक आकर्षण बन गयी, जिसने अन्त में विकल प्रेम का रूप लिया। आइवन ने उससे विवाह का प्रस्ताव किया और उसने स्वीकार कर लिया। और दोनों किसी शुभ-मुहूर्त में पाणिग्रहण करके सोहागरात बिताने के लिए किसी पहाड़ी जगह में जाने के मनसूबे बाँध रहे थे कि सहसा राजनैतिक संग्राम ने उन्हें अपनी ओर खींच लिया। हेलेन पहले से ही राष्ट्रवादियों की ओर झुकी हुई थी। आइवन भी उसी

रङ्ग में रँग उठा। खानदान का रईस था, उसके लिए प्रजा-पक्ष लेना एक महान तपस्या थी; इसलिए जब कभी वह इस संग्राम में हताश हो जाता, तो हेलेन उसकी हिम्मत बँधाती और आइवन उसके साहस और अनुराग से प्रभावित होकर अपनी दुर्बलता पर लज्जित हो जाता।

इन्हीं दिनों उक्रायेन प्रान्त की सूबेदारी पर रोमनाफ नाम का एक गवर्नर नियुक्त होकर आया—बड़ा ही कट्टर, राष्ट्रवादियों का जानी दुश्मन, दिन में दो चार विद्रोहियों को जब तक जेल न भेज लेता, उसे चैन न आता। आते-ही-आते उसने कई सम्पादकों पर राजद्रोह का अभियोग चलाकर उन्हें साइबेरिया भेजवा दिया, कृषकों की सभाएँ तोड़ दीं, नगर की म्युनिसिपैलिटी तोड़ दी, और जब जनता ने अपना रोष प्रगट करने के लिए जलसे किये, तो पुलिस से भीड़ पर गोलियाँ चलवायीं, जिससे कई बेगुनाहों की जानें गयीं। मार्शल-लॉ जारी कर दिया। सारे नगर में हाहाकार मच गया। लोग मारे डर के घरों से न निकलते थे; क्योंकि पुलिस हर एक की तलाशी लेती थी और उसे पीटती थी।

हेलेन ने कठोर मुद्रा से कहा—यह अन्धेर तो अब नहीं देखा जाता, आइवन। इसका कुछ उपाय होना चाहिए।

आइवन ने प्रश्न की आँखों से देखा—उपाय ! हम क्या कर सकते हैं ?

हेलेन ने उसकी जड़ता पर खिन्न होकर कहा—तुम कहते हो, हम क्या कर सकते हैं ? मैं कहती हूँ, हम सब कुछ कर सकते हैं। मैं इन्हीं हाथों से उसका अन्त कर दूँगी।

आइवन ने विस्मय से उसकी ओर देखा—तुम समझती हो, उसे कत्ल करना आसान है ? वह कभी खुली गाड़ी में नहीं निकलता। उसके आगे-पीछे सशस्त्र सवारों का एक दल हमेशा रहता है। रेलगाड़ी में भी वह रिजर्व डब्बों में ही सफर करता है। मुझे तो असम्भव-सा लगता है, हेलेन—बिलकुल असंभव।

हेलेन कई मिनट तक चाय बनाती रही। फिर दो प्याले मेज पर रखकर उसने प्याला मुँह से लगाया और धीरे-धीरे पीने लगी। किसी विचार में तन्मय हो रही थी। सहसा उसने प्याला मेज पर रख दिया और बड़ी-बड़ी आँखों में तेज भरकर बोली—यह सब कुछ होते हुए भी मैं उसे कत्ल कर सकती हूँ,

आइवन ! आदमी एक बार अपनी जान पर खेलकर सब कुछ कर सकता है। जानते हो, मैं क्या करूँगी ? मैं उससे राहो-रस्म पैदा करूँगी, उसका विश्वास प्राप्त करूँगी, उसे इस भ्रांति में डालूँगी कि मुझे उससे प्रेम है। मनुष्य कितना ही हृदय-हीन हो, उसके हृदय के किसी-न-किसी कोने में पराग की भाँति रस छिपा ही रहता है। मैं तो समझती हूँ कि रोमनाफ की यह दमन-नीति उसकी अवरुद्ध अभिलाषा की गाँठ है, और कुछ नहीं। किसी मायाविनी के प्रेम में असफल होकर उसके हृदय का रस-स्रोत सूख गया है। वहाँ रस का संचार करना होगा और किसी युवती का एक मधुर शब्द, एक सरल मुसकान भी जादू का काम करेगी ! ऐसों को तो वह चुटकियों में अपने पैरों पर गिरा सकती है। तुम-जैसे सैलानियों को रिझाना इससे कहीं कठिन है। अगर तुम यह स्वीकार करते हो कि मैं रूपहीना नहीं हूँ, तो मैं तुम्हें विश्वास दिलाती हूँ कि मेरा कार्य सफल होगा। बतलाओ मैं रूपवती हूँ या नहीं ?

उसने तिर्छी आँखों से आइवन को देखा। आइवन इस भाव-विलास पर मुग्ध होकर बोला—तुम यह मुझसे पूछती हो, हेलेन ? मैं तो तुम्हें संसार की....

हेलेन ने उसकी बात काट कर कहा—अगर तुम ऐसा समझते हो, तो तुम मूर्ख हो, आइवन ! इसी नगर में, नहीं, हमारे विद्यालय में ही, मुझसे कहीं रूपवती बालिकाएँ मौजूद हैं। हाँ, तुम इतना ही कह सकते हो कि तुम कुरूपा नहीं हो। क्या तुम समझते हो, मैं तुम्हें संसार का सबसे रूपवान् युवक समझती हूँ ? कभी नहीं। मैं ऐसे एक नहीं सौ नाम गिना सकती हूँ, जो चेहरे-मोहरे में तुमसे कहीं बढ़कर हैं; मगर तुममें कोई ऐसी वस्तु है, जो तुम्हीं में है और वह मुझे और कहीं नजर नहीं आती। तो मेरा कार्यक्रम सुनो। एक महीना तो मुझे उससे मेल करते लगेगा। फिर वह मेरे साथ सैर करने निकलेगा। और तब एक दिन हम और वह दोनों रात को पार्क में जायँगे और तालाब के किनारे बेंच पर बैठेंगे। तुम उसी वक्त रिवाल्वर लिये आ जाओगे और वहीं पृथ्वी उसके बोझ से हलकी हो जायगी।

जैसा हम पहले कह चुके हैं आइवन एक रईस का लड़का था और क्रांतिमय राजनीति से उसका हार्दिक प्रेम न था। हेलेन के प्रभाव से कुछ मानसिक सहानुभूति अवश्य पैदा हो गयी थी और मानसिक सहानुभूति प्राणों को संकट में

नहीं डालती। उसने प्रकट रूप से तो कोई आपत्ति नहीं की लेकिन कुछ संदिग्ध भाव से बोला—यह तो सोचो हेलेन, इस तरह की हत्या कोई मानुषीय कृति है ?

हेलेन ने तीखेपन से कहा—जो दूसरों के साथ मानुषीय व्यवहार नहीं करता, उसके साथ हम क्यों मानुषीय व्यवहार करें ? क्या यह सूर्य की भाँति प्रकट नहीं है कि आज सैकड़ों परिवार इस राक्षस के हाथों तबाह हो रहे हैं ? कौन जानता है, इसके हाथ कितने बेगुनाहों के खून से रँगे हुए हैं ! ऐसे व्यक्ति के साथ किसी तरह की रिआयत करना असंगत है। तुम न-जाने क्यों इतने ठण्ढे हो। मैं तो उसके दुष्टाचरण देखती हूँ, तो मेरा रक्त खौलने लगता है। मैं सच कहती हूँ, जिस वक्त उसकी सवारी निकलती है, मेरी बोटी-बोटी हिंसा के आवेग से काँपने लगती है। अगर मेरे सामने कोई उसकी खाल भी खींच ले, तो मुझे दया न आये। अगर तुममें इतना साहस नहीं है, तो कोई हरज नहीं। मैं खुद सब कुछ कर लूँगी। हाँ, देख लेना, मैं कैसे उस कुत्ते को जहन्नुम पहुँचाती हूँ।

हेलेन का मुख-मंडल हिंसा के आवेग से लाल हो गया। आइवन ने लज्जित होकर कहा—नहीं-नहीं, यह बात नहीं है, हेलेन ! मेरा यह आशय न था कि मैं इस काम में तुम्हें सहयोग न दूँगा। मुझे आज मालूम हुआ कि तुम्हारी आत्मा देश की दुर्दशा से कितनी विकल है, लेकिन मैं फिर यही कहूँगा कि यह काम इतना आसान नहीं है और हमें बड़ी सावधानी से काम लेना पड़ेगा।

हेलेन ने उसके कंधे पर हाथ रखकर कहा—तुम इसकी कुछ चिन्ता न करो, आइवन ! संसार में मेरे लिए जो वस्तु सबसे प्यारी है, उसे दाँव पर रखते हुए क्या मैं सावधानी से काम न लूँगी ? लेकिन तुमसे एक याचना करती हूँ। अगर इस बीच में मैं कोई ऐसा काम करूँ, जो तुम्हें बुरा मालूम हो तो तुम मुझे क्षमा करोगे न ?

आइवन ने विस्मय-भरी आँखों से हेलेन के मुख की ओर देखा। उसका आशय उसकी समझ में न आया।

हेलेन डरी, आइवन कोई नयी आपत्ति तो नहीं खड़ी करना चाहता। आश्वासन के लिए अपने मुख को उसके आतुर अधरों के समीप ले जाकर बोली—प्रेम का अभिनय करने में मुझे वह सब कुछ करना पड़ेगा, जिस पर एकमात्र

तुम्हारा ही अधिकार है। मैं डरती हूँ, कहीं तुम मुझ पर सन्देह न करने लगो।

आइवन ने उसे कर-पाश में लेकर कहा—यह असम्भव है हेलेन, विश्वास प्रेम की पहली सीढ़ी है।

अंतिम शब्द कहते-कहते उसकी आँखें झुक गयीं। इन शब्दों में उदारता का जो आदर्श था, वह उस पर पूरा उतरेगा या नहीं, वह यही सोचने लगा।

इसके तीन दिन पीछे नाटक का सूत्रपात हुआ। हेलेन अपने ऊपर पुलिस के निराधार संदेह की फरियाद लेकर रोमनाफ से मिली और उसे विश्वास दिलाया कि पुलिस के अधिकारी उससे केवल इसलिए असंतुष्ट हैं कि वह उनके कलुषित प्रस्तावों को ठुकरा रही है। यह सत्य है कि विद्यालय में उसकी संगति कुछ उग्र युवकों से हो गयी थी; पर विद्यालय से निकलने के बाद उसका उनसे कोई सम्बन्ध नहीं है। रोमनाफ जितना चतुर था, उससे कहीं चतुर अपने को समझता था। अपने दस साल के अधिकारी-जीवन में उसे किसी ऐसी रमणी से साबिका न पड़ा था, जिसने उसके ऊपर इतना विश्वास करके अपने को उसकी दया पर छोड़ दिया हो। किसी धन-लोलुप की भाँति सहसा यह धन-राशि देखकर उसकी आँखों पर परदा पड़ गया। अपनी समझ में तो वह हेलेन से उग्र युवकों के विषय में ऐसी बहुत-सी बातों का पता लगाकर फूला न समाया, जो खुफिया पुलिसवालों को बहुत सिर मारने पर भी ज्ञात न हो सकी थीं; पर इन बातों में मिथ्या का कितना मिश्रण है, वह वह न भाँप सका। इस आध घंटे में एक युवती ने एक अनुभवी अफसर को अपने रूप की मदिरा से उन्मत्त कर दिया था।

जब हेलेन चलने लगी, तो रोमनाफ ने कुर्सी से खड़े होकर कहा—मुझे आशा है, यह हमारी आखिरी मुलाकात न होगी।

हेलेन ने हाथ बढ़ाकर कहा—हुजूर ने जिस सौजन्य से मेरी विपत्ति-कथा सुनी है, उसके लिए मैं आपको धन्यवाद देती हूँ।

'कल आप तीसरे पहर यहीं चाय पियें।'

रब्त-जब्त बढ़ने लगा। हेलेन आकर रोज की बातें आइवन से कह सुनाती। रोमनाफ वास्तव में जितना बदनाम है, उतना बुरा नहीं। नहीं, वह बड़ा रसिक, संगीत और कला का प्रेमी और शील तथा विनय की मूर्ति है। इन थोड़े ही दिनों में हेलेन से उसकी घनिष्ठता हो गयी है और किसी अज्ञात रीति से नगर में पुलिस का अत्याचार कम होने लगा है।

अन्त में वह निश्चित तिथि आयी। आइवन और हेलेन दिन-भर बैठे-बैठे इसी प्रश्न पर विचार करते रहे। आइवन का मन आज बहुत चञ्चल हो रहा था। कभी अकारण ही हँसने लगता, कभी अनायास ही रो पड़ता। शंका, प्रतीक्षा और किसी अज्ञात चिंता ने उसके मनो-सागर को इतना अशान्त कर दिया था कि उसमें भावों की नौकाएँ डगमगा रही थीं—न मार्ग का पता था न दिशा का। हेलेन भी आज बहुत चिन्तित और गम्भीर थी। आज के लिए उसने पहले ही से सजीले वस्त्र बनवा रखे थे। रूप को अलंकृत करने के न-जाने किन-किन विधानों का प्रयोग कर रही थी; पर इसमें किसी योद्धा का उत्साह नहीं कायर का कम्पन था।

सहसा आइवन ने आँखों में आँसू भरकर कहा—तुम आज इतनी मायाविनी हो गयी हो हेलेन, कि मुझे न जाने क्यों तुमसे भय हो रहा है!

हेलेन मुसकरायी। उस मुसकान में करुणा भरी हुई थी—मनुष्य को कभी-कभी कितने ही अप्रिय कर्तव्यों का पालन करना पड़ता है आइवन, आज मैं सुधा से विष का काम लेने जा रही हूँ। अलंकार का ऐसा दुरुपयोग तुमने कहीं और देखा है?

आइवन उड़े हुए मन से बोला—इसी को राष्ट्र-जीवन कहते हैं।

'यह राष्ट्र-जीवन नहीं है—यह नरक है।'

'मगर संसार में अभी कुछ दिन और इसकी जरूरत रहेगी।'

'यह अवस्था जितनी जल्द बदल जाय, उतना ही अच्छा।'

पाँसा पलट चुका था, आइवन ने गर्म होकर कहा—अत्याचारियों को संसार में फलने-फूलने दिया जाय, जिसमें एक दिन इनके काँटों के मारे पृथ्वी पर कहीं पाँव रखने की जगह न रहे?

हेलेन ने कोई जवाब न दिया; पर उसके मन में जो अवसाद उत्पन्न हो गया था, वह उसके मुख पर झलक रहा था। राष्ट्र उसकी दृष्टि में सर्वोपरि था, उसके सामने व्यक्ति का कोई मूल्य न था। अगर इस समय उसका मन किसी कारण से दुर्बल भी हो रहा था, तो उसे खोल देने का उसमें साहस न था।

दोनों गले मिलकर विदा हुए। कौन जाने, यह अन्तिम दर्शन हो! दोनों के दिल भारी थे, और आँखें सजल।

आइवन ने उत्साह के साथ कहा—मैं ठीक समय पर आ जाऊँगा।

हेलेन ने कोई जवाब न दिया।

आइवन ने फिर सानुरोध कहा—खुदा से मेरे लिए दुआ करना, हेलेन!

हेलेन ने जैसे रोते हुए गले से कहा—मुझे खुदा पर भरोसा नहीं है।

'मुझे तो है!'

'कब से?

'जब से मौत मेरी आँखों के सामने खड़ी हो गयी।'

वह वेग के साथ चला गया। सन्ध्या हो गयी थी और दो घन्टे के बाद ही उस कठिन परीक्षा का समय आ जायगा, जिससे उसके प्राण काँप रहे थे। वह कहीं एकान्त में बैठकर सोचना चाहता था। आज उसे ज्ञात हो रहा था कि वह स्वाधीन नहीं है। बड़ी मोटी जंजीर उसके एक-एक अंग को जकड़े हुए थी। इन्हें वह कैसे तोड़े?

दस बज गये थे। हेलेन और रोमनाफ पार्क के एक कुञ्ज में बेंच पर बैठे हुए थे। तेज बर्फीली हवा चल रही थी। चाँद किसी क्षीण आशा की भाँति बादलों में छिपा हुआ था।

हेलेन ने इधर-उधर सशंक नेत्रों से देखकर कहा—अब तो देर हो गयी, यहाँ से चलना चाहिए।

रोमनाफ ने बेंच पर पाँव फैलाते हुए कहा—अभी तो ऐसी देर नहीं हुई है, हेलेन! कह नहीं सकता, जीवन के यह क्षण स्वप्न हैं या सत्य; लेकिन सत्य भी हैं तो स्वप्न से अधिक मधुर, और स्वप्न भी हैं तो सत्य से अधिक उज्ज्वल।

हेलेन बेचैन होकर उठी और रोमनाफ का हाथ पकड़कर बोली—मेरा जी आज कुछ चञ्चल हो रहा है। सिर में चक्कर-सा आ रहा है। चलो मुझे मेरे घर पहुँचा दो।

रोमनाफ ने उसका हाथ पकड़कर अपनी बगल में बैठाते हुए कहा—लेकिन मैंने मोटर तो ग्यारह बजे बुलायी है!

हेलेन के मुँह से एक चीख निकल गयी—ग्यारह बजे!

'हाँ, अब ग्यारह बजा चाहते हैं। आओ तब तक और कुछ बातें हों। रात तो काली बला-सी मालूम होती है। जितनी ही देर उसे दूर रख सकूं, उतना ही

अच्छा। मैं तो समझता हूँ, उस दिन तुम मेरे सौभाग्य की देवी बनकर आयी थीं हेलेन, नहीं तो अबतक मैंने न-जाने क्या-क्या अत्याचार किये होते। उस उदार नीति ने वातावरण में जो शुभ परिवर्तन कर दिया, उस पर मुझे स्वयं आश्चर्य हो रहा है। महीनों के दमन ने जो कुछ न कर पाया था, वह दिनों के आश्वासन ने पूरा कर दिखाया। और इसके लिए मैं तुम्हारा ऋणी हूँ हेलेन, केवल तुम्हारा। पर खेद यही है कि हमारी सरकार दवा करना नहीं जानती, केवल मारना जानती है। जार के मंत्रियों में अभी से मेरे विषय में सन्देह होने लगा है, और मुझे यहाँ से हटाने का प्रस्ताव हो रहा है।

सहसा टार्च का चकाचौंध पैदा करनेवाला प्रकाश बिजली की भाँति चमक उठा और रिवाल्वर छूटने की आवाज आयी। उसी वक्त रोमनाफ ने उछलकर आइवन को पकड़ लिया और चिल्लाया—पकड़ो, पकड़ो! खून! हेलेन, तुम यहाँ से भागो!

पार्क में कई संतरी थे। चारों ओर से दौड़ पड़े। आइवन घिर गया। एक क्षण में न-जाने कहाँ से टाउन-पुलिस, सशस्त्र पुलिस, गुप्त पुलिस और सवार पुलिस के जत्थे-के-जत्थे आ पहुँचे। आइवन गिरफ़्तार हो गया।

रोमनाफ ने हेलेन से हाथ मिलाकर सन्देह के स्वर में कहा—यह आइवन तो वही युवक है, जो तुम्हारे साथ विद्यालय में था?

हेलेन ने क्षुब्ध होकर कहा—हाँ, है। लेकिन मुझे इसका जरा भी अनुमान न था कि वह क्रान्तिवादी हो गया है।

'गोली मेरे सिर पर से सन्-सन् करती हुई निकल गयी।'

'या ईश्वर!'

'मैंने दूसरा फ़ायर करने का अवसर ही न दिया। मुझे इस युवक की दशा पर दुःख हो रहा है, हेलेन! ये अभागे समझते हैं कि इन हत्याओं से वे देश का उद्धार कर लेंगे। अगर मैं मर ही जाता, तो क्या मेरी जगह कोई मुझसे भी ज्यादा कठोर मनुष्य न आ जाता? लेकिन मुझे जरा भी क्रोध, दुःख या भय नहीं है हेलेन, तुम बिलकुल चिन्ता न करना। चलो, मैं तुम्हें पहुँचा दूँ।'

रास्ते-भर रोमनाफ इस आघात से बच जाने पर अपने को बधाई और ईश्वर को धन्यवाद देता रहा और हेलेन विचारों में मग्न बैठी रही।

दूसरे दिन मजिस्ट्रेट के इजलास में अभियोग चला, और हेलेन सरकारी गवाह थी। आइवन को मालूम हुआ कि दुनिया अँधेरी हो गयी है और वह उसकी अथाह गहराई में धँसता चला जा रहा है।

(३)

चौदह साल के बाद।

आइवन रेलगाड़ी से उतरकर हेलेन के पास जा रहा है। उसे घरवालों की सुध नहीं है। माता और पिता उसके वियोग में मरणासन्न हो रहे हैं, इसकी उसे परवाह नहीं है। वह अपने चौदह साल के पाले हुए हिंसा-भाव से उन्मत्त, हेलेन के पास जा रहा है; पर उसकी हिंसा में रक्त की प्यास नहीं है, केवल गहरी दाहक दुर्भावना है। इन चौदह सालों में उसने जो यातनाएँ झेली हैं, उनको दो-चार वाक्यों में मानो सत्त निकालकर, विष के समान हेलेन की धमनियों में भरकर उसे तड़पते हुए देखकर, वह अपनी आँखों को तृप्त करना चाहता है। और वह वाक्य क्या है?—"हेलेन, तुमने मेरे साथ जो दगा की है, वह शायद त्रिया-चरित्र के इतिहास में भी अद्वितीय है। मैंने अपना सर्वस्व तुम्हारे चरणों पर अर्पण कर दिया। मैं केवल तुम्हारे इशारों का गुलाम था। तुमने ही मुझे रोमनाफ की हत्या के लिए प्रेरित किया, और तुमने ही मेरे विरुद्ध साक्षी दी; केवल अपनी कुटिल काम-लिप्सा को पूरा करने के लिए! मेरे विरुद्ध कोई दूसरा प्रमाण न था। रोमनाफ और उसकी सारी पुलिस भी झूठी शहादतों से मुझे परास्त न कर सकती थी; मगर तुमने केवल अपनी वासना को तृप्त करने के लिए, केवल रोमनाफ के विषाक्त आलिंगन का आनन्द उठाने के लिए मेरे साथ यह विश्वासघात किया। पर आँखें खोलकर देखो कि वही आइवन, जिसे तुमने पैर के नीचे कुचला था, आज तुम्हारी उन सारी मक्कारियों का पर्दा खोलने के लिए तुम्हारे सामने खड़ा है। तुमने राष्ट्र की सेवा का बीड़ा उठाया था। तुम अपने को राष्ट्र की वेदी पर होम कर देना चाहती थीं; किन्तु कुत्सित कामनाओं के पहले ही प्रलोभन में तुम अपने सारे बहुरूप को तिलाञ्जलि देकर भोग-लालसा की गुलामी करने पर उतर गयीं। अधिकार और समृद्धि के पहले ही टुकड़े पर तुम दुम हिलाती हुई टूट पड़ीं, धिक्कार है तुम्हारी इस भोग-लिप्सा को, तुम्हारे इस कुत्सित जीवन को!"

(४)

सन्ध्या-काल था। पश्चिम के क्षितिज पर दिन की चिता जलकर ठंढी हो रही थी और रोमनाफ के विशाल भवन में हेलेन की अर्थी को ले चलने की तैयारियाँ हो रही थीं। नगर के नेता जमा थे और रोमनाफ अपने शोक-कम्पित हाथों से अर्थी को पुष्पहारों से सजा रहा था एवं उन्हें अपने आत्म-जल से शीतल कर रहा था। उसी वक्त आइवन उन्मत्त वेश में, दुर्बल, झुका हुआ, सिर के बाल बढ़ाये, कंकाल-सा आकर खड़ा हो गया। किसी ने उसकी ओर ध्यान न दिया। समझे, कोई भिक्षुक होगा, जो ऐसे अवसरों पर दान के लोभ से आ जाया करते हैं।

जब नगर के बिशप ने अन्तिम संस्कार समाप्त किया और मरियम की बेटियाँ नये जीवन के स्वागत का गीत गा चुकीं, तो आइवन ने अर्थी के पास जाकर आवेश से काँपते हुए स्वर में कहा—यह वह दुष्टा है, जिसे सारी दुनिया के पवित्र आत्माओं की शुभ कामनाएँ भी नरक की यातना से नहीं बचा सकतीं। वह इस योग्य थी कि उसकी लाश....

कई आदमियों ने दौड़कर उसे पकड़ लिया और उसे धक्के देते हुए फाटक की ओर ले चले। उसी वक्त रोमनाफ ने आकर उसके कन्धे पर हाथ रख दिया और उसे अलग ले जाकर पूछा—दोस्त, क्या तुम्हारा नाम क्लॉडियस आइवनाफ है? हाँ, तुम वही हो, मुझे तुम्हारी सूरत याद आ गयी। मुझे सब-कुछ मालूम है, रत्ती-रत्ती मालूम है। हेलेन ने मुझसे कोई बात नहीं छिपायी। अब वह इस संसार में नहीं है, मैं झूठ बोलकर उसकी कोई सेवा नहीं कर सकता। तुम उस पर कठोर शब्दों का प्रहार करो या कठोर आघातों का; वह समान रूप से शान्त रहेगी; लेकिन अन्त समय तक वह तुम्हारी याद करती रही। उस प्रसंग की स्मृति उसे सदैव रुलाती रहती थी। उसके जीवन की यह सबसे बड़ी कामना थी कि तुम्हारे सामने घुटने टेककर क्षमा की याचना करे, मरते-मरते उसने यह वसीयत की, कि जिस तरह भी हो सके उसकी यह विनय तुम तक पहुँचाऊँ कि वह तुम्हारी अपराधिनी है और तुमसे क्षमा चाहती है। क्या तुम समझते हो, जब वह तुम्हारे सामने आँखों में आँसू भरे आती, तो तुम्हारा हृदय पत्थर होने पर भी न पिघल जाता? क्या इस समय भी वह तुम्हें दीन याचना की प्रतिमा-सी खड़ी नहीं दीखती? जरा चलकर उसका मुसकराता हुआ चेहरा देखो। मोशियो

आइवन, तुम्हारा मन अब भी उसका चुम्बन लेने के लिए विकल हो जायगा। मुझे जरा भी ईर्ष्या न होगी। उस फूलों की सेज पर लेटी हुई वह ऐसी लग रही है, मानो फूलों की रानी हो। जीवन में उसकी एक ही अभिलाषा अपूर्ण रह गयी आइवन, वह तुम्हारी क्षमा है। प्रेमी-हृदय बड़ा उदार होता है आइवन, वह क्षमा और दया का सागर होता है। ईर्ष्या और दम्भ के गन्दे नाले उसमें मिलकर उतने ही विशाल और पवित्र हो जाते हैं। जिसे एक बार तुमने प्यार किया, उसकी अन्तिम अभिलाषा की तुम उपेक्षा नहीं कर सकते।

उसने आइवन का हाथ पकड़ा और सैकड़ों कुतूहल-पूर्ण नेत्रों के सामने उसे लिये हुए अर्थी के पास आया और ताबूत का ऊपरी तख्ता हटाकर हेलेन का शान्त मुख-मण्डल उसे दिखा दिया। उस निस्पन्द, निश्चेष्ट, निर्विकार छवि को मृत्यु ने एक दैवी गरिमा-सी प्रदान कर दी थी, मानो स्वर्ग की सारी विभूतियाँ उसका स्वागत कर रही हैं। आइवन की कुटिल आँखों में एक दिव्य ज्योति-सी चमक उठी और वह दृश्य सामने खिंच गया, जब उसने हेलेन को प्रेम से आलिंगित किया था और अपने हृदय के सारे अनुराग और उल्लास को पुष्पों में गूँथ कर उसके गले में डाला था। उसे जान पड़ा, यह सब कुछ जो उसके सामने हो रहा है, स्वप्न है और एकाएक उसकी आँखें खुल गयी हैं और वह उसी भाँति हेलेन को अपनी छाती से लगाये हुए है। उस आत्मानन्द के एक क्षण के लिए क्या वह फिर चौदह साल का कारावास झेलने के लिए न तैयार हो जायगा? क्या अब भी उसके जीवन की सबसे सुखद घड़ियाँ वही न थीं, जो हेलेन के साथ गुजरी थीं और क्या उन घड़ियों के अनुपम आनन्द को वह इन चौदह सालों में भी भूल सका था? उसने ताबूत के पास बैठकर श्रद्धा से काँपते हुए कंठ से प्रार्थना की—'ईश्वर, तू मेरे प्राणों से प्रिय हेलेन को अपनी क्षमा के दामन में ले!' और जब वह ताबूत को कन्धे पर लिये चला, तो उसकी आत्मा लज्जित थी अपनी संकीर्णता पर, अपनी उद्विग्नता पर, अपनी नीचता पर और जब ताबूत कब्र में रख दिया गया, तो वह वहाँ बैठकर न-जाने कब तक रोता रहा। दूसरे दिन रोमनाफ जब फातिहा पढ़ने आया तो देखा, आइवन सिजदे में सिर झुकाये हुए है, और उसकी आत्मा स्वर्ग को प्रयाण कर चुकी है।

मिस पद्मा

कानून में अच्छी सफलता प्राप्त कर लेने के बाद मिस पद्मा को एक नया अनुभव हुआ, वह था जीवन का सूनापन। विवाह को उन्होंने एक अप्राकृतिक बंधन समझा था और निश्चय कर लिया था कि स्वतन्त्र रहकर जीवन का उपभोग करूँगी। एम० ए० की डिग्री ली, फिर कानून पास किया और प्रैक्टिस शुरू कर दी। रूपवती थी, युवती थी, मृदुभाषिणी थी और प्रतिभाशालिनी भी थी। मार्ग में कोई बाधा न थी। देखते-देखते वह अपने साथी नौजवान मर्द वकीलों को पीछे छोड़कर आगे निकल गयी और अब उसकी आमदनी कभी-कभी एक हजार से भी ऊपर बढ़ जाती। अब उतने परिश्रम और सिर-मगजन की आवश्यकता न रही। मुकदमे अधिकतर वही होते थे, जिनका उसे पूरा अनुभव हो चुका था, उनके विषय में किसी तरह की तैयारी की उसे जरूरत न मालूम होती। अपनी शक्तियों पर कुछ विश्वास भी हो गया था। कानून में कैसे विजय मिल सकती है, इसके कुछ लटके भी उसे मालूम हो गये थे। इसलिए उसे अब बहुत अवकाश मिलता था और इसे वह किस्से-कहानियाँ पढ़ने, सैर करने, सिनेमा देखने, मिलने-मिलाने में खर्च करती थी। जीवन को सुखी बनाने के लिए किसी व्यसन की जरूरत को वह खूब समझती थी। उसने फूल और पौदे लगाने का व्यसन पाल लिया था। तरह-तरह के बीज और पौदे मँगाती और उन्हें उगते-बढ़ते, फूलते-फलते देखकर खुश होती; मगर फिर भी जीवन में सूनेपन का अनुभव होता रहता था। यह बात न थी कि उसे पुरुषों से विरक्ति हो। नहीं, उसके प्रेमियों की कमी न थी। अगर उसके पास केवल रूप और यौवन होता, तो भी उपासकों का अभाव न रहता; मगर यहाँ तो रूप और यौवन के साथ धन भी था। फिर रसिक-वृन्द क्यों चूक जाते? पद्मा को विलास से घृणा थी नहीं, घृणा थी पराधीनता से, विवाह को जीवन का व्यवसाय बनाने से। जब स्वतंत्र रहकर भोग-विलास का आनन्द उड़ाया जा सकता है, तो फिर क्यों न उड़ाया जाय? भोग में उसे कोई नैतिक बाधा न थी, इसे वह केवल देह की एक भूख समझती थी। इस भूख को किसी

साफ-सुथरी दूकान से भी शान्त किया जा सकता है। और पद्मा को साफ-सुथरी दूकान की हमेशा तलाश रहती थी। ग्राहक दूकान में वही चीज लेता है, जो उसे पसन्द आती है। पद्मा भी वही चीज चाहती थी। यों उसके दर्जनों आशिक थे—कई वकील, कई प्रोफेसर, कई डाक्टर, कई रईस। मगर ये सब-के-सब ऐयाश थे—बेफिक्र, केवल भौंरे की तरह रस लेकर उड़ जाने वाले। ऐसा एक भी न था, जिस पर वह विश्वास कर सकती। अब उसे मालूम हुआ कि उसका मन केवल भोग नहीं चाहता, कुछ और भी चाहता है। वह चीज क्या थी? पूरा आत्म-समर्पण, और यह उसे न मिलती थी।

उसके प्रेमियों में एक मि० प्रसाद था—बड़ा ही रूपवान् और धुरन्धर विद्वान्। एक कालेज में प्रोफेसर था। वह भी मुक्त-भोग के आदर्श का उपासक था और पद्मा उस पर फिदा थी। चाहती थी उसे बाँधकर रखे, सम्पूर्णतः अपना बना ले; लेकिन प्रसाद चंगुल में न आता था।

सन्ध्या हो गयी थी। पद्मा सैर करने जा रही थी कि प्रसाद आ गये। सैर करना मुल्तवी हो गया। बात-चीत में सैर से कहीं ज्यादा आनन्द था और पद्मा आज प्रसाद से कुछ दिल की बात कहने वाली थी। कई दिन के सोच-विचार के बाद आज उसने कह डालने ही का निश्चय किया था।

उसने प्रसाद की नशीली आँखों से आँखें मिलाकर कहा—तुम यहीं मेरे बँगले में आकर क्यों नहीं रहते?

प्रसाद ने कुटिल-विनोद के साथ कहा—नतीजा यह होगा कि दो-चार महीने में यह मुलाकात भी बन्द हो जायगी।

'मेरी समझ में नहीं आया, तुम्हारा क्या आशय है।'

'आशय वही है, जो मैं कह रहा हूँ।'

'आखिर क्यों?'

'मैं अपनी स्वतन्त्रता न खोना चाहूँगा, तुम अपनी स्वतन्त्रता न खोना चाहोगी। तुम्हारे पास तुम्हारे आशिक आयेंगे, मुझे जलन होगी। मेरे पास मेरी प्रेमिकाएँ आयेंगी, तुम्हें जलन होगी। मन-मुटाव होगा, फिर वैमनस्य होगा और तुम मुझे घर से निकाल दोगी। घर तुम्हारा है ही। मुझे बुरा लगेगा ही, फिर यह मैत्री कैसे निभेगी?'

दोनों कई मिनट तक मौन रहे। प्रसाद ने परिस्थिति को इतने स्पष्ट, बेलाग, लट्ठमार शब्दों में खोलकर रख दिया था कि कुछ कहने की जगह न मिलती थी।

आखिर प्रसाद ही को नुकता सूझा। बोला—जब तक हम दोनों यह प्रतिज्ञा न कर लें कि आज से मैं तुम्हारा हूँ और तुम मेरी हो, तब तक एक साथ निर्वाह नहीं हो सकता।

'तुम यह प्रतिज्ञा करोगे?'

'पहले तुम बतलाओ।'

'मैं करूँगी।'

'तो मैं भी करूँगा।'

'मगर इस एक बात के सिवा मैं और सभी बातों में स्वतंत्र रहूँगी।'

'और मैं भी इस एक बात के सिवा हर बात में स्वतंत्र रहूँगा।'

'मंजूर।'

'मंजूर!'

'तो कब से?'

'जब से तुम कहो।'

'मैं तो कहती हूँ, कल ही से।'

'तय। लेकिन अगर तुमने इसके विरुद्ध आचरण किया तो?'

'और तुमने किया तो?'

'तुम मुझे घर से निकाल सकती हो; लेकिन मैं तुम्हें क्या सजा दूँगा?'

'तुम मुझे त्याग देना, और क्या करोगे?'

'जी नहीं, तब इतने से चित्त को शान्ति न मिलेगी। तब मैं चाहूँगा तुम्हें जलील करना; बल्कि तुम्हारी हत्या करना।'

'तुम बड़े निर्दयी हो, प्रसाद!'

'जब तक हम दोनों स्वाधीन हैं, हमें किसी को कुछ कहने का हक नहीं; लेकिन एक बार प्रतिज्ञा में बँध जाने के बाद फिर न मैं उसकी अवज्ञा सह सकूँगा, न तुम सह सकोगी। तुम्हारे पास दण्ड का साधन है, मेरे पास नहीं है। कानून मुझे कोई भी अधिकार नहीं देता। मैं तो केवल अपने पशुबल से प्रतिज्ञा का पालन कराऊँगा और तुम्हारे इतने नौकरों के सामने मैं अकेला क्या कर सकूँगा?'

'तुम तो चित्र का श्याम पक्ष ही देखते हो। जब मैं तुम्हारी हो रही हूँ, तो यह मकान, नौकर-चाकर और जायदाद सब कुछ तुम्हारा है। हम-तुम दोनों जानते हैं कि ईर्ष्या से ज्यादा घृणित कोई सामाजिक पाप नहीं है। तुम्हें मुझसे प्रेम है या नहीं, मैं नहीं कह सकती; लेकिन तुम्हारे लिए मैं सब कुछ सहने, सब कुछ करने को तैयार हूँ।'

'दिल से कहती हो पद्मा!'

'सच्चे दिल से।'

'मगर न-जाने क्यों तुम्हारे ऊपर विश्वास नहीं आ रहा है?

'मैं तो तुम्हारे ऊपर विश्वास कर रही हूँ।'

'यह समझ लो, मैं मेहमान बनकर तुम्हारे घर में न रहूँगा, स्वामी बनकर रहूँगा।'

'तुम घर के स्वामी ही नहीं, मेरे स्वामी बनकर रहोगे। मैं तुम्हारी स्वामिनी बन कर रहूँगी।'

(२)

प्रो० प्रसाद और मिस पद्मा दोनों साथ रहते हैं और प्रसन्न हैं। दोनों ही ने जीवन का जो आदर्श मन में स्थिर कर लिया था, वह सत्य बन गया है। प्रसाद को केवल दो सौ रुपये वेतन मिलता है; मगर अब वह अपनी आमदनी का दुगुना भी खर्च कर दे तो परवाह नहीं। पहले वह कभी-कभी शराब पीता था, अब रात-दिन शराब में मस्त रहता है। अब उसके लिए अलग अपनी कार है, अलग अपने नौकर हैं, तरह-तरह की बहुमूल्य चीजें मँगवाता रहता है और पद्मा बड़े हर्ष से उसकी सारी फिजूल-खर्चियाँ बर्दाश्त करती है। नहीं, बर्दाश्त करने का प्रश्न नहीं। वह खुद उसे अच्छे-से-अच्छे सूट पहनाकर, अच्छे-से-अच्छे ठाठ में रखकर, प्रसन्न होती है। जैसी घड़ी इस वक्त प्रो० प्रसाद के पास है, शहर के बड़े-से-बड़े रईस के पास न होगी और पद्मा जितना ही उससे दबती है, प्रसाद उतना ही उसे दबाता है। कभी-कभी उसे नागवार भी लगता है; पर वह किसी अज्ञात कारण से अपने को उसके वश में पाती है। प्रसाद को जरा भी उदास या चिन्तित देखकर उसका मन चञ्चल हो जाता है। उस पर आवाजें कसी जाती हैं, फबतियाँ चुस्त की जाती हैं। जो उसके पुराने प्रेमी थे, वे उसे जलाने और कुढ़ाने का प्रयास भी करते हैं; पर वह प्रसाद के पास आते ही सब कुछ भूल जाती है। प्रसाद ने उसपर पूरा आधिपत्य पा लिया है, और उसे इसका ज्ञान है। पद्मा को उसने बारीक आँखों से पढ़ा है और उसका आसन अच्छी तरह पा गया है।

मगर जैसे राजनीति के क्षेत्र में अधिकार दुरुपयोग की ओर जाता है, उसी तरह प्रेम के क्षेत्र में भी वह दुरुपयोग की ओर ही जाता है, और जो कमजोर है, उसे तावान देना पड़ता है। आत्माभिमानी पद्मा अब प्रसाद की लौंडी थी और प्रसाद उसकी दुर्बलता का फायदा उठाने से क्यों चूकता? उसने कील की पतली नोक चुभा ली थी और बड़ी कुशलता से उत्तरोत्तर उसे अन्दर ठोंकता जाता था। यहाँ तक कि उसने रात को देर में घर आना शुरू किया। पद्मा को अपने साथ न ले जाता, उससे बहाना करता कि मेरे सिर में दर्द है, और जब पद्मा घूमने चली जाती तो अपनी कार निकाल लेता और उड़ जाता। दो साल गुजर गये थे, और पद्मा को गर्भ था। वह स्थूल भी हो चली थी। उसके रूप में पहले की-सी नवीनता और मादकता न रह गयी थी। वह घर की मुर्गी थी, साग बराबर।

एक दिन इसी तरह पद्मा लौटकर आयी, तो प्रसाद गायब थे। वह झुँझला उठी। इधर कई दिन से वह प्रसाद का रंग बदला हुआ देख रही थी। आज उसने कुछ स्पष्ट बातें कहने का साहस बटोरा। दस बज गये, ग्यारह बज गये, बारह बज गये, पद्मा उसके इन्तजार में बैठी थी। भोजन ठण्डा हो गया, नौकर-चाकर सो गये। वह बार-बार उठती, फाटक पर जाकर नजर दौड़ाती। बारह-एक बजे के करीब प्रसाद घर आये।

पद्मा ने साहस तो बहुत बटोरा था; पर प्रसाद के सामने जाते ही उसे अपनी कमजोरी मालूम हुई। फिर भी उसने जरा कड़े स्वर में पूछा—आज आप इतनी रात तक कहाँ थे? कुछ खबर है, कितनी रात गयी?

प्रसाद को वह इस वक्त असुन्दरता की मूर्ति-सी लगी। वह एक विद्यालय की छात्रा के साथ सिनेमा देखने गया था। बोला—तुमको आराम से सो जाना चाहिए था। तुम जिस दशा में हो, उसमें तुम्हें, जहाँ तक हो सके, आराम से रहना चाहिए।

पद्मा का साहस कुछ प्रबल हुआ—तुमसे मैं जो पूछती हूँ, उसका जवाब दो। मुझे जहन्नुम में भेजो!

'तो तुम भी मुझे जहन्नुम में जाने दो।'

'तुम मेरे साथ दगा कर रहे हो, यह मैं साफ देख रही हूँ।'

'तुम्हारी आँखों की ज्योति कुछ बढ़ गयी होगी!'

'मैं इधर कई दिन से तुम्हारा मिजाज बदला हुआ देख रही हूँ।'

'मैंने तुम्हारे हाथ अपने को बेचा नहीं है। अगर तुम्हारा जी मुझसे भर गया हो, तो मैं आज जाने को तैयार हूँ।'

'तुम जाने की धमकी क्या देते हो! यहाँ तुमने आकर कोई बड़ा त्याग नहीं किया है।'

'मैंने त्याग नहीं किया है? तुम यह कहने का साहस कर रही हो। मैं देखता हूँ, तुम्हारा मिजाज बिगड़ रहा है। तुम समझती हो, मैंने इसे अपंग कर दिया। मगर मैं इसी वक्त तुम्हें ठोकर मारने को तैयार हूँ। इसी वक्त, इसी वक्त!'

पद्मा का साहस जैसे बुझ गया था। प्रसाद अपना ट्रंक सँभाल रहा था। पद्मा ने दीन-भाव से कहा—मैंने तो ऐसी कोई बात नहीं कही, जो तुम इतना बिगड़ उठे। मैं तो केवल तुमसे पूछ रही थी, कहाँ थे। क्या तुम मुझे इतना भी अधिकार नहीं देना चाहते? मैं कभी तुम्हारी इच्छा के विरुद्ध कोई काम नहीं करती और तुम मुझे बात-बात पर डाँटते रहते हो। तुम्हें मुझपर जरा भी दया नहीं आती! मुझे तुमसे कुछ भी तो सहानुभूति मिलनी चाहिए। मैं तुम्हारे लिए क्या कुछ करने को तैयार नहीं हूँ? और आज जो मेरी दशा हो गयी है, तो तुम मुझसे आँखें फेरे लेते हो........

उसका कण्ठ रुँध गया और वह मेज पर सिर रखकर फूट-फूटकर रोने लगी। प्रसाद ने पूरी विजय पायी।

(३)

पद्मा के लिए मातृत्व अब बड़ा ही अप्रिय प्रसंग था। उस पर एक चिंता मँड़राती रहती। कभी-कभी वह भय से काँप उठती और पछताती। प्रसाद की निरंकुशता दिन-दिन बढ़ती जाती थी। क्या करे, क्या न करे। गर्भ पूरा हो गया था, वह कोर्ट न जाती थी। दिन-भर अकेली बैठी रहती। प्रसाद सन्ध्या

समय आते, चाय-वाय पीकर फिर उड़ जाते, तो ग्यारह-बारह बजे के पहले न लौटते। वह कहाँ जाते हैं, यह भी उससे छिपा न था। प्रसाद को जैसे उसकी सूरत से नफरत थी। पूर्ण गर्भ, पीला मुख, चिन्तित, सशंक, उदास। फिर भी वह प्रसाद को शृंगार और आभूषणों से बाँधने की चेष्टा से बाज न आती थी। मगर वह जितना ही प्रयास करती, उतना ही प्रसाद का मन उसकी ओर से फिरता था। इस अवस्था में शृंगार उसे और भी भद्दा लगता।

प्रसव-वेदना हो रही थी। प्रसाद का पता नहीं। नर्स मौजूद थी, लेडी डाक्टर मौजूद थी; मगर प्रसाद का न रहना पद्मा की प्रसव-वेदना को और भी दारुण बना रहा था।

बालक को गोद में देखकर उसका कलेजा फूल उठा; मगर फिर प्रसाद को सामने न पाकर उसने बालक की ओर से मुँह फेर लिया। मीठे फल में जैसे कीड़े पड़ गये हों।

पाँच दिन सौर-गृह में काटने के बाद जैसे पद्मा जेलखाने से निकली—नंगी तलवार बनी हुई। माता बनकर वह अपने में एक अद्‌भुत शक्ति का अनुभव कर रही थी।

उसने चपरासी को चेक देकर बैंक भेजा। प्रसव-सम्बन्धी कई बिल अदा करने थे। चपरासी खाली हाथ लौट आया।

पद्मा ने पूछा—रुपये?

'बैंक के बाबू ने कहा, रुपये सब प्रसाद बाबू निकाल ले गये।'

पद्मा को गोली लग गयी। बीस हजार रुपये प्राणों की तरह संचित कर रखे थे, इसी शिशु के लिए। हाय! सौर से निकलने पर मालूम हुआ, प्रसाद विद्यालय की एक बालिका को लेकर इंगलैण्ड की सैर करने चले गये। झल्लायी हुई घर में आयी, प्रसाद की तसवीर उठाकर जमीन पर पटक दी और उसे पैरों से कुचला। उसका जितना सामान था, उसे जमा करके दियासलाई लगा दी और उसके नाम पर थूक दिया।

एक महीना बीत गया था। पद्मा अपने बँगले के फाटक पर शिशु को गोद में लिये खड़ी थी। उसका क्रोध अब शोकमय निराशा बन चुका था। बालक

पर कभी दया आती, कभी प्यार आता, कभी घृणा आती। उसने सड़क पर देखा, एक यूरोपीयन लेडी अपने पति के साथ अपने बालक को बच्चों की गाड़ी में बिठाये लिये चली जा रही थी। उसने हसरत-भरी आँखों से उस खुशनसीब जोड़े को देखा और उसकी आँखें सजल हो गयीं।

विद्रोही

आज दस साल से जब्त कर रहा हूँ। अपने इस नन्हें-से हृदय में अग्नि का दहकता हुआ कुण्ड छिपाये बैठा हूँ। संसार में कहीं शांति होगी, कहीं सैर-तमाशे होंगे, कहीं मनोरञ्जन की वस्तुएँ होंगी; मेरे लिए तो अब यही अग्निराशि है, और कुछ नहीं। जीवन की सारी अभिलाषाएँ इसी में जलकर राख हो गयीं। किससे अपनी मनोव्यथा कहूँ? फायदा ही क्या? जिसके भाग्य में रुदन, अनन्त रुदन हो, उसका मर जाना ही अच्छा।

मैंने पहली बार तारा को उस वक्त देखा, जब मेरी उम्र दस साल की थी। मेरे पिता आगरे के एक अच्छे डाक्टर थे। लखनऊ में मेरे एक चचा रहते थे। उन्होंने वकालत में काफी धन कमाया था। मैं उन दिनों चचा ही के साथ रहता था। चचा के कोई सन्तान न थी; इसलिए मैं ही उनका वारिस था। चचा और चची दोनों मुझे अपना पुत्र समझते थे। मेरी माता बचपन ही में सिधार चुकी थीं। मातृ-स्नेह का जो कुछ प्रसाद मुझे मिला, वह चची जी ही की भिक्षा थी। वही भिक्षा मेरे उस मातृ-प्रेम से वंचित बालपन की सारी विभूति थी।

चचा साहब के पड़ोस में हमारी बिरादरी के एक बाबू साहब और रहते थे। वह रेलवे-विभाग में किसी अच्छे ओहदे पर थे। दो-ढाई सौ रुपये पाते थे। नाम था विमलचन्द्र। तारा उन्हीं की पुत्री थी। उस वक्त उसकी उम्र पाँच साल की होगी। बचपन का वह दिन आज भी आँखों के सामने है, जब तारा एक फ्राक पहने, बालों में एक गुलाब का फूल गूँथे हुए मेरे सामने आकर खड़ी हो गयी। कह नहीं सकता, क्यों मैं उसे देखकर झेंप-सा गया। मुझे वह देव-कन्या सी मालूम हुई, जो उषा-काल के सौरभ और प्रकाश से रंजित आकाश से उतर आयी हो।

उस दिन से तारा अक्सर मेरे घर आती। उसके घर में खेलने की जगह न थी। चचा साहब के घर के सामने लम्बा-चौड़ा मैदान था। वहीं वह खेला करती। धीरे-धीरे मैं भी उससे मानूस हो गया। मैं जब स्कूल से लौटता तो तारा दौड़कर

मेरे हाथों से किताबों का बस्ता ले लेती। जब मैं स्कूल जाने के लिए गाड़ी पर बैठता, तो वह भी आकर मेरे साथ बैठ जाती। एक दिन उसके सामने चची ने चचाजी से कहा—तारा को मैं अपनी बहू बनाऊँगी। क्यों कृष्णा, तू तारा से ब्याह करेगा? मैं मारे शर्म के बाहर भाग गया; लेकिन तारा वहीं खड़ी रही, मानो चची ने उसे मिठाई देने को बुलाया हो। उस दिन से चचा और चची में अक्सर यह चर्चा होती—कभी सलाह के ढङ्ग से, कभी मजाक के ढङ्ग से। उस अवसर पर मैं तो शर्माकर बाहर भाग जाता था; पर तारा खुश होती थी। दोनों परिवारों में इतना घराव था कि इस सम्बन्ध का हो जाना कोई असाधारण बात न थी। तारा के माता-पिता को तो इसका पूरा विश्वास था कि तारा से मेरा विवाह होगा। मैं जब उनके घर जाता, तो मेरी बड़ी आव-भगत होती। तारा की माँ उसे मेरे साथ छोड़कर किसी बहाने से टल जाती थीं। किसी को अब इसमें शक न था कि तारा ही मेरी हृदयेश्वरी होगी।

एक दिन उस सरला ने मिट्टी का एक घरौंदा बनाया। मेरे मकान के सामने नीम का पेड़ था। उसी की छाँह में वह घरौंदा तैयार हुआ। उसमें कई जरा-जरा से कमरे थे, कई मिट्टी के बरतन, एक नन्हीं-सी चारपाई थी। मैंने जाकर देखा, तो तारा घरौंदा बनाने में तन्मय हो रही थी। मुझे देखते ही दौड़कर मेरे पास आयी और बोली—कृष्णा, चलो हमारा घर देखो, मैंने अभी बनाया है। घरौंदा देखा, तो हँसकर बोला—इसमें कौन रहेगा, तारा?

तारा ने ऐसा मुँह बनाया, मानो यह व्यर्थ का प्रश्न था! बोली—क्यों, हम और तुम कहाँ रहेंगे? जब हमारा-तुम्हारा विवाह हो जायगा, तो हम लोग इसी घर में आकर रहेंगे। यह देखो, तुम्हारी बैठक है, तुम यहीं बैठकर पढ़ोगे। दूसरा कमरा मेरा है, इसमें बैठकर मैं गुड़िया खेलूँगी।

मैंने हँसी करके कहा—क्यों, क्या मैं सारी उम्र पढ़ता ही रहूँगा और तुम हमेशा गुड़िया ही खेलती रहोगी?

तारा ने मेरी तरफ इस ढङ्ग से देखा, जैसे मेरी बात नहीं समझी। पगली जानती थी कि जिन्दगी खेलने और हँसने ही के लिए है। यह न जानती थी, कि एक दिन हवा का एक झोंका आयेगा और इस घरौंदे को उड़ा ले जायगा और इसी के साथ हम दोनों भी कहीं-से-कहीं जा उड़ेंगे।

२

इसके बाद मैं पिताजी के पास चला आया और कई साल पढ़ता रहा। लखनऊ की जलवायु मेरे अनुकूल न थी, या पिताजी ने मुझे अपने पास रखने के लिए यह बहाना किया था, मैं निश्चय नहीं कह सकता। इण्टरमीडिएट तक मैंने आगरे ही में पढ़ा; लेकिन चाचा साहब के दर्शनों के लिए बराबर जाता रहता था। हरएक तातील में लखनऊ अवश्य जाता और गर्मियों की छुट्टी तो पूरी लखनऊ ही में कटती थी। एक छुट्टी गुजरते ही दूसरी छुट्टी आने के दिन गिने जाने लगते थे। अगर मुझे एक दिन की भी देर हो जाती, तो तारा का पत्र आ पहुँचता। बचपन के उस सरल प्रेम में अब जवानी का उत्साह और उन्माद था। वे प्यारे दिन क्या कभी भूल सकते हैं! वही मधुर स्मृतियाँ अब इस जीवन का सर्वस्व हैं। हम दोनों रात को सबकी नजरें बचाकर मिलते और हवाई किले बनाते। इससे कोई यह न समझे कि हमारे मन में पाप था, कदापि नहीं। हमारे बीच में एक भी ऐसा शब्द, एक भी ऐसा संकेत न आने पाता, जो हम दूसरों के सामने न कर सकते, जो उचित सीमा के बाहर होते। यह केवल वह संकोच था, जो इस अवस्था में हुआ करता है। शादी हो जाने के बाद भी तो कुछ दिनों तक स्त्री और पुरुष बड़ों के सामने बातें करते लजाते हैं। हाँ, जो अँग्रेजी-सभ्यता के उपासक हैं, उनकी बात मैं नहीं चलाता। वे तो बड़ों के सामने आलिंगन और चुम्बन तक करते हैं। हमारी मुलाकातें दोस्तों की मुलाकातें होती थीं—कभी ताश की बाजी होती, कभी साहित्य की चर्चा, कभी स्वदेश-सेवा के मनसूबे बँधते, कभी संसार-यात्रा के। क्या कहूँ, तारा का हृदय कितना पवित्र था! अब मुझे ज्ञात हुआ कि स्त्री कैसे पुरुष पर नियन्त्रण कर सकती है, कुत्सित को कैसे पवित्र बना सकती है। एक दूसरे से बातें करने में, एक दूसरे के सामने बैठे रहने में हमें असीम आनन्द होता था। फिर, प्रेम की बातों की जरूरत वहाँ होती है, जहाँ अपने अखण्ड अनुराग, अपनी अतुल निष्ठा, अपने पूर्ण आत्म-समर्पण का विश्वास दिलाना होता है। हमारा संबंध तो स्थिर हो चुका था। केवल रस्में बाकी थीं। वह मुझे अपना पति समझती थी, मैं उसे अपनी पत्नी समझता था। ठाकुरजी का भोग लगने के पहले थाल के पदार्थों में कौन हाथ लगा सकता है? हम दोनों में कभी-कभी लड़ाई भी होती थी और

कई-कई दिनों तक बातचीत की नौबत न आती; लेकिन ज्यादती कोई करे, मनाना उसी को पड़ता था। मैं जरा-सी बात पर तिनक जाता था। वह हँसमुख थी, बहुत ही सहनशील; लेकिन उसके साथ ही मानिनी भी परले सिरे की। मुझे खिलाकर भी खुद न खाती, मुझे हँसाकर भी खुद न हँसती।

इण्टरमीडिएट पास होते ही मुझे फौज में एक जगह मिल गयी। उस विभाग के अफसरों में पिताजी का बड़ा मान था। मैं सार्जन्ट हो गया और सौभाग्य से लखनऊ ही में मेरी नियुक्ति हुई। मुँह-माँगी मुराद पूरी हुई।

मगर विधि-वाम कुछ और ही षड्यन्त्र रच रहा था। मैं तो इस ख्याल में मगन था कि कुछ दिनों में तारा मेरी होगी। उधर एक दूसरा ही गुल खिल गया। शहर के एक नामी रईस ने चचाजी से मेरे विवाह की बात छेड़ दी और आठ हजार रुपये दहेज का वचन दिया। चचाजी के मुँह से लार टपक पड़ी। सोचा, यह आशातीत रकम मिलती है, इसे क्यों छोड़ूँ। विमल बाबू की कन्या का विवाह कहीं-न-कहीं हो ही जायगा। उन्हें सोचकर जवाब देने का वादा करके विदा किया और विमल बाबू को बुलाकर बोले—आज चौधरी साहब कृष्णा की शादी की बातचीत करने आये थे। आप तो उन्हें जानते होंगे? अच्छे रईस हैं। आठ हज़ार रुपये दे रहे हैं। मैंने कह दिया है, सोचकर जवाब दूँगा। आपकी क्या राय है? यह शादी मंजूर कर लूँ?

विमल बाबू ने चकित होकर कहा—यह आप क्या फरमाते हैं? कृष्णा की शादी तो तारा से ठीक हो चुकी है न?

चचा साहब ने अनजान बनकर कहा—यह तो मुझे आज मालूम हो रहा है। किसने ठीक की है यह शादी? आपसे तो मुझसे इस विषय में कोई भी बातचीत नहीं हुई।

विमल बाबू जरा गर्म होकर बोले—जो बात आज दस-बारह साल से सुनता हूँ, क्या उसकी तसदीक भी करनी चाहिए थी? मैं तो इसे तय समझे बैठा हूँ। मैं ही क्या, सारा मुहल्ला तय समझ रहा है।

चचा साहब ने बदनामी के भय से जरा दबकर कहा—भाई साहब, हक तो यह है कि मैं जब कभी इस सम्बन्ध की चर्चा करता था, दिल्लगी के तौर पर लेकिन खैर, मैं आपको निराश नहीं करना चाहता। आप मेरे पुराने मित्र हैं।

मैं आपके साथ सब तरह की रिआयत करने को तैयार हूँ। मुझे आठ हजार मिल रहे हैं। आप मुझे सात ही हजार दीजिए—छः हजार ही दीजिए।

विमल बाबू ने उदासीन भाव से कहा—आप मुझसे मजाक कर रहे हैं या सचमुच दहेज माँग रहे हैं मुझे यकीन नहीं आता।

चचा साहब ने माथा सिकोड़कर कहा—इसमें मजाक की तो कोई बात नहीं। मैं आपके सामने चौधरी से बातें कर सकता हूँ।

विमल—बाबूजी, आपने तो यह नया प्रश्न छेड़ दिया। मुझे तो स्वप्न में भी गुमान न था कि हमारे और आपके बीच में यह प्रश्न खड़ा होगा। ईश्वर ने आपको बहुत कुछ कर दिया। दस-पाँच हजार में आपका कुछ न बनेगा। हाँ, यह रकम मेरी सामर्थ्य से बाहर है। मैं तो आपसे दया ही की भिक्षा माँग सकता हूँ। आज दस-बारह साल से हम कृष्णा को अपना दामाद समझते आ रहे हैं। आपकी बातों से भी कई बार इसकी तसदीक हो चुकी है। कृष्णा और तारा में जो प्रेम है, वह आपसे छिपा नहीं है। ईश्वर के लिए थोड़े-से रुपयों के वास्ते कई जनों का खून न कीजिए।

चचा साहब ने दृढ़ता से कहा—विमल बाबू, मुझे खेद है कि मैं इस विषय में और नहीं दब सकता।

विमल बाबू जरा तेज होकर बोले—आप मेरा गला घोंट रहे हैं!

चचा—आपको मेरा एहसान मानना चाहिए कि कितनी रिआयत कर रहा हूँ।

विमल—क्यों न हो, आप मेरा गला घोटें और मैं आपका एहसान मानूँ? मैं इतना उदार नहीं हूँ। अगर मुझे मालूम होता कि आप इतने लोभी हैं, तो आपसे दूर ही रहता। मैं आपको सज्जन समझता था। अब मालूम हुआ कि आप भी कौड़ियों के गुलाम हैं। जिसकी निगाह में मुरौवत नहीं, जिसकी बातों का कोई विश्वास नहीं, उसे मैं शरीफ नहीं कह सकता। आपको अख्तियार है, कृष्णा बाबू की शादी जहाँ चाहे करें; लेकिन आपको हाथ न मलना पड़े, तो कहिएगा। तारा का विवाह तो कहीं-न-कहीं हो ही जायगा, और ईश्वर ने चाहा तो किसी अच्छे ही घर में होगा। संसार में सज्जनों का अभाव नहीं है; मगर आपके हाथ अपयश के सिवा और कुछ न लगेगा।

चचा साहब ने त्यौरियाँ चढ़ाकर कहा—अगर आप मेरे घर में न होते, तो इस अपमान का कुछ जवाब देता।

विमल बाबू ने छड़ी उठा ली और कमरे से बाहर जाते हुए कहा—आप मुझे क्या जवाब देंगे ? आप जवाब देने के योग्य ही नहीं हैं।

उसी दिन शाम को जब मैं बैरक से आया और जलपान करके विमल बाबू के घर जाने लगा, तो चची ने कहा—कहाँ जाते हो ? विमल बाबू से और तुम्हारे चचाजी से आज एक झड़प हो गयी।

मैंने ठिठककर ताज्जुब के साथ कहा—झड़प हो गयी ! किस बात पर ?

चची ने सारा का सारा वृत्तान्त कह सुनाया और विमल को जितने काले रंगों में रँग सकीं, रँगा—तुमसे क्या कहूँ बेटा, ऐसा मुँहफट तो आदमी ही नहीं देखा। हजारों ही गालियाँ दीं, लड़ने पर आमादा हो गया।

मैंने एक मिनट तक सन्नाटे में खड़े रहकर कहा—अच्छी बात है, वहाँ न जाऊँगा। बैरक जा रहा हूँ। चची बहुत रोयीं-चिल्लायीं; पर मैं एक क्षण-भर भी न ठहरा। ऐसा जान पड़ता था, जैसे कोई मेरे हृदय में भाले भोंक रहा है। घर से बैरक तक पैदल जाने में शायद मुझे दस मिनट से ज्यादा न लगे होंगे। बार-बार जी झुँझलाता था; चचा साहब पर नहीं, विमल बाबू पर भी नहीं, केवल अपने ऊपर। क्यों मुझमें इतनी हिम्मत नहीं है कि जाकर चचा साहब से कह दूँ—कोई मुझे लाख रुपये भी दे, तो भी शादी न करूँगा। मैं क्यों इतना डरपोक, इतना तेजहीन, इतना दब्बू हो गया ?

इसी क्रोध में मैंने पिताजी को एक पत्र लिखा और वह सारा वृत्तान्त सुनाने के बाद अन्त में लिखा—मैंने निश्चय कर लिया है कि और कहीं शादी न करूँगा, चाहे मुझे आपकी अवज्ञा ही क्यों न करनी पड़े। उस आवेश में न-जाने क्या-क्या लिख गया, अब याद भी नहीं। इतना ही याद है कि दस-बारह पन्ने दस मिनट में लिख डाले थे। सम्भव होता तो मैं यही सारी बातें तार से भेजता।

तीन दिन मैंने बड़ी व्यग्रता के साथ काटे। उसका केवल अनुमान किया जा सकता है। सोचता, तारा हमें अपने मन में कितना नीच समझ रही होगी। कई बार जी में आया कि चलकर उसके पैरों पर गिर पड़ूँ और कहूँ—देवी, मेरा अपराध क्षमा करो। चचा साहब के कठोर व्यवहार की परवा न करो। मैं तुम्हारा

था और तुम्हारा हूँ। चचा साहब मुझसे बिगड़ जायँ, पिताजी घर से निकाल दें; मुझे किसी की परवा नहीं है; लेकिन तुम्हें खोकर मेरा जीवन ही खो जायगा।

तीसरे दिन पत्र का जवाब आया। रही-सही आशा भी टूट गयी। वही जवाब था जिसकी मुझे शंका थी। लिखा था—भाई साहब मेरे पूज्य हैं। उन्होंने जो निश्चय किया है, उसके विरुद्ध मैं एक शब्द भी मुँह से नहीं निकाल सकती और तुम्हारे लिए भी यही उचित है कि उन्हें नाराज न करो।

मैंने उस पत्र को फाड़कर पैरों से कुचल दिया, और उसी वक्त विमल बाबू के घर की तरफ चला। आह ! उस वक्त अगर कोई मेरा रास्ता रोक लेता, मुझे धमकाता कि उधर मत जाओ, तो मैं विमल बाबू के पास जाकर ही दम लेता और आज मेरा जीवन कुछ और ही होता; पर वहाँ मना करने वाला कौन बैठा था। कुछ दूर चल कर हिम्मत हार बैठा। लौट पड़ा। कह नहीं सकता, क्या सोचकर लौटा। चचा साहब की अप्रसन्नता का मुझे रत्ती-भर भी भय न था। उनकी अब मेरे दिल में जरा भी इज्जत न थी। मैं उनकी सारी सम्पत्ति को ठुकरा देने को तैयार था। पिताजी के नाराज हो जाने का भी डर न था। संकोच केवल यह था—कौन मुँह लेकर जाऊँ ! आखिर मैं उन्हीं चचा का भतीजा तो हूँ। विमल बाबू मुझसे मुखातिब न हुए या जाते-ही-जाते दुत्कार दिया, तो मेरे लिए डूब मरने के सिवा और क्या रह जायगा ? सबसे बड़ी शंका यह थी कि कहीं तारा ही मेरा तिरस्कार कर बैठे तो मेरी क्या गति होगी। हाय ! अहृदय तारा ! निष्ठुर तारा ! अबोध तारा ! अगर तूने उस वक्त दो शब्द लिख कर मुझे तसल्ली दे दी होती, तो आज मेरा जीवन कितना सुखमय होता। तेरे मौन ने मुझे मटियामेट कर दिया—सदा के लिए ! आह, सदा के लिए !

(३)

तीन दिन फिर मैंने अङ्गारों पर लोट-लोट कर काटे। ठान लिया था कि अब किसी से न मिलूँगा। सारा संसार मुझे अपना शत्रु-सा दीखता था। तारा पर भी क्रोध आता था। चचा साहब की तो सूरत से मुझे घृणा हो गयी थी; मगर तीसरे दिन शाम को चचाजी का रुक्का पहुँचा, मुझसे आकर मिल जाओ। जी में तो आया, लिख दूँ, मेरा आपसे कोई सम्बन्ध नहीं, आप समझ लीजिए, मैं मर गया। मगर फिर उनके स्नेह और उपकारों की याद आ गयी। खरी-

खरी सुनाने का भी अच्छा अवसर मिल रहा था। हृदय में युद्ध का नशा और जोश भरे हुए मैं चचाजी की सेवा में पहुँच गया।

चचाजी ने मुझे सिर से पैर तक देख कर कहा—क्या आजकल तुम्हारी तबीयत अच्छी नहीं है? आज रायसाहब सीताराम तशरीफ लाये थे। तुमसे कुछ बातें करना चाहते हैं। कल सबेरे मौका मिले, तो चले आना या तुम्हें लौटने की जल्दी न हो, तो मैं इसी वक्त बुला भेजूँ।

मैं समझ तो गया कि यह रायसाहब कौन हैं; लेकिन अनजान बन कर बोला—यह रायसाहब कौन हैं? मेरा तो उनसे परिचय नहीं है।

चचाजी ने लापरवाही से कहा—अजी, यह वही महाशय हैं, जो तुम्हारे ब्याह के लिए घेरे हुए हैं। शहर के रईस और कुलीन आदमी हैं। लड़की भी बहुत अच्छी है। कम-से-कम तारा से कई गुनी अच्छी। मैंने हाँ कर लिया है। तुम्हें भी जो बातें पूछनी हों, उनसे पूछ लो।

मैंने आवेश के उमड़ते हुए तूफान को रोक कर कहा—आपने नाहक हाँ की। मैं अपना विवाह नहीं करना चाहता।

चचाजी ने मेरी तरफ आँखें फाड़कर कहा—क्यों?

मैंने उसी निर्भीकता से जवाब दिया—इसीलिए कि मैं इस विषय में स्वाधीन रहना चाहता हूँ।

चचा साहब ने जरा नर्म होकर कहा—मैं अपनी बात दे चुका हूँ, क्या तुम्हें इसका कुछ ख्याल नहीं है?

मैंने उद्दण्डता से जवाब दिया—जो बात पैसों पर बिकती है, उसके लिए मैं अपनी जिन्दगी नहीं खराब कर सकता।

चचा साहब ने गम्भीर भाव से कहा—यह तुम्हारा आखिरी फैसला है?

'जी हाँ, आखिरी।'

'पछताना पड़ेगा।'

'आप इसकी चिन्ता न करें। आपको कष्ट देने न आऊँगा।'

'अच्छी बात है।'

यह कहकर वह उठे और अन्दर चले गये। मैं कमरे से निकला और बैरक की तरफ चला। सारी पृथ्वी चक्कर खा रही थी, आसमान नाच रहा था और

मेरी देह हवा में उड़ी जाती थी। मालूम होता था, पैरों के नीचे की जमीन है ही नहीं।

बैरक में पहुँचकर मैं पलंग पर लेट गया और फूट-फूट कर रोने लगा। माँ-बाप, चाचा-चाची, धन-दौलत, सब कुछ होते हुए भी मैं अनाथ था। उफ! कितना निर्दय आघात था!

(४)

सबेरे हमारे रेजिमेंट को देहरादून जाने का हुक्म हुआ। मुझे आँख-सी मिल गयीं। अब लखनऊ काटे खाता था। उसके गली-कूचों तक से घृणा हो गयी थी। एक बार जी में आया, चलकर तारा से मिल लूँ; मगर फिर वही शंका हुई—कहीं वह मुखातिब न हुई तो? विमल बाबू इस दशा में भी मुझसे उतना ही स्नेह दिखायेंगे, जितना अब तक दिखाते आये हैं, इसका मैं निश्चय न कर सका। पहले मैं एक धनी परिवार का दीपक था, अब एक अनाथ युवक, जिसे मजूरी के सिवा और कोई अवलम्ब नहीं था।

देहरादून में अगर कुछ दिन मैं शान्ति से रहता, तो सम्भव था, मेरा आहत हृदय सँभल जाता और मैं विमल बाबू को मना लेता; लेकिन वहाँ पहुँचे एक सप्ताह भी न हुआ था कि मुझे तारा का पत्र मिल गया। पते को देखकर मेरे हाथ काँपने लगे। समस्त देह में कंपन-सा होने लगा। शायद शेर को सामने देख कर मैं इतना भयभीत न होता। हिम्मत ही न पड़ती थी कि उसे खोलूँ। वही लिखावट थी, वही मोतियों की लड़ी, जिसे देख कर मेरे लोचन तृप्त-से हो जाते थे, जिसे चूमता था और हृदय से लगाता था, वही काले अक्षर आज नागिनों से भी ज्यादा डरावने मालूम होते थे। अनुमान कर रहा था कि उसने क्या लिखा होगा; पर अनुमान की दूर तक दौड़ भी पत्र के विषय तक न पहुँच सकी। आखिर, एक बार कलेजा मजबूत करके मैंने पत्र खोल डाला। देखते ही आँखों में अँधेरा छा गया। मालूम हुआ, किसी ने सीसा पिघला कर पिला दिया। तारा का विवाह तय हो गया था। शादी होने में कुल चौबीस घंटे बाकी थे। उसने मुझसे अपनी भूलों के लिए क्षमा माँगी थी और विनती की थी कि मुझे भुला मत देना। पत्र का अंतिम वाक्य पढ़कर मेरी आँखों से आँसुओं की झड़ी लग गयी। लिखा था—

यह अंतिम प्यार लो। अब आज से मेरे और तुम्हारे बीच में केवल मैत्री का नाता है। अगर कुछ और समझूँ तो वह अपने पति के साथ अन्याय होगा, जिसे शायद तुम सबसे ज्यादा नापसंद करोगे। बस इससे अधिक और न लिखूंगी। बहुत अच्छा हुआ कि तुम यहाँ से चले गये। तुम यहाँ रहते, तो तुम्हें भी दुःख होता और मुझे भी। मगर प्यारे! अपनी इस अभागिनी तारा को भूल न जाना। तुमसे यही अंतिम निवेदन है।

मैं पत्र को हाथ में लिये-लिये लेट गया। मालूम होता था, छाती फट जायगी! भगवान, अब क्या करूँ? जब तक मैं लखनऊ पहुंचूँगा, बरात द्वार पर आ चुकी होगी, यह निश्चय था। लेकिन तारा के अंतिम दर्शन करने की प्रबल इच्छा को मैं किसी तरह न रोक सकता था। वही अब जीवन की अंतिम लालसा थी।

मैंने जाकर कमांडिंग आफिसर से कहा—मुझे एक बड़े जरूरी काम से लखनऊ जाना है। तीन दिन की छुट्टी चाहता हूँ।

साहब ने कहा—अभी छुट्टी नहीं मिल सकती।

'मेरा जाना जरूरी है।'

'तुम नहीं जा सकते।'

'मैं किसी तरह नहीं रुक सकता।'

'तुम किसी तरह नहीं जा सकते।'

मैंने और अधिक आग्रह न किया। वहाँ से चला आया। रात की गाड़ी से लखनऊ जाने का निश्चय कर लिया। कोर्ट-मार्शल का अब मुझे जरा भी डर न था।

(५)

जब मैं लखनऊ पहुँचा, तो शाम हो गयी थी। कुछ देर तक मैं प्लेटफार्म से दूर खड़ा खूब अँधेरा हो जाने का इन्तजार करता रहा। तब अपनी किस्मत के नाटक का सबसे भीषण कांड देखने चला। बारात द्वार पर आ गयी थी। गैस की रोशनी हो रही थी। बाराती लोग जमा थे। हमारे मकान की छत तारा की छत से मिली हुई थी। रास्ता मरदाने कमरे की बगल से था। चचा साहब शायद कहीं सैर करने गये हुए थे। नौकर-चाकर सब बारात की बहार देख रहे

थे। मैं चुपके से जीने पर चढ़ा और छत पर जा पहुँचा। वहाँ इस वक्त बिलकुल सन्नाटा था। उसे देखकर मेरा दिल भर आया। हाय! यही वह स्थान है, जहाँ हमने प्रेम के आनन्द उठाये थे। यहीं मैं तारा के साथ बैठकर जिंदगी के मनसूबे बाँधता था! यही स्थान मेरी आशाओं का स्वर्ग और मेरे जीवन का तीर्थ था। इस जमीन का एक-एक अणु मेरे लिए मधुर स्मृतियों से पवित्र था। पर हाय! मेरे हृदय की भाँति आज वह भी ऊजड़, सुनसान अँधेरा था। मैं उसी जमीन से लिपटकर खूब रोया, यहाँ तक कि हिचकियाँ बँध गयीं। काश उस वक्त तारा वहाँ आ जाती, तो मैं उसके चरणों पर सिर रखकर हमेशा के लिए सो जाता! मुझे ऐसा भासित होता था कि तारा की पवित्र आत्मा मेरी दशा पर रो रही है। आज भी तारा यहाँ जरूर आयी होगी। शायद इसी जमीन पर लिपटकर वह भी रोयी होगी। उस भूमि से उसके सुगन्धित केशों की महक आ रही थी। मैंने जेब से रूमाल निकाला और वहाँ की धूल जमा करने लगा। एक क्षण में मैंने सारी छत साफ कर डाली और अपनी अभिलाषाओं की इस राख को हाथ में लिये घण्टों रोया। यही मेरे प्रेम का पुरस्कार है, यही मेरी उपासना का वरदान है, यही मेरे जीवन की विभूति है। हाय री दुराशा!

नीचे विवाह के संस्कार हो रहे थे। ठीक आधीरात के समय वधू मण्डप के नीचे आयी, अब भाँवरें होंगी। मैं छत के किनारे चला आया और वह मर्मान्तक दृश्य देखने लगा। बस, यही मालूम हो रहा था कि कोई हृदय के टुकड़े किये डालता है। आश्चर्य है, मेरी छाती क्यों न फट गयी, मेरी आँखें न निकल पड़ीं। वह मण्डप मेरे लिए एक चिता थी, जिसमें वह सब कुछ, जिस पर मेरे जीवन का आधार था, जला जा रहा था।

भाँवरें समाप्त हो गयीं तो मैं कोठे से उतरा। अब क्या बाकी था? चिता की राख भी जलमग्न हो चुकी थी। दिल को थामे, वेदना से तड़पता हुआ, जीने के द्वार तक आया; मगर द्वार बाहर से बन्द था। अब क्या हो? उलटे-पाँव लौटा। अब तारा के आँगन से होकर जाने के सिवा दूसरा रास्ता न था। मैंने सोचा, इस जमघट में मुझे कौन पहचानता है, निकल जाऊँगा। लेकिन ज्योंही आँगन में पहुँचा, तारा की माताजी की निगाह पड़ गयी। चौंककर बोलीं—कौन,

कृष्णा बाबू ? तुम कब आये ? आओ, मेरे कमरे में आओ। तुम्हारे चाचा साहब के भय से हमने तुम्हें न्यौता नहीं भेजा। तारा प्रातःकाल विदा हो जायगी। आओ, उससे मिल लो। दिन-भर से तुम्हारी रट लगा रही है।

यह कहते हुए उन्होंने मेरा बाजू पकड़ लिया और मुझे खींचते हुए अपने कमरे में ले गयीं। फिर पूछा—अपने घर से होते हुए आये हो न ?

मैंने कहा—मेरा घर यहाँ कहाँ है ?

'क्यों, तुम्हारे चाचा साहब नहीं हैं ?'

'हाँ, चचा साहब का घर है, मेरा घर अब कहीं नहीं है। बनने की कभी आशा थी, पर आप लोगों ने वह भी तोड़ दी।'

'हमारा इसमें क्या दोष था भैया ? लड़की का ब्याह तो कहीं-न-कहीं करना था। तुम्हारे चाचाजी ने तो हमें मँझधार में छोड़ दिया था। भगवान् ही ने उबारा। क्या अभी स्टेशन से चले आ रहे हो ? तब तो अभी कुछ खाया भी न होगा।'

'हाँ, थोड़ा-सा जहर लाकर दीजिए, यही मेरे लिए सबसे अच्छी दवा है।'

वृद्धा विस्मित होकर मेरा मुँह ताकने लगी। मुझे तारा से कितना प्रेम था, वह बेचारी क्या जानती थी ?

मैंने उसी विरक्ति के साथ फिर कहा—जब आप लोगों ने मुझे मार डालने ही का निश्चय कर लिया, तो अब देर क्यों करती हैं ? आप मेरे साथ यह दगा करेंगी, यह मैं न समझता था। खैर, जो हुआ, अच्छा ही हुआ। चचा और बाप की आँखों से गिरकर मैं शायद आपकी आँखों में भी न जँचता।

बुढ़िया ने मेरी तरफ शिकायत की नजरों से देखकर कहा—तुम हम लोगों को इतना स्वार्थी समझते हो, बेटा !

मैंने जले हुए हृदय से कहा—अब तक तो न समझता था लेकिन परिस्थिति ने ऐसा समझने को मजबूर किया। मेरे खून का प्यासा दुश्मन भी मेरे ऊपर इससे घातक बार न कर सकता। मेरा खून आप ही की गरदन पर होगा।

'तुम्हारे चाचाजी ने ही तो इन्कार कर दिया ?'

'आप लोगों ने मुझसे भी कुछ पूछा, मुझसे भी कुछ कहा, मुझे भी कुछ कहने का अवसर दिया ? आपने तो ऐसी निगाहें फेरीं जैसे आप दिल से यही चाहती थीं। मगर अब आपसे शिकायत क्यों करूँ ? तारा खुश रहे, मेरे लिए यही बहुत है।'

'तो बेटा तुमने भी तो कुछ नहीं लिखा; अगर तुम एक पुरजा भी लिख देते, तो हमें तस्कीन हो जाती। हमें क्या मालूम था कि तुम तारा को इतना प्यार करते हो। हमसे जरूर भूल हुई; मगर उससे बड़ी भूल तुमसे हुई। अब मुझे मालूम हुआ कि तारा क्यों बराबर डाकिये को पूछती रहती थी। अभी कल वह दिन-भर डाकिये की राह देखती रही। जब तुम्हारा कोई खत नहीं आया, तब वह निराश हो गयी। बुला दूँ उसे ? मिलना चाहते हो ?'

मैंने चारपाई से उठ कर कहा—नहीं नहीं, उसे मत बुलाइए। मैं अब उसे नहीं देख सकता। उसे देख कर मैं न-जाने क्या कर बैठूँ।

यह कहता हुआ मैं चल पड़ा। तारा की माँ ने कई बार पुकारा पर मैंने पीछे फिर कर भी न देखा।

यह है मुझ निराश की कहानी। इसे आज दस साल गुजर गये। इन दस सालों में मेरे ऊपर जो कुछ बीती, उसे मैं ही जानता हूँ। कई-कई दिन मुझे निराहार रहना पड़ा है। फौज से तो उसके तीसरे ही दिन निकाल दिया गया था। अब मारे-मारे फिरने के सिवा मुझे कोई काम नहीं। पहले तो काम मिलता ही नहीं, और अगर मिल भी गया, तो मैं टिकता नहीं। जिन्दगी पहाड़ हो गयी है। किसी बात की रुचि नहीं रही। आदमी की सूरत से दूर भागता हूँ।

तारा प्रसन्न है। तीन-चार साल हुए, एक बार मैं उसके घर गया था। उसके स्वामी ने बहुत आग्रह करके बुलाया था। बहुत कसमें दिलायीं। मजबूर होकर गया। वह कली अब खिलकर फूल हो गयी है। तारा मेरे सामने आयी। उसका पति भी बैठा हुआ था। मैं उसकी तरफ ताक न सका। उसने मेरे पैर खींच लिये। मेरे मुँह से एक शब्द भी न निकला। अगर तारा दुखी होती, कष्ट में होती, फटे-हालों होती, तो मैं उस पर बलि हो जाता; पर सम्पन्न, सरस, विकसित तारा मेरी संवेदना के योग्य न थी। मैं इस कुटिल विचार को न रोक सका—कितनी निष्ठुरता ! कितनी बेवफाई !

शाम को मैं उदास बैठा वहाँ जाने पर पछता रहा था कि तारा का पति आकर मेरे पास बैठ गया और मुसकराकर बोला—बाबूजी, मुझे यह सुनकर

खेद हुआ कि तारा से मेरे विवाह हो जाने का आपको बड़ा सदमा हुआ। तारा-जैसी रमणी शायद देवताओं को भी स्वार्थी बना देती; लेकिन मैं आपसे सच कहता हूँ, अगर मैं जानता कि आपको उससे इतना प्रेम है, तो मैं हरगिज आपकी राह का काँटा न बनता। शोक यही है कि मुझे बहुत पीछे मालूम हुआ। तारा मुझसे आपकी प्रेम-कथा कह चुकी है।

मैंने मुसकराकर कहा—तब तो आपको मेरी सूरत से भी घृणा होगी।

उसने जोश से कहा—इसके प्रतिकूल मैं आपका आभारी हूँ। प्रेम का ऐसा पवित्र, ऐसा उज्ज्वल आदर्श आपने उसके सामने रखा। वह आपको अब भी उसी मुहब्बत से याद करती है। शायद कोई दिन ऐसा नहीं जाता कि आपका जिक्र न करती हो। आपके प्रेम को वह अपनी जिन्दगी की सबसे प्यारी चीज समझती है। आप शायद समझते हों कि उन दिनों को याद करके उसे दुःख होता होगा। बिलकुल नहीं, वही उसके जीवन की सबसे मधुर स्मृतियाँ हैं। वह कहती है, मैंने अपने कृष्णा को तुममें पाया है।

मेरे लिए इतना ही काफी है।

———

उन्माद

मनहर ने अनुरक्त होकर कहा—यह सब तुम्हारी कुर्बानियों का फल है वागी। नहीं तो आज मैं भी किसी अँधेरी गली में, किसी अँधेरे मकान के अन्दर अँधेरी जिन्दगी के दिन काटता होता। तुम्हारी सेवा और उपकार हमेशा याद रहेंगे। तुमने मेरा जीवन सुधार दिया—मुझे आदमी बना दिया।

वागेश्वरी ने सिर झुकाये हुए नम्रता से उत्तर दिया—यह तुम्हारी सज्जनता है मानू, मैं बेचारी भला तुम्हारी जिन्दगी क्या सुधारूँगी? हाँ, तुम्हारे साथ मैं भी एक दिन आदमी बन जाऊँगी। तुमने परिश्रम किया, उसका पुरस्कार पाया। जो अपनी मदद आप करते हैं, उनकी मदद परमात्मा भी करते हैं; अगर मुझ-जैसी गँवारिन किसी और के पाले पड़ती, तो अब तक न-जाने-क्या गत बनी होती।

मनहर मानो इस बहस में अपना पक्ष-समर्थन करने के लिए कमर बाँधता हुआ बोला—तुम-जैसी गँवारिन पर मैं एक लाख सजी हुई गुड़ियों और रंगीन तितलियों को न्योछावर कर सकता हूँ। तुमने मेहनत करने का वह अवसर और अवकाश दिया, जिनके बिना कोई सफल हो ही नहीं सकता। अगर तुमने अपनी अन्य विलास-प्रिय, रंगीन-मिजाज बहनों की तरह मुझे अपने तकाज़ों से दबा रखा होता, तो मुझे उन्नति करने का अवसर कहाँ मिलता? तुमने मुझे वह निश्चिन्तता प्रदान की, जो स्कूल के दिनों में भी न मिली थी। अपने और सहकारियों को देखता हूँ, तो मुझे उन पर दया आती है। किसी का खर्च पूरा नहीं पड़ता। आधा महीना भी नहीं जाने पाता और हाथ खाली हो जाता है। कोई दोस्तों से उधार माँगता है, कोई घर वालों को खत लिखता है। कोई गहनों की फिक्र में मरा जाता है, कोई कपड़ों की। कभी नौकर की टोह में हैरान, कभी वैद्य की टोह में परेशान। किसी को शांति नहीं। आये दिन स्त्री-पुरुष में जूते चलते रहते हैं। अपना-जैसा भाग्यवान् तो मुझे कोई दीख नहीं पड़ता। मुझे घर के सारे आनन्द प्राप्त हैं और जिम्मेदारी एक भी नहीं। तुमने ही मेरे हौसलों को उभारा, मुझे उत्तेजना दी। जब कभी मेरा उत्साह टूटने

लगता था, तो तुम मुझे तसल्ली देती थीं। मुझे मालूम ही नहीं हुआ कि तुम घर का प्रबन्ध कैसे करती हो। तुमने मोटे-से-मोटा काम अपने हाथों से किया, जिसमें मुझे पुस्तकों के लिए रुपये की कमी न हो। तुम्हीं मेरी देवी हो और तुम्हारी बदौलत ही आज मुझे यह सौभाग्य प्राप्त हुआ है। मैं तुम्हारी इन सेवाओं की स्मृति को हृदय में सुरक्षित रखूँगा वागी, और एक दिन वह आयेगा, जब तुम अपने त्याग और तप का आनन्द उठाओगी।

वागेश्वरी ने गद्गद होकर कहा—तुम्हारे ये शब्द मेरे लिए सबसे बड़े पुरस्कार हैं, मानू! मैं और किसी पुरस्कार की भूखी नहीं। मैंने जो कुछ तुम्हारी थोड़ी-बहुत सेवा की, उसका इतना यश मुझे मिलेगा, मुझे तो आशा भी न थी।

मनहरनाथ का हृदय इस समय उदार भावों से उमड़ा हुआ था। वह यों बहुत ही अल्पभाषी, कुछ रूखा आदमी था और शायद वागेश्वरी के मन में उसकी शुष्कता पर दुख भी हुआ हो; पर इस समय सफलता के नशे ने उसकी वाणी में पर-से लगा दिये थे। बोला—जिस समय मेरे विवाह की बात-चीत हो रही थी, मैं बहुत शंकित था। समझ गया कि मुझे जो कुछ होना था, हो चुका। अब सारी उम्र देवीजी की नाजबरदारी में गुजरेगी। बड़े-बड़े अङ्गरेज विद्वानों की पुस्तकें पढ़ने से मुझे भी विवाह से घृणा हो गयी थी। मैं इसे उम्र कैद समझने लगा था, जो आत्मा और बुद्धि का उन्नति का द्वार बन्द कर देती है, जो मनुष्य को स्वार्थ का भक्त बना देती है, जो जीवन के क्षेत्र को संकीर्ण कर देती है। मगर दो ही चार मास के बाद मुझे अपनी भूल मालूम हुई। मुझे मालूम हुआ कि सुभार्या स्वर्ग की सबसे बड़ी विभूति है, जो मनुष्य को उज्ज्वल और पूर्ण बना देती है, जो आत्मोन्नति का मूल-मन्त्र है। मुझे मालूम हुआ कि विवाह का उद्देश्य भोग नहीं, आत्मा का विकास है।

वागेश्वरी की नम्रता और सहन न कर सकी। वह किसी बात के बहाने से उठ कर चली गयी।

मनहर और वागेश्वरी का विवाह हुए तीन साल गुजरे थे। मनहर उस समय एक दफ़्तर में क्लर्क था। सामान्य युवकों की भाँति उसे भी जासूसी उपन्यासों से बहुत प्रेम था। धीरे-धीरे उसे जासूसी का शौक हुआ। इस विषय पर उसने

बहुत-सा साहित्य जमा किया और बड़े मनोयोग से उनका अध्ययन किया। इसके बाद उसने इस विषय पर स्वयं एक किताब लिखी। इस रचना में उसने ऐसी विलक्षण विवेचन-शक्ति का परिचय दिया, उसकी शैली भी इतनी रोचक थी, कि जनता ने उसे हाथों-हाथ लिया। इस विषय पर वह सर्वोत्तम ग्रंथ था।

देश में धूम मच गयी। यहाँ तक कि इटली और जर्मनी-जैसे देशों से उसके पास प्रशंसा-पत्र आये, और इस विषय की पत्रिकाओं में अच्छी-अच्छी आलोचनाएँ निकलीं। अन्त में सरकार ने भी अपनी गुणग्राहकता का परिचय दिया—उसे इँगलैंड जाकर इस कला का अभ्यास करने के लिए वृत्ति प्रदान की। और यह सब कुछ वागेश्वरी की सत्प्रेरणा का शुभ-फल था।

मनहर की इच्छा थी कि वागेश्वरी भी साथ चले; पर वागेश्वरी उनके पाँव की बेड़ी न बना चाहती थी। उसने घर रह कर सास-ससुर की सेवा करना ही उचित समझा।

मनहर के लिए इँगलैंड एक दूसरी ही दुनिया थी, जहाँ उन्नति के मुख्य साधनों में एक रूपवती पत्नी का होना भी था। अगर पत्नी रूपवती है, चपल है, चतुर है, वाणी-कुशल है, प्रगल्भ है तो समझ लो कि उसके पति को सोने की खान मिल गयी, अब वह उन्नति के शिखर पर पहुँच सकता है। मनोयोग और तपस्या के बूते पर नहीं, पत्नी के प्रभाव और आकर्षण के बूते पर। उस संसार में रूप और लावण्य-व्रत के बंधनों से मुक्त, एक अबाध सम्पत्ति थी। जिसने किसी रमणी को प्राप्त कर लिया, उसकी मानो तकदीर खुल गयी। यदि कोई सुन्दरी तुम्हारी सहधर्मिणी नहीं है, तो तुम्हारा सारा उद्योग, सारी कार्यपटुता निष्फल है। कोई तुम्हारा पुरसाँहाल न होगा; अतएव वहाँ लोग रूप को व्यापारिक दृष्टि से देखते थे।

साल ही भरके अँग्रेजी समाज के संसर्ग ने मनहर की मनोवृत्तियों में क्रान्ति पैदा कर दी। उसके मिजाज में सांसारिकता का इतना प्राधान्य हो गया कि कोमल भावों के लिए वहाँ कोई स्थान ही न रहा। वागेश्वरी उसके विद्याभ्यास में सहायक हो सकती थी; पर उसे अधिकार और पद की ऊँचाइयों पर न पहुँचा सकती थी। उसके त्याग और सेवा का महत्व भी अब मनहर की निगाहों में कम होता जाता था। वागेश्वरी अब उसे एक व्यर्थ सी वस्तु मालूम होती

थी, क्योंकि उसकी भौतिक दृष्टि से हर एक वस्तु का मूल्य उससे होने वाले लाभ पर ही अवलंबित था। अपना पूर्व-जीवन अब उसे हास्यप्रद जान पड़ता था। चंचल, हँसमुख, विनोदिनी अंग्रेज-युवतियों के सामने वागेश्वरी एक हलकी, तुच्छ-सी वस्तु जान पड़ती—इस विद्युत्-प्रकाश में वह दीपक अब मलिन पड़ गया था। यहाँ तक कि शनैः-शनैः उसका वह मलिन प्रकाश भी लुप्त हो गया।

मनहर ने अपने भविष्य का निश्चय कर लिया। वह भी एक रमणी की रूपनौका द्वारा ही अपने लक्ष्य पर पहुँचेगा। इसके सिवा और कोई उपाय न था।

(२)

रात के नौ बजे थे। मनहर लंदन के एक फैशनेबुल रेस्ट्राँ में बना-ठना बैठा था। उसका रंग-रूप और ठाट-बाट देखकर सहसा यह कोई नहीं कह सकता था कि वह अंग्रेज नहीं है। लंदन में भी उसके सौभाग्य ने उसका साथ दिया था। उसने चोरी के कई गहरे मुआमलों का पता लगा दिया था, इसलिए उसे धन और यश दोनों ही मिल रहा था। वह अब वहाँ के भारतीय समाज का एक प्रमुख अंग बन गया था, जिसके आतिथ्य और सौजन्य की सभी सराहना करते थे। उसका लबोलहजा भी अंग्रेजों से मिलता-जुलता था। उसके सामने मेज की दूसरी ओर एक रमणी बैठी हुई उनकी बातें बड़े ध्यान से सुन रही थी। उसके अंग-अंग से यौवन टपका पड़ता था। भारत के अद्भुत वृत्तांत सुन सुन कर उसकी आँखें खुशी से चमक रही थीं। मनहर चिड़िया के सामने दाने बिखेर रहा था।

मनहर—विचित्र देश है जेनी, अत्यन्त विचित्र। पाँच-पाँच साल के दूल्हे तुम्हें भारत के सिवा और कहीं देखने को न मिलेंगे। लाल रंग के कामदार कपड़े, सिर पर चमकता हुआ लम्बा टोप, चेहरे पर फूलों का झालदार बुर्का, घोड़े पर सवार चले जा रहे हैं। दो आदमी दोनों तरफ से छतरियाँ लगाये हुए हैं। हाथों में मेंहदी लगी हुई।

जेनी—मेंहदी क्यों लगाते हैं?

मनहर—जिसमें हाथ लाल हो जायँ। पैरों में भी रंग भरा जाता है। उँगलियों के नाखून लाल रँग दिये जाते हैं। वह दृश्य देखते ही बनता है।

जेनी—यह तो दिल में सनसनी पैदा करने वाला दृश्य होगा। दुलहिन भी इसी तरह सजायी जाती होगी?

मनहर—इससे कई गुनी अधिक। सिर से पाँव तक सोने-चाँदी के जेवरों से लदी हुई। ऐसा कोई अंग नहीं जिसमें दो-दो, चार-चार गहने न हों।

जेनी—तुम्हारी शादी भी उसी तरह हुई होगी। तुम्हें तो बड़ा आनन्द आया होगा?

मनहर—हाँ, वही आनन्द आया था, जो तुम्हें मेरी-गो-राउण्ड पर चढ़ने में आता है। अच्छी-अच्छी चीजें खाने को मिलती हैं, अच्छे-अच्छे कपड़े पहनने को मिलते हैं। खूब नाच-तमाशे देखता था और शहनाइयों का गाना सुनता था। मजा तो जब आता है, जब दुलहिन अपने घर से विदा होती है। सारे घर में कुहराम मच जाता है। दुलहिन हरएक से लिपट-लिपटकर रोती है; जैसे मातम कर रही हो।

जेनी—दुलहिन रोती क्यों है?

मनहर—रोने का रिवाज चला आता है। हालाँकि सभी जानते हैं कि वह हमेशा के लिये नहीं चली जा रही है, फिर भी सारा घर इस तरह फूट-फूटकर रोता है, मानो वह कालेपानी भेजी जा रही हो।

जेनी—मैं तो इस तमाशे पर खूब हँसूँ।

मनहर—हँसने की बात ही है।

जेनी—तुम्हारी बीबी भी रोयी होगी?

मनहर—अजी, कुछ न पूछो, पछाड़ें खा रही थी, मानो मैं उसका गला घोट दूँगा। मेरी पालकी से निकल कर भागी जाती थी; पर मैंने जोर से पकड़ कर अपनी बगल में बैठा लिया। तब मुझे दाँत काटने दौड़ी।

मिस जेनी ने जोर से कहकहा मारा और मारे हँसी के लोट गयीं। बोलीं—हॉरिबिल! हॉरिबिल! क्या अब भी दाँत काटती है?

मनहर—वह अब इस संसार में नहीं है, जेनी! मैं उससे खूब काम लेता था। मैं सोता था, तो वह मेरे बदन में चम्पी लगाती थी, मेरे सिर में तेल डालती थी, पंखा झलती थी।

जेनी—मुझे तो विश्वास नहीं आता। बिलकुल मूर्ख थी।

मनहर—कुछ न पूछो। दिन को किसी के सामने मुझसे बोलती भी न थी; मगर मैं उसका पीछा करता रहता था।

जेनी—ओ! नाटी वॉय! तुम बड़े शरीर हो। थीं तो रूपवती?

मनहर—हाँ, उसका मुँह तुम्हारे तलवों जैसा था।

जेनी—नॉनसेंस! तुम ऐसी औरत के पीछे कभी न दौड़ते।

मनहर—उस वक्त मैं भी मूर्ख था, जेनी।

जेनी—ऐसी मूर्ख लड़की से तुमने विवाह क्यों किया?

मनहर—विवाह न करता, तो माँ-बाप जहर खा लेते।

जेनी—वह तुम्हें प्यार कैसे करने लगी?

मनहर—और करती क्या? मेरे सिवा दूसरा था ही कौन? घर से बाहर न निकलने पाती थी; मगर प्यार हममें से किसी को न था। वह मेरी आत्मा और हृदय को सन्तुष्ट न कर सकती थी, जेनी! मुझे उन दिनों की याद आती है, तो ऐसा मालूम होता है कि कोई भयंकर स्वप्न था। उफ़! अगर वह स्त्री आज जीवित होती, तो मैं किसी अँधेरे दफ्तर में बैठा कलम घिसता होता। इस देश में आकर मुझे यथार्थ ज्ञान हुआ कि संसार में स्त्री का क्या स्थान है, उसका क्या दायित्व है, और जीवन उसके कारण कितना आनन्द-प्रद हो जाता है। और जिस दिन तुम्हारे दर्शन हुए, वह तो मेरी जिन्दगी का सबसे मुबारक दिन था। याद है तुम्हें वह दिन? तुम्हारी वह सूरत मेरी आँखों में अब भी फिर रही है।

जेनी—अब मैं चली जाऊँगी। तुम मेरी खुशामद करने लगे।

(२)

भारत के मजदूरदल-सचिव थे लार्ड बारबर, और उनके प्राइवेट सेक्रेटरी थे मि० कावर्ड। लार्ड बारबर भारत के सच्चे मित्र समझे जाते थे। जब कंजर-वेटिव और लिबरल दलों का अधिकार था, तो लार्ड बारबर भारत की बड़े जोरों से वकालत करते थे? वह उन मन्त्रियों पर ऐसे-ऐसे कटाक्ष करते कि उन बेचारों को कोई जवाब न सूझता। एक बार वह हिन्दुस्तान आये थे और यहाँ काँग्रेस में शरीक भी हुए थे। उस समय उनकी उदार वक्तृताओं ने समस्त देश में आशा और उत्साह की एक लहर दौड़ा दी थी। काँग्रेस के

जलसे के बाद वह जिस शहर में गये, जनता ने उनके रास्ते में आँखें बिछायीं, उनकी गाड़ियाँ खींचीं, उनपर फूल बरसाये। चारों ओर से यही आवाज आती थी—यह है भारत का उद्धार करनेवाला। लोगों को विश्वास हो गया कि भारत के सौभाग्य से अगर कभी लार्ड बराबर को अधिकार प्राप्त हुआ, तो वह दिन भारत के इतिहास में मुबारक होगा।

लेकिन अधिकार पाते ही लार्ड बराबर में एक विचित्र परिवर्तन हो गया। उनके सारे सद्भाव, उनकी उदारता, न्यायपरायणता, सहानुभूति ये सभी अधिकार के भँवर में पड़ गये। और अब लार्ड बराबर और उनके पूर्वाधिकार के व्यवहार में लेशमात्र भी अन्तर न था। वह भी वही कर रहे थे, जो उनके पहले के लोग कर चुके थे। वही दमन था, वही जातिगत अभिमान, वही कट्टरता, वही संकीर्णता। देवता अधिकार के सिंहासन पर पाँव रखते ही अपना देवत्व खो बैठा था। अपने दो साल के अधिकार-काल में उन्होंने सैकड़ों ही अफसर नियुक्त किये थे; पर उनमें एक भी हिन्दुस्तानी न था। भारतवासी निराश हो-होकर उन्हें 'डाइहार्ड' 'धन का उपासक' और 'साम्राज्यवाद का पुजारी' कहने लगे थे। यह खुला हुआ रहस्य था कि जो कुछ करते थे, मि० कावर्ड करते थे। हक यह था कि लार्ड बराबर नीयत के इतने शेर थे, जितने दिल के कमजोर। हालाँकि परिणाम दोनों दशाओं में एक-सा था।

यह मि० कावर्ड एक ही महापुरुष थे। उनकी उम्र चालीस से अधिक गुजर चुकी थी; पर अभी तक उन्होंने विवाह न किया था। शायद उनका खयाल था कि राजनीति के क्षेत्र में रहकर वैवाहिक जीवन का आनन्द नहीं उठा सकते। वास्तव में वह नवीनता के मधुप थे। उन्हें नित्य नये विनोद और आकर्षण, नित्य नये विलास और उल्लास की टोह रहती थी। दूसरों के लगाये हुए बाग की सैर करके चित्त को प्रसन्न कर लेना इससे कहीं सरल था कि अपना बाग आप लगायें और उसकी रक्षा और सजावट में अपना सिर खपायें। उनकी व्यावहारिक और व्यापारिक दृष्टि में यह लटका उससे कहीं आसान था।

दोपहर का समय था। मि० कावर्ड नाश्ता करके सिगार पी रहे थे कि मिस जेनी रोज के आने की खबर हुई। उन्होंने तुरन्त आईने के सानने खड़े होकर अपनी सूरत देखी, बिखरे हुए बालों को सँवारा, बहुमूल्य इत्र मला

और मुख से स्वागत की साहस छवि दरशाते हुए कमरे से निकलकर मिस रोज से हाथ मिलाया।

जेनी ने कमरे में कदम रखते ही कहा—अब मैं समझ गयी कि क्यों कोई सुन्दरी तुम्हारी बात नहीं पूछती। आप अपने वादों को पूरा करना नहीं जानते।

मि० कावर्ड ने जेनी के लिए एक कुर्सी खींचते हुए कहा—मुझे बहुत खेद है मिस रोज, कि मैं कल अपना वादा पूरा न कर सका। प्राइवेट सेक्रेटरियों का जीवन कुत्तों के जीवन से भी हेय है। बार-बार चाहता था कि दफ़्तर से उठूँ; पर एक-न-एक कॉल ऐसा आ जाता था कि फिर रुक जाना पड़ता था। मैं तुमसे क्षमा माँगता हूँ। बॉल में तुम्हें खूब आनन्द आया होगा?

जेनी—मैं तुम्हें तलाश करती रही। जब तुम न मिले, तो मेरा जी खट्टा हो गया। मैं और किसी के साथ नहीं नाची। अगर तुम्हें नहीं जाना था, तो मुझे निमन्त्रण-पत्र क्यों दिलाया था?

कावर्ड ने जेनी को सिगार भेंट करते हुए कहा—तुम मुझे लज्जित कर रही हो, जेनी! मेरे लिए इससे ज्यादा खुशी की और क्या बात हो सकती थी कि तुम्हारे साथ नाचता? एक पुराना बैचेलर होने पर भी मैं उस आनन्द की कल्पना कर सकता हूँ। बस, यही समझ लो कि तड़प-तड़प कर रह जाता था।

जेनी ने कठोर मुसकान के साथ कहा—तुम इसी योग्य हो कि बैचेलर बने रहो। यही तुम्हारी सजा है।

कावर्ड ने अनुरक्त होकर उत्तर दिया—तुम बड़ी कठोर हो, जेनी! तुम्हीं क्या, रमणियाँ सभी कठोर होती हैं। मैं कितनी ही परवशता दिखाऊँ, तुम्हें विश्वास न आयेगा। मुझे यह अरमान ही रह गया कि कोई सुन्दरी मेरे अनुराग और लगन का आदर करती।

जेनी—तुममें अनुराग हो भी तो? रमणियाँ ऐसे बहानेबाजों को मुँह नहीं लगातीं।

कावर्ड—फिर बहानेबाज कहा। मजबूर क्यों नहीं कहतीं?

जेनी—मैं किसी की मजबूरी को नहीं मानती। मेरे लिए यह हर्ष और गौरव की बात नहीं हो सकती, कि आपको जब अपने सरकारी, अर्द्ध-सरकारी और गैर-सरकारी कामों से अवकाश मिले, तो आप मेरा मन रखने को एक

क्षण के लिए अपने कोमल चरणों को कष्ट दें। मैं दफ़्तर और काम के हीले नहीं सुनना चाहती। इसी कारण तुम अब तक झींख रहे हो।

कावर्ड ने गम्भीर भाव से कहा—तुम मेरे साथ अन्याय कर रही हो, जेनी! मेरे अविवाहित रहने का क्या कारण है, यह कल तक मुझे खुद न मालूम था। कल आप-ही-आप मालूम हो गया।

जेनी ने उसका परिहास करते हुए कहा—अच्छा! तो यह रहस्य आपको मालूम हो गया? तब तो आप सचमुच आत्मदर्शी हैं। जरा मैं भी सुनूँ, क्या कारण था?

कावर्ड ने उत्साह के साथ कहा—अब तक कोई ऐसी सुन्दरी न मिली थी, जो मुझे उन्मत्त कर सकती।

जेनी ने कठोर परिहास के साथ कहा—मेरा खयाल था कि दुनिया में ऐसी औरत पैदा ही नहीं हुई, जो तुम्हें उन्मत्त कर सकती? तुम उन्मत्त बनाना चाहते हो, उन्मत्त बनना नहीं चाहते।

कावर्ड—तुम बड़ा अत्याचार करती हो, जेनी!

जेनी—अपने उन्माद का प्रमाण देना चाहते हो?

कावर्ड—हृदय से, जेनी! मैं उस अवसर की ताक में बैठा हूँ।

उसी दिन शाम को जेनी ने मनहर से कहा—तुम्हारे सौभाग्य पर बधाई! तुम्हें वह जगह मिल गयी।

मनहर उछलकर बोला—सच! सेक्रेटरी से कोई बातचीत हुई थी?

जेनी—सेक्रेटरी से कुछ कहने की जरूरत ही न पड़ी। सब कुछ कावर्ड के हाथ में है। मैंने उसी को चंग पर चढ़ाया। लगा मुझे इश्क जताने। पचास साल की तो उम्र है, चाँद के बाल झड़ गये हैं, गालों पर झुर्रियाँ पड़ गयी हैं; पर अभी तक आपको इश्क का खब्त है। आप अपने को एक ही रसिया समझते हैं। उसके बूढ़े चोचले बहुत बुरे मालूम होते थे; मगर तुम्हारे लिए सब कुछ सहना पड़ा। खैर, मेहनत सफल हो गयी है। कल तुम्हें परवाना मिल जायगा। अब सफर की तैयारी करनी चाहिए।

मनहर ने गद्गद होकर कहा—तुमने मुझपर बड़ा एहसान किया है, जेनी!

(३)

मनहर को गुप्तचर-विभाग में ऊँचा पद मिला देश के राष्ट्रीय पत्रों ने उसकी तारीफों के पुल बाँधे, उसकी तसवीर छापी और राष्ट्र की ओर से उसे बधाई दी। वह पहला भारतीय था, जिसे यह ऊँचा पद प्रदान किया गया था। ब्रिटिश सरकार ने सिद्ध कर दिया था कि उसकी न्याय-बुद्धि जातीय अभिमान और द्वेष से उच्चतर है।

मनहर और जेनी का विवाह इङ्गलैण्ड में ही हो गया। हनीमून का महीना फ्रांस में गुजरा। वहाँ से दोनों हिन्दुस्तान आये। मनहर का दफ्तर बम्बई में था। वहीं दोनों एक होटल में रहने लगे। मनहर को गुप्त अभियोग की खोज के लिए अक्सर दौरे करने पड़ते थे। कभी काश्मीर, कभी मद्रास, कभी रंगून। जेनी इन यात्राओं में बराबर उसके साथ रहती। नित्य नये दृश्य थे, नये विनोद, नये उल्लास। उसकी नवीनता-प्रिय प्रकृति के लिए आनन्द का इससे अच्छा और क्या सामान हो सकता था?

मनहर का रहन-सहन तो अंग्रेजी था ही, घरवालों से भी सम्बन्ध-विच्छेद हो गया था। वागेश्वरी के पत्रों का उत्तर देना तो दूर रहा, उन्हें खोलकर पढ़ता भी न था। भारत में उसे हमेशा यह शंका बनी रहती थी कि कहीं घरवालों को उसका पता न चल जाय। जेनी से वह अपनी यथार्थ स्थिति को छिपाये रखना चाहता था। उसके घरवालों को अपने आने की सूचना तक न दी। यहाँ तक कि वह हिन्दुस्तानियों से बहुत कम मिलता था। उसके मित्र अधिकांश पुलिस और फौज के अफसर थे। वही उसके मेहमान होते। वाक्चतुर जनी सम्मोहकला में सिद्धहस्त थी। पुरुषों के प्रेम से खेलना उसकी सबसे आमोदमय क्रीड़ा थी। जलाती भी थी, रिझाती भी थी, और मनहर भी उसकी कपट-लीला का शिकार बनता रहता था। उसे वह हमेशा भूल-भुलैया में रखती, कभी इतना निकट कि छाती पर सवार कभी इतनी दूर की योजनों का अन्तर—कभी निष्ठुर और कठोर, कभी प्रेम-विह्वल और व्यग्र। एक रहस्य था, जिसे वह कभी समझता था और कभी हैरान रह जाता था!

इस तरह दो वर्ष बीत गये और मनहर तथा जेनी कोण की दो भुजाओं की भाँति एक दूसरे से दूर होते गये। मनहर इस भावना को हृदय से न निकाल

सकता था कि जेनी का मेरे प्रति एक विशेष कर्तव्य है। यह चाहे उसकी संकीर्णता हो, या कुल-मर्यादा का असर कि वह जेनी को पाबन्द देखना चाहता था। उसकी स्वच्छन्द वृत्ति उसे लज्जास्पद मालूम होती थी। वह भूल जाता था कि जेनी के उसके संपर्क का आरम्भ ही स्वार्थ पर अवलंबित था। शायद उसने समझा था कि समय के साथ जेनी को अपने कर्तव्य का ज्ञान हो जायगा, हालाँ कि उसे मालूम होना चाहिए था कि टेढ़ी बुनियाद पर बना हुआ भवन जल्द या देर में अवश्य भूमिस्थ होकर रहेगा। और ऊँचाई के साथ इसकी शंका और भी बढ़ती जाती थी। इसके विपरीत जेनी का व्यवहार बिलकुल परिस्थिति के अनुकूल था। उसने मनहर को विनोदमय तथा विलासमय जीवन का एक साधन समझा था और उसी विचार पर वह अब तक स्थिर थी। इस व्यक्ति को वह मन में पति का स्थान न दे सकती थी, पाषाण-प्रतिमा को अपना देवता न बना सकती थी? पत्नी बनना उसके जीवन का स्वप्न न था; इसलिए वह मनहर के प्रति अपने किसी कर्तव्य को स्वीकार न करती थी। अगर मनहर अपनी गाढ़ी कमाई उसके चरणों पर अर्पित करता था, तो उस पर कोई एहसान न करता था। मनहर उसका बनाया हुआ पुतला, उसी का लगाया हुआ वृक्ष था। उसकी छाया और फल को भोग करना वह अपना अधिकार समझती थी।

(४)

मनोमालिन्य बढ़ता गया। आखिर मनहर ने उसके साथ दावतों और जलसों में जाना छोड़ दिया; पर जेनी पूर्ववत् सैर करने जाती, मित्रों से मिलती, दावतें करती और दावतों में शरीक होती। मनहर के साथ न जाने से लेशमात्र भी दुःख या निराशा न होती थी; बल्कि वह शायद उसकी उदासीनता पर और भी प्रसन्न होती। मनहर इस मानसिक व्यथा को शराब के नशे में डुबाने का उद्योग करता। पीना तो उसने इंगलैण्ड ही में शुरू कर दिया था, पर अब उसकी मात्रा बहुत बढ़ गयी थी। वहाँ स्फूर्ति और आनन्द के लिए पीता था, यहाँ स्फूर्ति और आनन्द को मिटाने के लिए। वह दिन-दिन दुर्बल होता जाता था। वह जानता था, शराब मुझे पिये जा रही है; पर उसके जीवन का यही एक अवलम्ब रह गया था।

गर्मियों के दिन थे। मनहर एक मुआमले की जाँच करने के लिए लखनऊ में डेरा डाले हुए था। मुआमला बहुत संगीन था। उसे सिर उठाने की फुरसत न मिलती थी। स्वास्थ्य भी कुछ खराब हो चला था; मगर जेनी अपने सैर-सपाटे में मग्न थी। आखिर एक दिन उसने कहा—मैं नैनीताल जा रही हूँ। यहाँ की गर्मी मुझसे सही नहीं जाती।

मनहर ने लाल-लाल आँखें निकालकर कहा—नैनीताल में क्या काम है?

वह आज अपना अधिकार दिखाने पर तुल गया। जेनी भी उसके अधिकार की अपेक्षा करने पर तुली हुई थी। बोली—यहाँ कोई सोसाइटी नहीं। सारा लखनऊ पहाड़ों पर चला गया है।

मनहर ने जैसे म्यान से तलवार निकाल कर कहा—जबतक मैं यहाँ हूँ, तुम्हें कहीं जाने का अधिकार नहीं है। तुम्हारी शादी मेरे साथ हुई है, सोसाइटी के साथ नहीं हुई। फिर तुम साफ देख रही हो कि मैं बीमार हूँ, तिस पर भी तुम अपनी विलास-प्रवृत्ति को रोक नहीं सकती। मुझे तुमसे ऐसी आशा न थी, जेनी! मैं तुमको शरीफ समझता था। मुझे स्वप्न में भी यह गुमान न था कि तुम मेरे साथ ऐसी बेवफाई करोगी।

जेनी ने अविचलित भाव से कहा—तो क्या तुम समझते थे, मैं भी तुम्हारी हिन्दुस्तानी स्त्री की तरह तुम्हारी लौंडी बनकर रहूँगी और तुम्हारे तलवे सहलाऊँगी? मैं तुम्हें इतना नादान नहीं समझती। अगर तुम्हें हमारी अंग्रेजी सभ्यता की इतनी मोटी-सी बात मालूम नहीं, तो अब मालूम कर लो कि अंग्रेज-स्त्री अपनी रुचि के सिवा और किसी की पाबन्द नहीं। तुमने मुझसे इसलिए विवाह किया था कि मेरी सहायता से तुम्हें सम्मान और पद प्राप्त हों। सभी पुरुष ऐसा करते हैं और तुमने भी वही किया। मैं इसके लिए तुम्हें बुरा नहीं कहती लेकिन जब तुम्हारा वह उद्देश्य पूरा हो गया, जिसके लिए तुमने मुझसे विवाह किया था, तो तुम मुझसे अधिक आशा क्यों रखते हो? तुम हिन्दुस्तानी हो, अँगरेज नहीं हो सकते। मैं अँगरेज हूँ और हिन्दुस्तानी नहीं हो सकती; इसलिए हममें से किसी को यह अधिकार नहीं है कि वह दूसरे को अपनी मर्जी का गुलाम बनाने की चेष्टा करे।

मनहर हतबुद्धि-सा बैठा सुनता रहा। एक-एक शब्द विष की घूँट की भाँति

उसके कण्ठ के नीचे उतर रहा था। कितना कठोर सत्य था। पद-लालसा के उस प्रचण्ड आवेग में, विलास तृष्णा के उस अदम्य प्रवाह में वह भूल गया था कि जीवन में कोई ऐसा तत्त्व भी है, जिसके सामने पद और विलास काँच के खिलौनों से अधिक मूल्य नहीं रखते। वह विस्मृत सत्य इस समय अपने दरुण-विलाप से उसकी मदमग्न चेतना को तड़पाने लगा।

शाम को जेनी नैनीताल चली गयी। मनहर ने उसकी ओर आँखें उठाकर भी न देखा।

(५)

तीन दिन तक मनहर घर से न निकला। जीवन के पाँच-छः वर्षों में उसने जितने रत्न संचित किये थे, जिन पर वह गर्व करता था; जिन्हें पाकर वह अपने को धन्य मानता था, अब परीक्षा की कसौटी पर आकर नकली पत्थर सिद्ध हो रहे थे। उसकी अपमानित, ग्लानित, पराजित आत्मा एकांत-रोदन के सिवा और कोई त्राण न पाती थी। अपनी टूटी झोपड़ी को छोड़कर वह जिस सुनहले कलशवाले भवन की ओर लपका था, वह मरीचिका-मात्र थी, और अब उसे फिर उसी टूटी झोपड़ी की याद आयी, जहाँ उसने शान्ति, प्रेम और आशीर्वाद की सुधा पी थी। यह सारा आडम्बर उसे काटे खाने लगा। उस सरल शीतल स्नेह के सामने ये सारी विभूतियाँ तुच्छ सी जँचने लगीं। तीसरे दिन वह भीषण संकल्प करके उठा और दो पत्र लिखे। एक तो अपने पद से इस्तीफा था, दूसरा जेनी से अंतिम विदा की सूचना। इस्तीफे में उसने लिखा—मेरा स्वास्थ्य नष्ट हो गया है, और मैं इस भार को नहीं सँभाल सकता। जेनी के पत्र में उसने लिखा—हम और तुम दोनों ने भूल की और हमें जल्द-से-जल्द उस भूल को सुधार लेना चाहिए। मैं तुम्हें सारे बंधनों से मुक्त करता हूँ। तुम भी मुझे मुक्त कर दो। मेरा तुमसे कोई संबंध नहीं है। अपराध न तुम्हारा है, न मेरा। समझ का फेर तुम्हें भी था और मुझे भी। मैंने अपने पद से इस्तीफा दे दिया है, और अब तुम्हारा मुझ पर कोई एहसान नहीं रहा। मेरे पास जो कुछ है, वह तुम्हारा है, वह सब मैं छोड़े जाता हूँ। मैं तो निमित्त-मात्र था, स्वामिनी तुम थीं। उस सभ्यता को दूर से ही सलाम है, जो विनोद और विलास के सामने किसी बंधन को स्वीकार नहीं करती।

उसने खुद जाकर दोनों पत्रों की रजिस्ट्री करायी और उत्तर का इंतजार किये बिना ही वहाँ से चलने को तैयार हो गया।

(६)

जेनी ने जब मनहर का पत्र पाकर पढ़ा, तो मुसकरायी। उसे मनहर की इच्छा पर शासन करने का ऐसा अभ्यास पड़ गया था कि इस पत्र से उसे जरा भी घबराहट न हुई। उसे विश्वास था कि दो-चार दिन चिकनी-चुपड़ी बातें करके वह उसे फिर वशीभूत कर लेगी। अगर मनहर की इच्छा केवल धमकी देना न होती, उसके दिल पर चोट लगी होती, तो वह अब तक यहाँ न होता। कब का वह स्थान छोड चुका होता? उसका यहाँ रहना ही बता रहा था कि वह केवल बँदरघुड़की दे रहा है।

जेनी ने स्थिरचित्त होकर कपड़े बदले और तब इस तरह मनहर के कमरे में आयी, मानो कोई अभिनय करके स्टेज पर आयी हो।

मनहर उसे देखते ही जोर से ठट्टा मार कर हँसा। जेनी सहम कर पीछे हट गयी। इस हँसी में क्रोध या प्रतीकार न था। इसमें उन्माद भरा हुआ था। मनहर के सामने मेज पर बोतल और गिलास रखा हुआ था। एक दिन में उसने न-जाने कितनी शराब पी ली थी। उसकी आँखों में जैसे रक्त उबला पड़ता था।

जेनी ने समीप जाकर उसके कन्धे पर हाथ रखा और बोली—क्या रात-भर पीते ही रहोगे? चलो आराम से लेटो, रात ज्याद आ गयी है। घण्टों से बैठी तुम्हारा इन्तजार कर रही हूँ। तुम इतने निष्ठुर तो कभी न थे।

मनहर खोया हुआ-सा बोला—तुम कब आ गयी, वागी? देखो, मैं कब से तुम्हें पुकार रहा हूँ। चलो, आज सैर कर आयें। उसी नदी के किनारे तुम अपना वही प्यारा गीत सुनना, जिसे सुनकर मैं पागल हो जाता हूँ। क्या कहती हो, मैं बेमुरौवत हूँ? यह तुम्हारा अन्याय है, वागी! मैं कसम खाकर कहता हूँ, ऐसा एक दिन भी नहीं गुजरा, जब तुम्हारी याद ने मुझे न रुलाया हो।

जेनी ने उसका कन्धा हिलाकर कहा—तुम यह क्या उल-जुलूल बक रहे हो? वागी यहाँ कहाँ है?

मनहर ने उसकी ओर अपरिचित भाव से देख कर कुछ कहा, फिर जोर

से हँसकर बोला—मैं यह न मानूँगा, वागी! तुम्हें मेरे साथ चलना होगा। वहाँ मैं तुम्हारे लिए फूलों की एक माला बनाऊँगा........।

जेनी ने समझा, यह शराब बहुत पी गये हैं। बक-झक कर रहे हैं इनसे इस वक्त कुछ बातें करना व्यर्थ है। चुपके से कमरे के बाहर चली गयी। उसे जरा-सी शंका हुई थी। यहाँ उसका मूलोच्छेद हो गया। जिस आदमी का अपनी वाणी पर अधिकार नहीं, वह इच्छा पर क्या अधिकार रख सकता है?

उस घड़ी से मनहर को घरवालों की रट-सी लग गयी। कभी वागेश्वरी को पुकारता, कभी अम्माँ को, कभी दादा को। उसकी आत्मा अतीत में विचरती रहती, उस अतीत में जब जेनी ने काली छाया की भाँति प्रवेश न किया था और वागेश्वरी अपने सरल व्रत से उसके जीवन में प्रकाश फैलाती रहती थी।

दूसरे दिन जेनी ने जाकर उससे कहा—तुम इतनी शराब क्यों पीते हो? देखते नहीं, तुम्हारी क्या दशा हो रही है?

मनहर ने उसको ओर आश्चर्य से देखकर कहा—तुम कौन हो?

जेनी—क्या मुझे नहीं पहचानते हो? इतनी जल्द भूल गये?

मनहर—मैंने तुम्हें कभी नहीं देखा। मैं तुम्हें नहीं पहचानता।

जेनी ने और अधिक बातचीत न की। उसने मनहर के कमरे से शराब की बोतलें उठवा लीं और नौकरों को ताकीद कर दी कि उसे एक घूँट भी शराब न दी जाय। उसे अब कुछ-कुछ सन्देह होने लगा था; क्योंकि मनहर की दशा उससे कहीं शंकाजनक थी, जितनी वह समझती थी! मनहर का जीवित और स्वस्थ रहना उसके लिए आवश्यक था। इसी घोड़े पर बैठकर वह शिकार खेलती थी। घोड़े के बगैर शिकार का आनन्द कहाँ?

मगर एक सप्ताह हो जाने पर भी मनहर की मानसिक दशा में कोई अंतर न हुआ। न मित्रों को पहचानता, न नौकरों को। पिछले तीन बरसों का उसका जीवन एक स्वप्न की भाँति मिट गया था।

सातवें दिन जेनी सिविल सर्जन को लेकर आयी, तो मनहर का कहीं पता न था।

(७)

पाँच साल के बाद वागेश्वरी का लुटा हुआ सोहाग फिर चेता। माँ-बाप

पुत्र के वियोग में रो-रोकर अंधे हो चुके थे। वागेश्वरी निराशा में भी आस बाँधे बैठी हुई थी। उसका मायका सम्पन्न था। बार-बार बुलावे आते, बाप आया, भाई आया, पर धैर्य और व्रत की देवी घर से न टली।

जब मनहर भारत आया, तो वागेश्वरी ने सुना कि वह विलायत से एक मेम लाया है। फिर भी उसे आशा थी कि वह आयेगा; लेकिन उसकी आशा पूरी न हुई। फिर उसने सुना, वह ईसाई हो गया है और आचार-विचार त्याग दिया है, तब उसने माथा ठोंक लिया।

घर की अवस्था दिन-दिन बिगड़ने लगी। वर्षा बन्द हो गयी और सागर सूखने लगा। घर बिका, कुछ जमीन थी वह बिकी, फिर गहनों की बारी आयी, यहाँ तक कि अब केवल आकाशी वृत्ति थी। कभी चूल्हा जल गया, कभी ठंढा पड़ रहा।

एक दिन संध्या समय वह कुएँ पर पानी भरने गयी थी कि एक थका हुआ, जीर्ण, विपत्ति का मारा जैसा आदमी आकर कुएँ की जगत पर बैठ गया। वागेश्वरी ने देखा तो मनहर! उसने तुरंत घूँघट बढ़ा लिया। आँखों पर विश्वास न हुआ, फिर भी आनन्द और विस्मय से हृदय में फुरेरियाँ उड़ने लगीं। रस्सी और कलसा कुएँ पर छोड़कर लपकी हुई घर आयी और सास से बोली—अम्माँजी, जरा कुएँ पर जाकर देखो, कोई आया है। सास ने कहा—तू पानी लाने गयी थी, या तमाशा देखने? घर में एक बूँद पानी नहीं है। कौन आया है कुएँ पर?

'चलकर, देख लो न।'

'कोई सिपाही-प्यादा होगा। अब उनके सिवा और कौन आनेवाला है। कोई महाजन तो नहीं है?'

'नहीं अम्माँ, तुम चली क्यों नहीं चलतीं?'

बूढ़ी माता भाँति-भाँति की शंकाएँ करती हुई कुएँ पर पहुँची, तो मनहर दौड़कर उनके पैरों से चिपट गया। माता ने उसे छाती से लगाकर कहा—तुम्हारी यह क्या दशा है, मानू? क्या बीमार हो? असबाब कहाँ है?

मनहर ने कहा—पहले कुछ खाने को दो, अम्माँ! बहुत भूखा हूँ। मैं बड़ी दूर से पैदल चला आ रहा हूँ।

गाँव में खबर फैल गयी कि मनहर आया है। लोग उसे देखने दौड़े। किस ठाट से आया है? बड़े ऊँचे पद पर है, हजारों रुपये पाता है। अब उसके ठाट का क्या पूछना? मेम भी साथ आयी है या नहीं?

मगर जब आकर देखा, तो आफत का मारा आदमी, फटे-हालों, कपड़े तार-तार, बाल बढ़े हुए, जैसे जेल से आया हो।

प्रश्नों की बौछार होने लगी—हमने तो सुना था, तुम किसी बड़े ऊँचे पद पर हो?

मनहर ने जैसे किसी भूली बात को याद करने का विफल प्रयास करके कहा—मैं! मैं तो किसी ओहदे पर नहीं।

'वाह! तुम विलायत से मेम नहीं लाये थे?'

मनहर ने चकित होकर कहा—विलायत! विलायत कौन गया था?

'अरे! भंग तो नहीं खा गये हो! तुम विलायत नहीं गये थे?'

मनहर मूढ़ों की भाँति हँसा—मैं विलायत क्या करने जाता?

'अजी, तुमको वजीफा नहीं मिला था? यहाँ से तुम विलायत गये थे। तुम्हारे पत्र बराबर आते थे। अब तुम कहते हो, मैं विलायत गया ही नहीं। होश में हो, या हम लोगों को उल्लू बना रहे हो?'

मनहर ने उन लोगों की ओर आँखें फाड़कर देखा और बोला—मैं तो कहीं नहीं गया था। आप लोग जाने क्या कह रहे हैं।

अब इसमें सन्देह की गुंजाइश न रही कि वह अपने होश-हवास में नहीं है। उसे विलायत जाने के पहले की सारी बातें याद थीं। गाँव और घर के हरेक आदमी को पहचानता था, सबसे नम्रता और प्रेम से बातें करता था; लेकिन जब इंग्लैण्ड, अंग्रेज-बीबी और ऊँचे पद का जिक्र आता तो भौंचक्का होकर ताकने लगता। वागेश्वरी को अब उसके प्रेम में एक अस्वाभाविक अनुराग दीखता था, जो बनावटी मालूम होता था। वह चाहती थी कि उसके व्यवहार और आचरण में पहले की सी बेतकल्लुफी हो। वह प्रेम का स्वाँग नहीं, प्रेम चाहती थी। दस-ही पाँच दिनों में उसे ज्ञात हो गया कि इस विशेष अनुराग का कारण बनावट या दिखावा नहीं, वरन् कोई मानसिक विकार है। मनहर ने माँ-बाप का इतना अदब पहले कभी न किया था। उसे अब मोटे-

से-मोटा काम करने में भी संकोच न था। वह, जो बाजार से साग-भाजी लाने में अपना अनादर समझता था, अब कुएँ से पानी खींचता, लकड़ियाँ फाड़ता और घर में झाड़ू लगाता था और अपने घर में ही नहीं, सारे मुहल्ले में उसकी सेवा और नम्रता की चर्चा होती थी।

एक बार मुहल्ले में चोरी हुई। पुलिस ने बहुत दौड़-धूप की; पर चोरों का पता न चला। मनहर ने चोरी का पता ही नहीं लगा दिया; बल्कि माल भी बरामद करा लिया। इससे आसपास के गाँवों और मुहल्लों में उसका यश फैल गया। कोई चोरी हो जाती, तो लोग उसके पास दौड़े आते और अधिकांश उसके उद्योग सफल भी होते थे। इस तरह उसकी जीविका की एक व्यवस्था हो गयी। वह अब वागेश्वरी के इशारों का गुलाम था। उसी की दिलजोई और सेवा में उसके दिन कटते थे। अगर उसमें विकार या बीमारी का कोई लक्षण था, तो इतना ही। यही सनक उसे सवार हो गयी थी।

वागेश्वरी को उसकी दशा पर दुःख होता था; पर उसकी यह बीमारी उस स्वास्थ्य से उसे कहीं प्रिय थी, जब वह उसकी बात भी न पूछता था।

(८)

छः महीनों के बाद एक दिन जेनी मनहर का पता लगाती हुई आ पहुँची। हाथ में जो कुछ था, वह सब उड़ा चुकने के बाद अब उसे किसी आश्रय की खोज थी। उसके चाहने वालों में कोई ऐसा न था, जो उसकी आर्थिक सहायता करता। शायद अब जेनी को कुछ ग्लानि भी होती थी। वह अपने किये पर लज्जित थी।

द्वार पर हॉर्न की आवाज सुनकर मनहर बाहर निकला और इस प्रकार जेनी को देखने लगा, मानो उसे कभी देखा ही नहीं।

जेनी ने मोटर से उतर कर उससे हाथ मिलाया और अपनी बीती सुनाने लगी—तुम इस तरह मुझसे छिपकर क्यों चले आये? और फिर आकर एक पत्र भी नहीं लिखा। आखिर, मैंने तुम्हारे साथ क्या बुराई की थी! फिर मुझमें कोई बुराई देखी थी, तो तुम्हें चाहिए था कि मुझे सावधान कर देते। छिपकर चले आने से क्या फायदा हुआ? ऐसी अच्छी जगह मिल गयी थी, वह भी हाथ से निकल गयी।

मनहर काठ के उल्लू की भाँति खड़ा रहा।

जेनी ने फिर कहा—तुम्हारे चले आने के बाद मेरे ऊपर जो संकट आये, वह सुनाऊँ, तो तुम घबरा जाओगे। मैं इसी चिन्ता और दुःख से बीमार हो गयी। तुम्हारे बगैर मेरा जीवन निरर्थक हो गया है। तुम्हारा चित्र देखकर मन को ढाढ़स देती थी। तुम्हारे पत्रों को आदि से अन्त तक पढ़ना मेरे लिए सबसे मनोरंजक विषय था। तुम मेरे साथ चलो मैंने एक डॉक्टर से बातचीत की है वह मस्तिष्क के विकारों का डाक्टर है। मुझे आशा है, उसके उपचार से तुम्हें लाभ होगा।

मनहर चुपचाप विरक्त-भाव से खड़ा रहा, मानो वह न कुछ देख रहा है, न सुन रहा है।

सहसा वागेश्वरी निकल आयी। जेनी को देखते ही वह ताड़ गयी कि यही मेरी यूरोपियन सौत है। वह उसे बड़े आदर-सत्कार के साथ भीतर ले गयी। मनहर भी उनके पीछे-पीछे चला गया।

जेनी ने टूटी खाट पर बैठते हुए कहा—इन्होंने मेरा जिक्र तो तुमसे किया ही होगा। मेरी इनसे लंदन में शादी हुई है।

वागेश्वरी बोली—यह तो मैं आपको देखते ही समझ गयी थी।

जेनी—इन्होंने कभी मेरा जिक्र नहीं किया?

वागेश्वरी—कभी नहीं। इन्हें तो कुछ याद ही नहीं। आपको तो यहाँ आने में बड़ा कष्ट हुआ होगा?

जेनी—महीनों के बाद तब इनके घर का पता चला। वहाँ से बिना कुछ कहे-सुने चल दिये।

'आपको कुछ मालूम है, इन्हें क्या शिकायत है?'

'शराब बहुत पीने लगे थे। आपने किसी डॉक्टर को नहीं दिखाया?'

'हमने तो किसी को नहीं दिखाया।'

जेनी ने तिरस्कार करके कहा—क्यों? क्या आप इन्हें हमेशा बीमार रखना चाहती हैं?

वागेश्वरी ने बेपरवाही से जवाब दिया—मेरे लिए तो इनका बीमार रहना

इनके स्वस्थ रहने से कहीं अच्छा है। तब वह अपनी आत्मा को भूल गये थे, अब उसे पा गये।

फिर उसने निर्दय कटाक्ष करके कहा—मेरे विचार में तो वह तब बीमार थे अब स्वस्थ हैं।

जेनी ने चिढ़कर कहा—नॉनसेंस! इनकी किसी विशेषज्ञ से चिकित्सा करानी होगी। यह जासूसी में बड़े कुशल हैं। इनके सभी अफसर इनसे प्रसन्न थे। वह चाहें तो अब भी इन्हें वह जगह मिल सकती है। अपने विभाग में ऊँचे-से-ऊँचे पद तक पहुँच सकते हैं। मुझे विश्वास है कि इनका रोग असाध्य नहीं है; हाँ, विचित्र अवश्य है। आप क्या इनकी बहन हैं?

वागेश्वरी ने मुसकराकर कहा—आप तो गाली दे रही हैं। वह मेरे स्वामी हैं।

जेनी पर मानों वज्रपात-सा हुआ। उसके मुख पर से नम्रता का आवरण हट गया और मन में छिपा हुआ क्रोध जैसे दाँत पीसने लगा। उसकी गरदन की नसें तन गयीं, दोनों मुट्ठियाँ बँध गयीं। उन्मत्त होकर बोली—बड़ा दगाबाज आदमी है। इसने मुझे बड़ा धोखा दिया। मुझसे इसने कहा था, मेरी स्त्री मर गयी है। कितना बड़ा धूर्त है! यह पागल नहीं है। इसने पागलपन का स्वाँग भरा है। मैं अदालत से इसकी सजा कराऊँगी।

क्रोधावेश के कारण वह काँप उठी। फिर रोती हुई बोली—इस दगाबाजी का मैं इसे मजा चखाऊँगी। ओह! इसने मेरा कितना घोर अपमान किया है! ऐसा विश्वासघात करनेवाले को जो दण्ड दिया जाय, वह थोड़ा है। इसने कैसी मीठी-मीठी बातें करके मुझे फाँसा। मैंने ही इसे जगह दिलायी, मेरे ही प्रयत्नों से यह बड़ा आदमी बना। इसके लिए मैंने अपना घर छोड़ा, अपना देश छोड़ा और इसने मेरे साथ ऐसा कपट किया।

जेनी सिर पर हाथ रखकर बैठ गयी। फिर तैश में उठी और मनहर के पास जाकर उसको अपनी ओर खींचती हुई बोली—मैं तुझे खराब करके छोड़ूँगी। तूने मुझे समझा क्या है....

मनहर इस तरह शान्त भाव से खड़ा रहा, मानो उससे कोई प्रयोजन नहीं है।

फिर वह सिंहनी की भाँति मनहर पर टूट पड़ी और उसे जमीन पर गिराकर उसकी छाती पर चढ़ बैठी। वागेश्वरी ने उसका हाथ पकड़कर अलग कर दिया और बोली—तुम ऐसी डायन न होतीं, तो उनकी यह दशा ही क्यों होती?

जेनी ने तैश में आकर जेब से पिस्तौल निकाला और वागेश्वरी की तरफ बढ़ी। सहसा मनहर तड़पकर उठा, उसके हाथ से भरा हुआ पिस्तौल छीनकर फेंक दिया और वागेश्वरी के सामने खड़ा हो गया। फिर ऐसा मुँह बना लिया, मानो कुछ हुआ ही नहीं।

उसी वक्त मनहर की माता दोपहरी की नींद सोकर उठीं और जेनी को देखकर वागेश्वरी की ओर प्रश्न की आँखों से ताका।

वागेश्वरी ने उपहास के भाव से कहा—यह आप की बहू हैं।

बुढ़िया तिनककर बोली—कैसी मेरी बहू? यह मेरी बहू बनने जोग है बँदरिया? लड़के पर न-जाने क्या कर-करा दिया, अब छाती पर मूँग दलने आयी है?

जेनी एक क्षण तक खून-भरी आँखों से मनहर की ओर देखती रही। फिर बिजली की भाँति कौंदकर उसने आँगन में पड़ा हुआ पिस्तौल उठा लिया और वागेश्वरी पर छोड़ना चाहती थी कि मनहर सामने आ गया। वह बेधड़क जेनी के सामने चला गया, उसके हाथ से पिस्तौल छीन लिया और अपनी छाती में गोली मार ली।

न्याय

हजरत मुहम्मद को इलहाम हुए थोड़े ही दिन हुए थे। दस-पाँच पड़ोसियों तथा निकट सम्बन्धियों के सिवा और कोई उनके दीन पर ईमान न लाया था, यहाँ तक कि उनकी लड़की जैनब और दामाद अबुलआस भी, जिनका विवाह इलहाम से पहले ही हो चुका था, अभी तक दीक्षित न हुए थे। जैनब कई बार अपने मैके गयी थी और अपने पूज्य पिता की ज्ञानमय वाणी सुन चुकी थी। वह दिल से इसलाम पर ईमान ला चुकी थी; लेकिन अबुलआस धार्मिक मनोवृत्ति का आदमी न था। वह कुशल व्यापारी था। मक्के के खजूर, मेवे आदि जिन्सें लेकर बन्दरगाहों को चालान किया करता था। बहुत ही ईमानदार, लेन-देन का खरा, मेहनती आदमी था, जिसे इहलोक से इतनी फ़ुरसत न थी कि परलोक की फ़िक्र करे।

जैनब के सामने कठिन समस्या थी? आत्मा धर्म की ओर थी, हृदय पति की ओर। न धर्म को छोड़ सकती थी; न पति को। उसके घर के सभी आदमी मूर्तिपूजक थे। इस नये सम्प्रदाय से सारे नगर में हलचल मची हुई थी। जैनब सबसे अपनी लगन को छिपाती, यहाँ तक कि पति से भी न कह सकती थी। वे धार्मिक सहिष्णुता के दिन न थे; बात-बात पर खून की नदी बह जाती थी, खान्दान-के-खान्दान मिट जाते थे। उन दिनों अरब की वीरता पारस्परिक कलहों में प्रकट होती थी। राजनैतिक संगठन का जमाना न था। खून का बदला खून, धन-हानि का बदला खून, अपमान का बदला खून—मानव-रक्त ही से सभी झगड़ों का निबटारा होता था। ऐसी अवस्था में अपने धर्मानुराग को प्रकट करना अबुलआस के शक्तिशाली परिवार और मुहम्मद तथा इनके इने-गिने अनुयायियों में देवासुरों का संग्राम छेड़ना था। उधर प्रेम का बन्धन पैरों को जकड़े हुए था। नये धर्म में दीक्षित होना अपने प्राणप्रिय पति से सदा के लिए बिछुड़ जाना था। कुरैश-जाति के लोग ऐसे मिश्रित विवाहों को परिवार के लिए कलंक समझते थे। माया और धर्म की दुविधा में पड़ी हुई जैनब कुढ़ती रहती थी।

(२)

धर्म का अनुराग एक दुर्बल वस्तु है; किन्तु जब उसका वेग होता है, तो हृदय के रोके नहीं रुकता। दोपहर का समय था, धूप इतनी तेज थी कि उसकी ओर ताकते आँखों से चिनगारियाँ निकलती थीं। हजरत मुहम्मद चिन्ता में डूबे हुए बैठे थे। निराशा चारों ओर अन्धकार के रूप में दिखायी देती थी। खुदैजा भी सिर झुकाये पास ही बैठी हुई एक फटा कुरता सी रही थी। धन सम्पत्ति सब कुछ इस लगन की भेंट हो चुकी थी। शत्रुओं का दुराग्रह दिनों दिन बढ़ता जाता था। उनके मतानुयायियों को भाँति-भाँति की यन्त्रणाएँ दी जा रही थीं। स्वयं हजरत को घर से निकलना मुश्किल था। यह खौफ होता था कि कहीं लोग उनपर ईंट-पत्थर न फेंकने लगें। खबर आती थी, आज फलां 'मुस्लिम' का घर लुट गया, आज फलां को लोगों ने आहत किया। हजरत ये खबरें सुन-सुनकर विकल हो जाते थे, और बार-बार खुदा से धैर्य और क्षमा की याचना करते थे।

हजरत ने फरमाया—मुझे ये लोग अब यहाँ न रहने देंगे। मैं खुद सब कुछ झेल सकता हूँ; लेकिन अपने दोस्तों की तकलीफें नहीं देखी जातीं।

खुदैजा—हमारे चले जाने से इन बेचारों की और भी कोई शरण न रहेगी। अभी कम-से-कम तुम्हारे पास आकर रो तो लेते हैं। मुसीबत में रोने का सहारा ही बहुत होता है।

हजरत—तो मैं अकेले थोड़े ही जाना चाहता हूँ। मैं सब दोस्तों को साथ लेकर जाने का इरादा रखता हूँ। अभी हम लोग यहाँ बिखरे हुए हैं, कोई किसी की मदद को नहीं पहुँच सकता। हम सब एक ही जगह एक कुटुम्ब की तरह रहेंगे, तो किसी को हमारे ऊपर हमला करने का साहस न होगा। हम अपनी मिली हुई शक्ति से बालू का ढेर तो हो ही सकते हैं, जिसपर चढ़ने की किसी को हिम्मत न होगी।

सहसा जैनब घर में दाखिल हुई। उसके साथ न कोई आदमी था, न आदमजाद। मालूम होता था, कहीं से भागी चली आ रही है। खुदैजा ने उसे गले लगाकर पूछा—क्या हुआ जैनब, खैरियत तो है?

जैनब ने अपने अन्तर-संग्राम की कथा कह सुनायी और पिता से दीक्षा की याचना की।

हजरत मुहम्मद आँखों में आँसू भरकर बोले—बेटी, मेरे लिए इससे ज्यादा खुशी की और कोई बात नहीं हो सकती; लेकिन जानता हूँ, तुम्हारा क्या हाल होगा।

जैनब—या हजरत! खुदा की राह में सब कुछ त्याग देने का निश्चय कर लिया है। दुनिया के लिए अपनी नजात को नहीं खोना चाहती।

हजरत—जैनब, खुदा की राह में काँटे हैं।

जैनब—अब्बाजान, लगन को काँटों की परवा नहीं होती!

हजरत—ससुराल से नाता टूट जायगा।

जैनब—खुदा से तो नाता जुड़ जायगा?

हजरत—और अबुलआस?

जैनब की आँखों में आँसू डबडबा आये। क्षीण स्वर में बोली—अब्बाजान उन्होंने इतने दिनों मुझे बाँध रखा था, नहीं तो मैं कब की आपकी शरण आ चुकी होती। मैं जानती हूँ, उनसे जुदा होकर मैं जिन्दा न रहूँगी, और शायद उनसे भी मेरा वियोग न सहा जाय; पर मुझे विश्वास है कि वह किसी-न-किसी दिन जरूर खुदा पर ईमान लायेंगे और फिर मुझे उनकी सेवा का अवसर मिलेगा।

हजरत—बेटी, अबुलआस ईमानदार है, दयाशील है, सद्वक्ता है; किन्तु उसका अहंकार शायद अन्त तक उसे ईश्वर से विमुख रखे। वह तकदीर को नहीं मानता। रूह को नहीं मानता, स्वर्ग और नरक को नहीं मानता। कहता है, खुदा की जरूरत ही क्या है? हम उससे क्यों डरें? विवेक और बुद्धि की हिदायत हमारे लिए काफी है। ऐसा आदमी खुदा पर ईमान नहीं ला सकता। कुफ्र को तोड़ना आसान है; लेकिन वह जब दर्शन की सूरत पकड़ लेता है, तो उस पर किसी का जोर नहीं चलता।

जैनब ने दृढ़ होकर कहा—या हजरत, आत्मा का उपकार जिसमें हो, मुझे वही चाहिए। मैं किसी इन्सान को अपने और खुदा के बीच में न आने दूँगी।

हजरज ने कहा—खुदा तुझ पर दया करे बेटी! तेरी बातों ने दिल खुश कर दिया।

यह कहकर उन्होंने जैनब को गले लगा लिया।

(३)

दूसरे दिन जैनब को यथाविधि आम मस्जिद में कलमा पढ़ाया गया।

कुरेशियों ने जब यह खबर पायी, तो जल उठे। गजब खुदा का। इस्लाम ने तो बड़े-बड़े घरों पर भी हाथ साफ करना शुरू किया! अगर यही हाल रहा, तो धीरे-धीरे उसकी शक्ति इतनी बढ़ जायगी कि हमारे लिए उसका सामना करना कठिन हो जायगा। अबुलआस के घर पर एक बड़ी मजलिस हुई। अबूसिफियान ने जो इस्लाम के दुश्मनों में सबसे प्रतिष्ठित मनुष्य था, अबुलआस से कहा—तुम्हें अपनी बीबी को तलाक देना पड़ेगा।

अबुलआस ने कहा—हरगिज नहीं।

अबूसिफियान—तो क्या तुम भी मुसलमान हो जाओगे?

अ० आ० हरगिज नहीं।

अ० सि०—तो उसे मुहम्मद ही के घर रहना पड़ेगा?

अ० आ० हरगिज नहीं। आप लोग मुझे आज्ञा दीजिए कि उसे अपने घर लाऊँ।

अ० सि० हरगिज नहीं।

अ० आ०—क्या यह नहीं हो सकता कि वह मेरे घर में रहकर अपने इच्छानुसार खुदा की बन्दगी करे?

अ० सि०—हरगिज नहीं।

अ० आ० मेरी कौम मेरे साथ इतनी सहानुभूति भी न करेगी?

अ० आ०—तो फिर आप लोग मुझे समाज से पतित कर दीजिए। मुझे पतित होना मंजूर है। आप लोग और जो सजा चाहें दें, वह सब मंजूर है। मगर मैं अपनी बीबी को नहीं छोड़ सकता। मैं किसी की धार्मिक स्वाधीनता का अपहरण नहीं करना चाहता, और वह भी अपनी बीबी की।

अ० सि०—कुरैश में क्या और लड़कियाँ नहीं हैं?

अ० आ०—जैनब की-सी कोई नहीं है।

अ० सि०—हम ऐसी लड़कियाँ बता सकते हैं, जो चाँद को लज्जित कर दें।

अ० आ०—मैं सौंदर्य का उपासक नहीं।

अ० सि०—ऐसी लड़कियाँ दे सकता हूँ, जो गृह-प्रबन्ध में निपुण हों, बातें ऐसी करें कि मुँह से फूल झड़ें, खाना ऐसा पकायें कि बीमार को भी रुचिकर हो, सीने-पिरोने में इतनी कुशल कि पुराने कपड़े को नया कर दें।

अ० आ०—मैं इन गुणों में से किसी का भी उपासक नहीं। मैं प्रेम—और केवल प्रेम—का उपासक हूँ। और मुझे विश्वास है कि जैनब का सा प्रेम मुझे सारी दुनिया में कहीं नहीं मिल सकता।

अ० सि०—प्रेम होता, तो तुम्हें छोड़कर यह बेवफाई करती?

अ० आ०—मैं नहीं चाहता कि मेरे लिए वह अपने आत्म-स्वातंत्र्य का त्याग करे।

अ० सि०—इसका आशय यह है कि तुम समाज में समाज के विरोधी बनकर रहना चाहते हो। आँखों की कसम! समाज तुम्हें अपने ऊपर यह अत्याचार न करने देगा। मैं कहे देता हूँ इसके लिए तुम रोओगे।

(४)

अबूसिफियान और उनकी टोली के लोग तो धमकियाँ देकर उधर गये, इधर अबुलआस ने लकड़ी सँभाली और हजरत मुहम्मद के घर जा पहुँचे। शाम हो गयी थी। हजरत दरवाजे पर अपने मुरीदों के साथ मगरिब की नमाज पढ़ रहे थे। अबुलआस ने उन्हें सलाम किया और जब तक नमाज होती रही, गौर से देखते रहे। जमाअत का एक साथ उठना-बैठना और झुकना देखकर उनके मन में श्रद्धा की तरंगें उठने लगीं। उन्हें मालूम न होता था कि मैं क्या कर रहा हूँ; पर अज्ञात भाव से वह जमाअत के साथ बैठते, झुकते और खड़े हो जाते थे। वहाँ का एक-एक परमाणु इस समय ईश्वरमय हो रहा था। एक क्षण के लिए अबुलआस भी उसी अन्तर-प्रवाह में बह गये।

जब नमाज खतम हुई और लोग सिधारे, तो अबुलआस ने हजरत के पास जाकर सलाम किया और कहा—मैं जैनब को विदा कराने आया हूँ।

हजरत ने विस्मित होकर पूछा—तुम्हें मालूम नहीं कि वह खुदा और उसके रसूल पर ईमान ला चुकी है?

अ० आ०—जी हाँ, मालूम है।

हजरत—इस्लाम ऐसे सम्बन्धों का निषेध करता है, यह भी तुम्हें मालूम है?

अ० आ—क्या इसका मतलब यह है कि जैनब ने मुझे तलाक दे दिया?

हजरत—अगर यही मतलब हो, तो!

अ० आ०—तो कुछ नहीं। जैनब को अपने खुदा और रसूल की बंदगी मुबारक हो। मैं एक बार उससे मिलकर घर चला जाऊँगा, और फिर कभी आपको अपनी सूरत न दिखाऊँगा; लेकिन उस दशा में अगर कुरैश-जाति आपसे लड़ने को तैयार हो जाय, तो उसका इलजाम मुझपर न होगा।

हजरत—मैं कुरैश से इस वक्त नहीं लड़ना चाहता।

अ० आ०—तो जैनब को मेरे साथ जाने दीजिए। उस हालत में कुरैश के क्रोध का भाजन मैं होऊँगा। आप और आपके मुरीदों पर कोई आफत न होगी।

हजरत—तुम दबाव में आकर जैनब को खुदा की तरफ से फेरने का यत्न तो न करोगे?

अ० आ०—मैं किसी के धर्म में बाधा डालना सर्वथा अमानुषीय समझता हूँ।

हजरत—तुम्हें लोग जैनब को तलाक देने पर तो मजबूर न करेंगे?

अ० आ०—मैं जैनब को तलाक देने के पहले जिन्दगी को तलाक दे दूँगा।

हजरत को अबुलआस की बातों से इतमीनान हो गया। वह आस की इज्जत करते थे। आस को हरम में जैनब से मिलने का मौका दिया।

आस ने पूछा—जैनब, मैं तुम्हें अपने साथ ले चलने आया हूँ; धर्म के बदलने से कहीं मन तो नहीं बदल गया?

जैनब रोती हुई उनके पैरों पर गिर पड़ी और बोली—या मेरे आका! धर्म बार-बार मिलता है, हृदय केवल एक बार। मैं आपकी हूँ, चाहे जहाँ रहूँ, लेकिन समाज मुझे आपकी सेवा में रहने देगा?

आस—यदि समाज न रहने देगा, तो मैं समाज से ही निकल जाऊँगा। दुनिया में आराम से जीवन व्यतीत करने के लिए बहुत से स्थान हैं। रहा मैं, तुम जानती हो, मैं धार्मिक स्वाधीनता का पक्षपाती हूँ। मैं तुम्हारे धार्मिक विषयों में कभी हस्तक्षेप न करूँगा।

जैनब चली, तो खुदैजा ने रोते हुए उसे यमन के लालों का एक बहुमूल्य हार बिदाई में दिया।

(५)

इस्लाम पर विधर्मियों के अत्याचार दिनोंदिन बढ़ने लगे। अवहेलना की दशा से निकलकर उसने भय के क्षेत्र में प्रवेश किया। शत्रुओं ने उसे समूल नाश करने की आयोजना करनी शुरू की। दूर-दूर के कबीलों से मदद माँगी जाने लगी। इस्लाम में इतनी शक्ति न थी कि शस्त्र-बल से विरोधियों को दबा सके। हजरत मुहम्मद ने मक्का छोड़कर कहीं और चले जाने का निश्चय किया। मक्के में मुस्लिमों के घर सारे शहर में बिखरे हुए थे। एक की मदद को दूसरे मुसलमान न पहुँच सकते थे। हजरत मुहम्मद किसी ऐसी जगह आबाद होना चाहते थे, जहाँ सब मिले हुए रहें, और शत्रुओं की संघटित शक्ति का प्रतीकार कर सकें। अंत में उन्होंने मदीने को पसन्द किया और अपने समस्त अनुयायियों को सूचना दे दी। भक्तजन उनके साथ हुए और एक दिन मुस्लिमों ने मक्के से मदीने को प्रस्थान कर दिया। यही हिजरत थी।

मदीने पहुँचकर मुसलमानों में एक नयी शक्ति, नयी स्फूर्ति का उदय हुआ। वे निश्शंक होकर अपने धर्म का पालन करने लगे। अब पड़ोसियों से दबने और छिपने की जरूरत न थी।

आत्मविश्वास बढ़ा। इधर भी विधर्मियों का स्वागत करने की तैयारियाँ होने लगीं। दोनों पक्ष सेना इकट्ठी करने लगे। विधर्मियों ने संकल्प किया कि संसार से इस्लाम का नाम ही मिटा देंगे। इस्लाम ने भी उनके दाँत खट्टे करने का निश्चय किया।

एक दिन अबुलआस ने आकर पत्नी से कहा—जैनब, हमारे नेताओं ने इस्लाम पर जिहाद करने की घोषणा कर दी है।

जैनब ने घबड़ाकर कहा—अब तो वे लोग यहाँ से चले गये! फिर इस जिहाद की क्या जरूरत?

अबुलआस—मक्के से चले गये, अरब से तो नहीं चले गये! उन लोगों की ज्यादतियाँ बढ़ती जा रही हैं। जिहाद के सिवा और कोई उपाय नहीं है। जिहाद में मेरा शरीक होना जरूरी है।

जैनब—अगर तुम्हारा दिल तुम्हें मजबूर करता है, तो शौक से जाओ। मैं भी तुम्हारे साथ चलूँगी।

आस—मेरे साथ?

जैनब—हाँ, वहाँ आहत मुसलमानों की सेवा-सुश्रूषा करूँगी।

आस—शौक से चलो।

(६)

घोर संग्राम हुआ। दोनों दलवालों ने खूब दिल के अरमान निकाले। भाई भाई से, बाप बेटे से लड़ा। सिद्ध हो गया कि मजहब का बन्धन रक्त और वीर्य के बन्धन से सुदृढ़ है!

दोनों दलवाले वीर थे! अन्तर यह था कि मुसलमानों में नया धर्मानुराग था, मृत्यु के पश्चात् स्वर्ग की आशा थी। दिलों में वह अटल विश्वास था, जो नवजात संप्रदायों का लक्षण है। विधर्मियों में, 'बलिदान' का यह भाव लुप्त था।

कई दिन तक लड़ाई होती रही। मुसलमानों की संख्या बहुत कम थी, पर अन्त में उनके धर्मोत्साह ने मैदान मार लिया। विधर्मियों में कितने ही मारे गये, कितने ही घायल हुए और कितने ही कैद कर लिये गये। अबुलआस भी इन्हीं कैदियों में थे।

जैनब ने ज्योंही सुना कि अबुलआस पकड़ लिये गये, उसने तुरन्त हजरत मोहम्मद की सेवा में मुक्ति धन भेजा। यह वही बहुमूल्य हार था, जो खुदैजा ने उसे दिया था। जैनब अपने पूज्य पिता को उस धर्म-संकट में एक क्षण के लिये भी न डालना चाहती थी, जो मुक्ति-धन के अभाव की दशा में उनपर पड़ता, किन्तु अबुलआस को इच्छा होते हुए भी पक्षपात भय से न छोड़ सके।

सब कैदी हजरत के सामने पेश किये गये। कितने ही तो ईमान लाये, कितनों के घरों से मुक्ति-धन आ चुका था, वे मुक्त कर दिये गये। हजरत ने अबुलआस को देखा, सबसे अलग सिर झुकाये खड़े हैं। मुख पर लज्जा का भाव झलक रहा है।

हजरत ने कहा—अबुलआस, खुदा ने इस्लाम की हिमायत की, वरना उसे यह विजय न प्राप्त होती।

अबुलआस—अगर आपके कथनानुसार संसार में एक खुदा है, तो वह अपने एक बन्दे को दूसरे का गला काटने में मदद नहीं दे सकता। मुसलमानों की विजय उनके रणोत्साह से हुई।

एक सहाबी ने पूछा—तुम्हारा फिदिया (मुक्ति धन) कहाँ है ?

हजरत ने फरमाया—अबुलआस का हार निहायत बेशकीमती है, इनके बारे में आप क्या फैसला करते हैं ? आपको मालूम है, यह मेरे दामाद हैं ?

अबूबकर—आज तुम्हारे घर में जैनब हैं, जिन पर ऐसे सैकड़ों हार कुर्बान किये जा सकते हैं।

अबुलआस—तो आपका मतलब क्या है कि जैनब मेरा फिदिया हो ?

जैद—बेशक हमारा मतलब है।

अबुलआस—उससे तो कहीं बेहतर था कि आप मुझे कत्ल कर देते।

अबूबकर—हम रसूल के दामाद को कत्ल नहीं करेंगे, चाहे वह विधर्मी ही क्यों न हो। तुम्हारी यहाँ उतनी खातिर होगी, जितनी हम कर सकते हैं।

अबुलआस के सामने विषम समस्या थी। इधर यहाँ की मेहमानी में अपमान था, उधर जैनब के वियोग की दारुण वेदना थी। उन्होंने निश्चय किया कि यह वेदना सहूँगा, किन्तु अपमान न सहूँगा। प्रेम, आत्मा के गौरव पर बलिदान कर दूँगा। बोले—मुझे आपका फैसला मंजूर है। जैनब मेरी फिदिया होगी।

(७)

मदीने में रसूल की बेटी की जितनी इज्जत होनी चाहिए, उतनी होती थी। सुख था, ऐश्वर्य था, धर्म था; पर प्रेम न था। अबुलआस के वियोग में रोया करती।

तीन वर्ष तीन युगों की भाँति बीते। अबुलआस के दर्शन न हुए।

उधर अबुलआस पर उसकी बिरादरी का दबाव पड़ रहा था कि विवाह कर लो; पर जैनब की मधुर स्मृतियाँ ही उसके प्रणय वंचित हृदय को तसकीन देने को काफी थीं। वह उत्तरोत्तर उत्साह के साथ अपने व्यवसाय में तल्लीन हो गया। महीनों घर न आता। धनोपार्जन ही अब उसके जीवन का मुख्य आधार था। लोगों को आश्चर्य होता था कि अब यह धन के पीछे क्यों प्राण दे रहा

है। निराशा और चिंता बहुधा शराब के नशे से शांत होती हैं; प्रेम उन्माद से। अबुलआस को धनोन्माद हो गया था। धन के आवरण में ढका हुआ यह प्रेम-नैराश्य था; माया के परदे में छिपा हुआ प्रेम-वैराग्य।

एक बार वह मक्के से माल लादकर ईराक की तरफ चला। काफिले में और भी कितने ही सौदागर थे। रक्षकों का एक दल भी साथ था। मुसलमानों के कई काफिले विधर्मियों के हाथों लुट चुके थे। उन्हें ज्योंही इस काफिले की खबर मिली, जैद ने कुछ चुने हुए आदमियों के साथ उन पर धावा कर दिया। काफिले के रक्षक लड़े और मारे गये। काफिले वाले भाग निकले। अतुल धन मुसलमानों के हाथ लगा। अबुलआस फिर कैद हो गये।

दूसरे दिन हजरत मुहम्मद के सामने अबुलआस की पेशी हुई। हजरत ने एक बार उसकी तरफ करुण-दृष्टि डाली और सिर झुका लिया। साहिबियों ने कहा—या हजरत, अबुलआस के बारे में आप क्या फैसला करते हैं ?

मुहम्मद—इसके बारे में फैसला करना तुम्हारा काम है। यह मेरा दामाद है। सम्भव है, मैं पक्षपात का दोषी हो जाऊँ।

यह कहकर वह मकान में चले गये। जैनब रोकर पैरों पर गिर पड़ी और बोली—अब्बाजान, आपने औरों को तो आजाद कर दिया। अबुलआस क्या उन सबसे गया-बीता है ?

हजरत—नहीं जैनब, न्याय के पद पर बैठने वाले आदमी को पक्षपात और द्वेष से मुक्त होना चाहिए। यद्यपि यह नीति मैंने ही बनायी है, तो भी अब उसका स्वामी नहीं, दास हूँ,। मुझे अबुलआस से प्रेम है। मैं न्याय को प्रेम-कलंकित नहीं कर सकता।

सहाबी हजरत की इस नीति-भक्ति पर मुग्ध हो गये। अबुलआस को सब माल-असबाब के साथ मुक्त कर दिया।

अबुलआस पर हजरत की न्याय-परायणता का गहरा असर पड़ा। मक्के आकर उन्होंने अपना हिसाब-किताब साफ किया, लोगों का माल लौटाया, कर्ज अदा किया और घर-बार त्याग कर हजरत मुहम्मद की सेवा में पहुँच गये। जैनब की मुराद पूरी हुई।

कुत्सा

अपने घर में आदमी बादशाह को भी गाली देता है। एक दिन मैं अपने दो-तीन मित्रों के साथ बैठा हुआ एक राष्ट्रीय संस्था के व्यक्तियों की आलोचना कर रहा था। हमारे में विचार राष्ट्रीय कार्यकर्ताओं को स्वार्थ और लोभ से ऊपर रहना चाहिए। ऊँचा और पवित्र आदर्श सामने रख कर ही राष्ट्र की सच्ची सेवा की जा सकता है। कई व्यक्तियों के आचरण ने हमें क्षुब्ध कर दिया था और हम इस समय बैठे अपने दिल का गुबार निकाल रहे थे! सम्भव था, उस परिस्थिति में पड़कर हम और भी गिर जाते; लेकिन उस वक्त तो हम विचारक के स्थान पर बैठे हुए थे और विचारक उदार बनने लगे, तो न्याय कौन करे? विचारक को यह भूल जाने में विलम्ब नहीं होता कि उसमें भी कमजोरियाँ हैं। उसमें और अभियुक्त में केवल इतना ही अन्तर है कि या तो विचारक महाशय उस परिस्थिति में पड़े नहीं, या पड़कर भी अपनी चतुराई से बेदाग निकल गये।

पद्मादेवी ने कहा—महाशय 'क' काम तो बड़े उत्साह से करते हैं; लेकिन अगर हिसाब देखा जाय, तो उनके जिम्मे एक हज़ार से कम न निकलेगा।

उर्मिलादेवी बोलीं—खैर 'क' को तो क्षमा किया जा सकता है। उसके बाल-बच्चे हैं, आखिर उनका पालन-पोषण कैसे करे? जब वह चौबीसों घण्टे सेवा-कार्य ही में लगा रहता है, तो उसे कुछ-न-कुछ तो मिलना ही चाहिए। उस योग्यता का आदमी ५००) वेतन पर भी न मिलता। अगर इस साल-भर में उसने एक हजार खर्च कर डाला, तो बहुत नहीं है। महाशय 'ख' तो बिलकुल निहंग हैं। 'जोरू न जाँता अल्लाह मियाँ से नाता'; पर उनके जिम्मे भी एक हजार से कम न होंगे। किसी को क्या अधिकार है कि वह गरीबों का धन मोटर की सवारी और यार-दोस्तों की दावत में उड़ा दे?

श्यामादेवी उदण्ड होकर बोलीं—महाशय 'ग' को इसका जवाब देना पड़ेगा, भाई साहब! यों बचकर नहीं निकल सकते। हम लोग भिक्षा माँग-माँग

कर पैसे लाते हैं; इसीलिए कि यार-दोस्तों की दावतें हों, शराबें उड़ायी जायँ और मुजरे देखे जायँ? रोज सिनेमा की सैर होती है। गरीबों का धन यों उड़ाने के लिए नहीं है। यहाँ पाई-पाई का लेखा समझना पड़ेगा। मैं भरी सभा में रगेदूँगी। उन्हें जहाँ पाँच सौ वेतन मिलता हो, वहाँ चले जायँ। राष्ट्र के सेवक बहुतेरे निकल आवेंगे।

मैं भी एक बार इसी संस्था का मन्त्री रह चुका हूँ। मुझे गर्व है कि मेरे ऊपर कभी किसी ने इस तरह का आक्षेप नहीं किया; पर न-जाने क्यों लोग मेरे मन्त्रित्व से सन्तुष्ट नहीं थे। लोगों का खयाल था कि मैं बहुत कम समय देता हूँ और मेरे समय में संस्था ने कोई गौरव बढ़ानेवाला कार्य नहीं किया; इसलिए मैंने रूठकर इस्तीफा दे दिया था। मैं उसी पद से बेलौस रहकर भी निकाला गया। महाशय 'ग' हजारों हड़प करके भी उसी पद पर जमे हुए हैं। क्या यह मेरे उनसे कुनह रखने की काफी वजह न थी? मैं चतुर खिलाड़ी की भाँति खुद तो कुछ न करना चाहता था, किन्तु परदे की आड़ से रस्सी खींचता रहता था।

मैंने रद्दा जमाया—देवीजी, आप अन्याय कर रही हैं। महाशय 'ग' से ज्यादा दिलेर और........

उर्मिला ने मेरी बात काटकर कहा—मैं ऐसे आदमी को दिलेर नहीं कहती जो छिपकर जनता के रुपये से शराब पिये। जिन शराब की दूकानों पर हम धरना देने जाते थे, उन्हीं दूकानों से उनके लिए शराब आती थी। इससे बढ़कर बे-वफाई और क्या हो सकती है? मैं ऐसे आदमी को देशद्रोही कहती हूँ।

मैंने और खींचा—लेकिन यह तो तुम भी मानती हो कि महाशय 'ग' केवल अपने प्रभाव से हजारों रुपये चन्दा वसूल कर लाते हैं। विलायती कपड़े को रोकने का उन्हें जितना श्रेय दिया जाय, थोड़ा है।

उर्मिला देवी कब माननेवाली थीं। बोलीं—उन्हें चन्दे इस संस्था के नाम पर मिलते हैं, व्यक्तिगत रूप से एक धेला भी लावें तो कहूँ। रहा विलायती कपड़ा। जनता नामों को पूजती है और महाशय की तारीफें हो रही हैं; पर सच पूछिए तो यह श्रेय हमें मिलना चाहिए। वह तो कभी किसी दूकान पर गये भी नहीं। आज सारे शहर में इस बात की चर्चा हो रही है। जहाँ चन्दा

माँगने जाओ, वहीं लोग यही आक्षेप करने लगते हैं। किस-किसका मुँह बन्द कीजिएगा? आप बनते तो हैं जाति के सेवक; मगर आचरण ऐसा कि शोहदों का भी न होगा। देश का उद्धार ऐसे विलासियों के हाथों नहीं हो सकता। उसके लिए सच्चा त्याग होना चाहिए।

(५)

यही आलोचनाएँ हो रही थीं कि एक दूसरी देवी आयीं भगवती! बेचारी चन्दा माँगने आयी थीं। थकी-माँदी चली आ रही थीं। यहाँ जो पंचायत देखी, तो रम गयीं। उनके साथ उनकी बालिका भी थी। कोई दस साल उम्र होगी। इन कामों में बराबर माँ के साथ रहती थी। उसे जोर की भूख लगी हुई थी। घर की कुञ्जी भी भगवती देवी के पास थी। पतिदेव दफ्तर से आ गये होंगे। घर का खुलना भी जरूरी था, इसलिए मैंने बालिका को उसके घर पहुँचाने की सेवा स्वीकार की।

कुछ दूर चलकर बालिका ने कहा—आपको मालूम है, महाशय 'ग' शराब पीते हैं?

मैं इस आक्षेप का समर्थन न कर सका। भोली-भाली बालिका के हृदय में कटुता, द्वेष और प्रपञ्च का विष बोना मेरी ईर्ष्यालु प्रकृति को भी रुचिकर न जान पड़ा। जहाँ कोमलता और सारल्य, विश्वास और माधुर्य का राज्य होना चाहिए, वहाँ कुत्सा और क्षुद्रता का मर्यादित होना कौन पसन्द करेगा? देवता के गले में काँटों की माला कौन पहनायेगा?

मैंने पूछा—तुमसे किसने कहा कि महाशय 'ग' शराब पीते हैं?

'वाह, पीते ही हैं, आप क्या जानें?'

'तुम्हें कैसे मालूम हुआ?'

'सारे शहर के लोग कह रहे हैं।'

'शहरवाले झूठ बोल रहे हैं।'

बालिका ने मेरी ओर अविश्वास की आँखों से देखा, शायद वह समझी, मैं भी महाशय 'ग' के ही भाई-बंदों में हूँ।

'आप कह सकते हैं, महाशय 'ग' शराब नहीं पीते?'

'हाँ, वह कभी शराब नहीं पीते।'

'और महाशय 'क' ने जनता के रुपये भी नहीं उड़ाये?'

'यह भी असत्य है।'

'और महाशय 'ख' मोटर पर हवा खाने नहीं जाते?'

'मोटर पर हवा खाना कोई अपराध नहीं है।'

'अपराध नहीं है राजाओं के लिए, रईसों के लिए, अफसरों के लिए, जो जनता का खून चूसते हैं, देश-भक्ति का दम भरनेवालों के लिए वह बहुत बड़ा अपराध है।'

'लेकिन यह तो सोचो, इन लोगों को कितना दौड़ना पड़ता है। पैदल कहाँ तक दौड़ें?'

'पैरगाड़ी पर तो चल सकते हैं। यह कुछ बात नहीं है। ये लोग शान दिखाना चाहते हैं, जिसमें लोग समझें कि यह भी बहुत बड़े आदमी हैं। हमारी संस्था गरीबों की संस्था है। यहाँ मोटर पर उसी वक्त बैठना चाहिए, जब और किसी तरह काम ही न चल सके और शराबियों के लिए तो यहाँ स्थान ही न होना चाहिए। आप तो चंदे माँगने जाते नहीं। हमें कितना लज्जित होना पड़ता है, आपको क्या मालूम!'

मैंने गम्भीर होकर कहा—तुम्हें लोगों से कह देना चाहिए, यह सरासर गलत है। हम और तुम इस संस्था के शुभचिन्तक हैं। हमें अपने कार्य-कर्त्ताओं का अपमान करना उचित नहीं। हमें तो इतना ही देखना चाहिए कि वे हमारी कितनी सेवा करते हैं। मैं यह नहीं कहता कि क, ख, ग, में बुराइयाँ नहीं हैं। संसार में ऐसा कौन है, जिसमें बुराइयाँ न हों, लेकिन बुराइयों के मुकाबले में उनमें गुण कितने हैं, यह तो देखो। हम सभी स्वार्थ पर जान देते हैं—मकान बनाते हैं, जायदाद खरीदते हैं। और कुछ नहीं, तो आराम से घर में सोते हैं। ये बेचारे चौबीसों घंटे देश-हित की फिक्र में डूबे रहते हैं। तीनों ही साल-साल भर की सजा काटकर, कई महीने हुए, लौटे हैं। तीनों ही के उद्योग से अस्पताल और पुस्तकालय खुले। इन्हीं वीरों ने आन्दोलन करके किसानों का लगान कम कराया। अगर इन्हें शराब पीना और धन कमाना होता, तो इस क्षेत्र में आते ही क्यों?

बालिका ने विचारपूर्ण दृष्टि से मुझे देखा। फिर बोली—यह बतलाइए, महाशय 'ग' शराब पीते हैं या नहीं ?

मैंने निश्चयपूर्वक कहा—नहीं ! जो यह कहता है, वह झूठ बोलता है।

भगवतीदेवी का मकान आ गया। बालिका चली गयी। मैं आज झूठ बोलकर जितना प्रसन्न था, उतना कभी सच बोलकर भी न हुआ था। मैंने बालिका के निर्मल हृदय को कुत्सा के पंक से गिरने से बचा लिया था।

दो बैलों की कथा

जानवरों में गधा सबसे ज्यादा बुद्धिहीन समझा जाता है। हम जब किसी आदमी को पल्ले दरजे का बेवक़ूफ़ कहना चाहते हैं, तो उसे गधा कहते हैं। गधा सचमुच बेवक़ूफ़ है, या उसके सीधेपन, उसकी निरापद सहिष्णुता ने उसे यह पदवी दे दी है, इसका निश्चय नहीं किया जा सकता। गायें सींग मारती हैं; ब्यायी हुई गाय तो अनायास ही सिंहनी का रूप धारण कर लेती है। कुत्ता भी बहुत गरीब जानवर है, लेकिन कभी-कभी उसे भी क्रोध आ ही जाता है; किन्तु गधे को कभी क्रोध करते नहीं सुना, न देखा। जितना चाहो गरीब को मारो, चाहे जैसी खराब, सड़ी हुई घास सामने डाल दो, उसके चेहरे पर कभी असन्तोष की छाया भी न दिखायी देगी। वैशाख में चाहे एकाध बार कुलेल कर लेता हो; पर हमने तो उसे कभी खुश होते नहीं देखा। उसके चेहरे पर एक स्थायी विषाद स्थायी रूप से छाया रहता है। सुख-दुःख, हानि-लाभ, किसी भी दशा में उसे बदलते नहीं देखा। ऋषियों-मुनियों के जितने गुण हैं, वे सभी उसमें पराकाष्ठा को पहुँच गये हैं; पर आदमी उसे बेवक़ूफ़ कहता है। सदगुणों का इतना अनादर कहीं नहीं देखा। कदाचित् सीधापन संसार के लिए उपयुक्त नहीं है। देखिए न, भारतवासियों की अफ्रीका में क्यों दुर्दशा हो रही है ? क्यों अमरिका में उन्हें घुसने नहीं दिया जाता ? बेचारे शराब नहीं पीते, चार पैसे कुसमय के लिए बचाकर रखते हैं, जी तोड़कर काम करते हैं, किसी से लड़ाई-झगड़ा नहीं करते, चार बातें सुनकर गम खा जाते हैं। फिर भी बदनाम हैं। कहा जाता है, वे जीवन के आदर्श को नीचा करते हैं। अगर वे भी ईंट का जवाब पत्थर से देना सीख जाते, तो शायद सभ्य कहलाने लगते। जापान की मिसाल सामने है। एक ही विजय ने उसे संसार की सभ्य जातियों में गण्य बना दिया।

लेकिन गधे का एक छोटा भाई और भी है, जो उससे कुछ ही कम गधा है और वह है 'बैल'। जिस अर्थ में हम गधा का प्रयोग करते हैं, कुछ उसीसे

मिलते-जुलते अर्थ में 'बछिया के ताऊ' का भी प्रयोग करते हैं। कुछ लोग बैल को शायद बेवकूफों में सर्वश्रेष्ठ कहेंगे; मगर हमारा विचार ऐसा नहीं है। बैल कभी-कभी मारता भी है, कभी-कभी अड़ियल बैल भी देखने में आता है। और भी कई रीतियों से वह अपना असन्तोष प्रकट कर देता है; अतएव उसका स्थान गधे से नीचा है।

झूरी काछी के दोनों बैलों के नाम थे हीरा और मोती। दोनों पछाईं जाति के थे—देखने में सुन्दर, काम में चौकस, डील ऊँचे। बहुत दिनों साथ रहते-रहते दोनों में भाईचारा हो गया था। दोनों आमने-सामने या आस-पास बैठे हुए एक दूसरे से मूक-भाषा में विचार-विनिमय करते थे। एक दूसरे के मन की बात कैसे समझ जाता था, हम नहीं कह सकते। अवश्य ही उनमें कोई ऐसी गुप्त शक्ति थी, जिससे जीवों में श्रेष्ठता का दावा करनेवाला मनुष्य वंचित है। दोनों एक दूसरे को चाटकर और सूँघकर अपना प्रेम प्रकट करते, कभी-कभी दोनों सींग भी मिला लिया करते थे—विग्रह के भाव से नहीं, केवल विनोद के भाव से, आत्मीयता के भाव से, जैसे दोस्तों में घनिष्ठता होते ही धौल-धप्पा होने लगता है। इसके बिना दोस्ती कुछ फुसफुसी, कुछ हलकी सी रहती है, जिसपर ज्यादा विश्वास नहीं किया जा सकता। जिस वक्त ये दोनों बैल हल या गाड़ी में जोत दिये जाते और गरदन हिला-हिलाकर चलते, उस वक्त हरएक की यही चेष्टा होती थी कि ज्यादा-से-ज्यादा बोझ मेरी ही गरदन पर रहे। दिन-भर के बाद दोपहर या सन्ध्या को दोनों खुलते, तो एक दूसरे को चाट-चूटकर अपनी थकन मिटा लिया करते। नाद में खली भूसा पड़ जाने के बाद दोनों साथ उठते, साथ नाद में मुँह डालते और साथ ही बैठते थे। एक मुँह हटा लेता, तो दूसरा भी हटा लेता था।

संयोग की बात, झूरी ने एक बार गोईं को ससुराल भेज दिया। बैलों को क्या मालूम, वे क्यों भेजे जा रहे हैं। समझे, मालिक ने हमें बेच दिया। अपना यों बेचा जाना उन्हें अच्छा लगा या बुरा, कौन जाने, पर झूरी के साले गया को घर तक गोईं ले जाने में दाँतों पसीना आ गया। पीछे से हाँकता तो दोनों दायें-बायें भागते; पगहिया पकड़कर आगे से खींचता, तो दोनों पीछे को जोर लगाते। मारता, तो दोनों सींग नीचे करके हुँकारते। अगर

ईश्वर ने उन्हें वाणी दी होती, तो झूरी से पूछते—तुम हम गरीबों को क्यों निकाल रहे हो? हमने तो तुम्हारी सेवा करने में कोई कसर नहीं उठा रखी। अगर इतनी मेहनत से काम न चलता था और काम ले लेते। हमें तो तुम्हारी चाकरी में मर जाना कबूल था। हमने कभी दाने-चारे की शिकायत नहीं की। तुमने जो कुछ खिलाया, वह सिर झुकाकर खा लिया, फिर तुमने हमें इस जालिम के हाथ क्यों बेच दिया?

सन्ध्या-समय दोनों बैल अपने नये स्थान पर पहुँचे। दिन-भर के भूखे थे; लेकिन जब नाद में लगाये गये, तो एक ने भी उसमें मुँह न डाला। दिल भारी हो रहा था। जिसे उन्होंने अपना घर समझ रखा था, वह आज उनसे छूट गया था। यह नया घर, नया गाँव, नये आदमी, उन्हें बेगानों-से लगते थे।

दोनों ने अपनी मूक-भाषा में सलाह की, एक दूसरे की कनखियों से देखा और लेट गये। जब गाँव में सोता पड़ गया, तो दोनों ने जोर मारकर पगहे तुड़ा डाले और घर की तरफ चले। पगहे बहुत मजबूत थे। अनुमान न हो सकता था कि कोई बैल उन्हें तोड़ सकेगा; पर इन दोनों में इस समय दूनी शक्ति आ गयी थी। एक-एक झटके में रस्सियाँ टूट गयीं।

झूरी प्रातःकाल सोकर उठा, तो देखा कि दोनों बैल चरनी पर खड़े हैं। दोनों गरदनों में आधा-आधा गराँव लटक रहा है। घुटनों तक पाँव कीचड़ से भरे हैं और दोनों की आँखों में विद्रोहमय स्नेह झलक रहा है।

झूरी बैलों को देखकर स्नेह से गद्‌गद् हो गया। दौड़कर उन्हें गले लगा लिया। प्रेमालिंगन और चुम्बन का वह दृश्य बड़ा ही मनोहर था।

घर और गाँव के लड़के जमा हो गये और तालियाँ बजा-बजाकर उनका स्वागत करने लगे। गाँव के इतिहास में यह घटना अभूत-पूर्व न होने पर भी महत्वपूर्ण थी। बाल-सभा ने निश्चय किया, दोनों पशु-वीरों को अभिनन्दन-पत्र देना चाहिए। कोई अपने घर से रोटियाँ लाया, कोई गुड़, कोई चोकर, कोई भूसी।

एक बालक ने कहा— ऐसे बैल किसी के पास न होंगे।

दूसरे ने समर्थन किया—इतनी दूर से दोनों अकेले चले आये।

तीसरा बोला—बैल नहीं हैं वे, उस जनम के आदमी हैं।

इसका प्रतिवाद करने का किसी को साहस न हुआ।

झूरी की स्त्री ने बैलों को द्वार पर देखा, तो जल उठी। बोली—कैसे नमक हराम बैल हैं कि एक दिन वहाँ काम न किया; भाग खड़े हुए।

झूरी अपने बैलों पर यह आक्षेप न सुन सका—नमक हराम क्यों हैं? चारा दाना न दिया होगा, तो क्या करते?

स्त्री ने रोब के साथ कहा—बस, तुम्हीं तो बैलों को खिलाना जानते हो, और तो सभी पानी पिला-पिलाकर रखते हैं।

झूरी ने चिढ़ाया—चारा मिलता तो क्यों भागते?

स्त्री चिढ़ी—भागे इसलिए कि वे लोग तुम-जैसे बुद्धुओं की तरह बैलों को सहलाते नहीं। खिलाते हैं, तो रगड़कर जोतते भी हैं। ये दोनों ठहरे कामचोर, भाग निकले। अब देखूँ, कहाँ से खली और चोकर मिलता है! सूखे भूसे के सिवा कुछ न दूँगी, खायें चाहे मरें।

वही हुआ। मजूर को कड़ी ताकीद कर दी गयी कि बैलों को खाली सूखा भूसा दिया जाय।

बैलों ने नाद में मुँह डाला, तो फीका-फीका। न कोई चिकनाहट, न कोई रस! क्या खायँ? आशा-भरी आँखों से द्वार की ओर ताकने लगे।

झूरी ने मजूर से कहा—थोड़ी-सी खली क्यों नहीं डाल देता बे?

'मालकिन मुझे मार ही डालेंगी।'

'चुराकर डाल आ।'

'ना दादा, पीछे से तुम भी उन्हीं की-सी कहोगे।'

(२)

दूसरे दिन झूरी का साला फिर आया और बैलों को ले चला। अबकी उसने दोनों को गाड़ी में जोता।

दो-चार बार मोती ने गाड़ी को सड़क की खाईं में गिराना चाहा; पर हीरा ने सँभाल लिया। वह ज्यादा सहनशील था।

संध्या-समय घर पहुँचकर उसने दोनों को मोटी रस्सियों से बाँधा, और कल की शरारत का मजा चखाया। फिर वही सूखा भूसा डाल दिया। अपने दोनों बैलों को खली, चूनी सब कुछ दी।

दोनों बैलों का ऐसा अपमान कभी न हुआ था। झूरी इन्हें फूल की छड़ी से भी न छूता था। उसकी टिटकार पर दोनों उड़ने लगते थे। यहाँ मार पड़ी। आहत-सम्मान की व्यथा तो थी ही, उसपर मिला सूखा भूसा! नाँद की तरफ आँखें तक न उठायीं।

दूसरे दिन गया ने बैलों को हल में जोता, पर इन दोनों ने जैसे पाँव उठाने की कसम खाली थी। वह मारते-मारते थक गया; पर दोनों ने पाँव न उठाया। एक बार जब उस निर्दयी ने हीरा की नाक में खूब डण्डे जमाये, तो मोती का गुस्सा काबू के बाहर हो गया। हल लेकर भागा। हल, रस्सी, जुआ, जोत, सब टूट-टाट कर बराबर हो गया। गले में बड़ी-बड़ी रस्सियाँ न होतीं, तो दोनों पकड़ाई में न आते।

हीरा ने मूक-भाषा में कहा—भागना व्यर्थ है।

मोती ने उत्तर दिया—तुम्हारी तो इसने जान ही ले ली थी।

अबकी बड़ी मार पड़ेगी।

'पड़ने दो, बैल का जन्म लिया है, तो मार से कहाँ तक बचेंगे?'

'गया दो आदमियों के साथ दौड़ा आ रहा है। दोनों के हाथों में लाठियाँ हैं।'

मोती बोला—कहो तो दिखा दूँ कुछ मजा मैं भी। लाठी लेकर आ रहा है।

हीरा ने समझाया—नहीं भाई! खड़े हो जाओ।

'मुझे मारेगा, तो मैं भी एक-दो को गिरा दूँगा!'

'नहीं। हमारी जाति का यह धर्म नहीं है।'

मोती दिल में ऐंठकर रह गया। गया आ पहुँचा और दोनों को पकड़कर ले चला। कुशल हुई कि उसने इस वक्त मारपीट न की, नहीं तो मोती भी पलट पड़ता। उसके तेवर देखकर गया और उसके सहायक समझ गये कि इस वक्त टाल जाना ही मसलहत है।

आज दोनों के सामने फिर वही सूखा भूसा लाया गया। दोनों चुपचाप खड़े रहे। घर के लोग भोजन करने लगे। उस वक्त छोटी-सी लड़की दो

रोटियाँ लिये निकली, और दोनों के मुँह में देकर चली गयी। उस एक रोटी से इनकी भूख तो क्या शान्त होती; पर दोनों के हृदय को मानो भोजन मिल गया। यहाँ भी किसी सज्जन का वास है। लड़की भैरो की थी। उसकी माँ मर चुकी थी। सौतेली माँ उसे मारती रहती थी, इसलिए इन बैलों से उसे एक प्रकार की आत्मीयता हो गयी थी।

दोनों दिन-भर जोते जाते, डण्डे खाते, अड़ते। शाम को थान पर बाँध दिये जाते, और रात को वही बालिका उन्हें दो रोटियाँ खिला जाती। प्रेम के इस प्रसाद की वह बरकत थी कि दो-दो गाल सूखा भूसा खाकर भी दोनों दुर्बल न होते थे, मगर दोनों की आँखों में, रोम-रोम में विद्रोह भरा हुआ था।

एक दिन मोती ने मूक-भाषा में कहा—अब तो नहीं सहा जाता, हीरा!

'क्या करना चाहते हो?'

'एकाध को सींगों पर उठाकर फेंक दूँगा।'

लेकिन जानते हो, वह प्यारी लड़की, जो हमें रोटियाँ खिलाती है, उसी की लड़की है, जो इस घर का मालिक है। वह बेचारी अनाथ न हो जायगी?'

'तो मालकिन को न फेंक दूँ। वही तो उस लड़की को मारती है।'

'लेकिन औरत जात पर सींग चलाना मना है, यह भूले जाते हो।'

'तुम तो किसी तरह निकलने ही नहीं देते। तो बताओ, आज तुड़ाकर भाग चलें।'

'हाँ, यह मैं स्वीकार करता, लेकिन इतनी मोटी रस्सी टूटेगी कैसे?'

'इसका एक उपाय है। पहले रस्सी को थोड़ा-सा चबा लो। फिर एक झटके में जाती है।'

रात को जब बालिका रोटियाँ खिलाकर चली गयी, तो दोनों रस्सियाँ चबाने लगे, पर मोटी रस्सी मुँह न आती थी। बेचारे बार-बार जोर लगाकर रह जाते थे।

सहसा घर का द्वार खुला और वही लड़की निकली। दोनों सिर झुकाकर उसका हाथ चाटने लगे। दोनों की पूँछे खड़ी हो गयीं। उसने उनके माथे सहलाये और बोली—खोले देती हूँ। चुपके से भाग जाओ, नहीं तो यहाँ लोग मार डालेंगे। आज घर में सलाह हो रही है कि इनकी नाकों में नाथ डाल दी जायँ।

उसने गराँव खोल दिया, पर दोनों चुपचाप खड़े रहे।

मोती ने अपनी भाषा में पूछा—अब चलते क्यों नहीं?

हीरा ने कहा—चलें तो; लेकिन कल इस अनाथ पर आफत आयेगी। सब इसी पर सन्देह करेंगे। सहसा बालिका चिल्लायी—दोनों फूफावाले बैल भागे जा रहे हैं। ओ दादा! दादा! दोनों बैल भागे जा रहे हैं जल्दी दौड़ो।

गया हड़बड़ाकर भीतर से निकला और बैलों को पकड़ने चला। वे दोनों भागे। गया ने पीछा किया। और भी तेज हुए। गया ने शोर मचाया। फिर गाँव के कुछ आदमियों को भी साथ लेने के लिए लौटा। दोनों मित्रों को भागने का मौका मिल गया। सीधे दौड़ते चले गये। यहाँ तक कि मार्ग का ज्ञान न रहा। जिस परिचित मार्ग से आये थे, उसका यहाँ पता न था। नये-नये गाँव मिलने लगे। तब दोनों एक खेत के किनारे खड़े होकर सोचने लगे, अब क्या करना चाहिए।

हीरा ने कहा—मालूम होता है, राह भूल गये।

'तुम भी बेतहाशा भागे। वहीं उसे मार गिराना था।'

'उसे मार गिराते, तो दुनिया क्या कहती? वह अपना धर्म छोड़ दे; लेकिन हम अपना धर्म क्यों छोड़ें?'

दोनों भूख से व्याकुल हो रहे थे। खेत में मटर खड़ी थी। चरने लगे। रह-रहकर आहट ले लेते थे, कोई आता तो नहीं है।

जब पेट भर गया, दोनों ने आजादी का अनुभव किया, तो मस्त होकर उछलने-कूदने लगे। पहले दोनों ने डकार ली। फिर सींग मिलाये और एक दूसरे को ठेलने लगे। मोती ने हीरा को कई कदम पीछे हटा दिया, यहाँ तक कि वह खाई में गिर गया। तब उसे भी क्रोध आया। सँभलकर उठा और फिर मोती से भिड़ गया। मोती ने देखा—खेल में झगड़ा हुआ चाहता है, तो किनारे हट गया।

(३)

अरे! यह क्या? कोई साँड़ डौंकता चला आ रहा है। हाँ, साँड़ ही है।

वह सामने आ पहुँचा। दोनों मित्र बगलें झाँक रहे हैं। साँड़ पूरा हाथी है। उससे भिड़ना जान से हाथ धोना है; लेकिन न भिड़ने पर भी तो जान बचती नहीं नजर आती। इन्हीं की तरफ आ भी रहा है। कितनी भयंकर सूरत है!

मोती ने मूक-भाषा में कहा—बुरे फँसे। जान बचेगी? कोई उपाय सोचो।

हीरा ने चिन्तित स्वर में कहा—अपने घमंड में भूला हुआ है। आरजू विनती न सुनेगा।

'भाग क्यों न चलें?'

'भागना कायरता है।'

'तो फिर यहीं मरो। बन्दा तो नौ-दो ग्यारह होता।'

'और जो दौड़ाये?'

'तो फिर कोई उपाय सोचो जल्द!'

'उपाय यही है कि उस पर दोनों जनें एक साथ चोट करें? मैं आगे से रगेदता हूँ, तुम पीछे से रगेदो, दोहरी मार पड़ेगी, तो भाग खड़ा होगा। मेरी ओर झपटे, तुम बगल से उसके पेट में सींग घुसेड़ देना। जान जोखिम है; पर दूसरा उपाय नहीं है।'

दोनों मित्र जान हथेलियों पर लेकर लपके। साँड़ को भी संगठित शत्रुओं से लड़ने का तजरबा न था। वह तो एक शुत्रु से मल्लयुद्ध करने का आदी था। ज्योंही हीरा पर झपटा, मोती ने पीछे से दौड़ाया। साँड़ उसकी तरफ मुड़ा, तो हीरा ने रगेदा। साँड़ चाहता था कि एक-एक करके दोनों को गिरा ले; पर ये दोनों भी उस्ताद थे। उसे यह अवसर न देते थे। एक बार साँड़ झल्लाकर हीरा का अन्त कर देने के लिए चला कि मोती ने बगल से आकर पेट में सींग भोंक दी। साँड़ क्रोध में आकर पीछे फिरा तो हीरा ने दूसरे पहलू में सींग चुभा दिया। आखिर बेचारा जख्मी होकर भागा, और दोनों मित्रों ने दूर तक उसका पीछा किया। यहाँ तक कि साँड़ बेदम होकर गिर पड़ा। तब दोनों ने उसे छोड़ दिया।

दोनों मित्र विजय के नशे में झूमते चले जाते थे।

मोती ने अपनी सांकेतिक भाषा में कहा—मेरा जी तो चाहता था कि बचा को मार ही डालूँ।

हीरा ने तिरस्कार किया—गिरे हुए बैरी पर सींग न चलाना चाहिए।

'यह सब ढोंग है। बैरी को ऐसा मारना चाहिए कि फिर न उठे।'

'अब घर कैसे पहुँचेंगे, यह सोचो।'

'पहले कुछ खा लें, तो सोचें।'

सामने मटर का खेत था ही। मोती उसमें घुस गया। हीरा मना करता रहा, पर उसने एक न सुनी। अभी दो ही चार ग्रास खाये थे कि दो आदमी लाठियाँ लिये दौड़ पड़े, और दोनों मित्रों को घेर लिया। हीरा तो मेड़ पर था, निकल गया। मोती सींचे हुए खेत में था। उसके खुर कीचड़ में धँसने लगे। न भाग सका। पकड़ लिया गया। हीरा ने देखा, संगी संकट में हैं, तो लौट पड़ा। फँसेंगे तो दोनों साथ फसेंगे। रखवालों ने उसे भी पकड़ लिया।

प्रातःकाल दोनों मित्र काँजीहौस में बन्द कर दिये गये।

(४)

दोनों मित्रों को जीवन में पहली बार ऐसा साबका पड़ा कि सारा दिन बीत गया और खाने को एक तिनका भी न मिला। समझ ही में न आता था, यह कैसा स्वामी है। इससे तो गया फिर भी अच्छा था। यहाँ कई भैंसें थीं, कई बकरियाँ, कई घोड़े, कई गधे; पर किसी के सामने चारा न था; सब जमीन पर मुरदों की तरह पड़े थे। कई तो इतने कमजोर हो गये थे कि खड़े भी न हो सकते थे। सारा दिन दोनों मित्र फाटक की ओर टकटकी लगाये ताकते रहे; पर कोई चारा लेकर आता न दिखायी दिया। तब दोनों ने दीवार की नमकीन मिट्टी चाटनी शुरू की; पर इससे क्या तृप्ति होती?

रात को भी जब कुछ भोजन न मिला, तो हीरा के दिल में विद्रोह की ज्वाला दहक उठी। मोती से बोला—अब तो नहीं रहा जाता मोती!

मोती ने सिर लटकाये हुए जवाब दिया—मुझे तो मालूम होता है, प्राण निकल रहे हैं।

'इतनी जल्द हिम्मत न हारो भाई! यहाँ से भागने का कोई उपाय निकालना चाहिए।'

'आओ दीवार तोड़ डालें।'

'मुझसे तो अब कुछ न होगा।'

'बस इसी बूते पर अकड़ते थे !'

'सारी अकड़ निकल गयी।'

बाड़े की दीवार कच्ची थी। हीरा मजबूत तो था ही, अपने नुकीले सींग दीवार में गड़ा दिये और जोर मारा, तो मिट्टी का एक चिप्पड़ निकल आया। फिर तो उसका साहस बढ़ा। उसने दौड़-दौड़कर दीवार पर चोटें कीं और हर चोट में थोड़ी-थोड़ी मिट्टी गिराने लगा।

उसी समय काँजीहौस का चौकीदार लालटेन लेकर जानवरों की हाजिरी लेने आ निकला। हीरा का यह उजड्डपन देखकर उसने उसे कई डंडे रसीद किये और मोटी-सी रस्सी से बाँध दिया।

मोती ने पड़े-पड़े कहा—आखिर मार खायी, क्या मिला ?

'अपने बूते-भर जोर तो मार लिया।'

'ऐसा जोर मारना किस काम का कि और बंधन में पड़ गये।'

'जोर तो मारता ही जाऊँगा, चाहे कितने ही बंधन पड़ते जायँ।'

'जान से हाथ धोना पड़ेगा'

'कुछ परवाह नहीं। यों भी तो मरना ही है। सोचो, दीवार खुद जाती, तो कितनी जानें बच जाती। इतने भाई यहाँ बन्द हैं। किसी के देह में जान नहीं है। दो-चार दिन और यही हाल रहा, तो सब मर जायँगे।

'हाँ, यह बात तो है। अच्छा, तो लो, फिर मैं भी जोर लगाता हूँ।'

मोता ने भी दीवार में उसी जगह सींग मारा। थोड़ी सी मिट्टीगिरी और हिम्मत बढ़ी। फिर तो वह दीवार में सींग लगाकर इस तरह जोर करने लगा, मानो किसी द्वन्द्वी से लड़ रहा है। आखिर कोई दो-घंटे की जोर-आजमाई के बाद दीवार ऊपर से लगभग एक हाथ गिर गयी। उसने दूनी शक्ति से दूसरा धक्का मारा, तो आधी दीवार गिर पड़ी।

दीवार का गिरना था कि अधमरे-से पड़े हुए सभी जानवर चेत उठे। तीनों घोड़ियाँ सरपट भाग निकलीं। फिर बकरियाँ निकलीं। इसके बाद भैंसें भी खिसक गयीं; पर गधे अभी तक ज्यों-के-त्यों खड़े थे।

हीरा ने पूछा—तुम दोनों क्यों नहीं भाग जाते ?

एक गधे ने कहा—जो कहीं फिर पकड़ लिये जायँ।

'तो क्या हरज है। अभी तो भागने का अवसर है।'

'हमें तो डर लगता है। हम यहीं पड़े रहेंगे।'

आधीरात से ऊपर जा चुकी थी। दोनों गधे अभी तक खड़े सोच रहे थे कि भागें या न भागें, और मोती अपने मित्र की रस्सी तोड़ने में लगा हुआ था। जब वह हार गया, तो हीरा ने कहा—तुम जाओ, मुझे यहीं पड़ा रहने दो। शायद कहीं भेंट हो जाय।

मोती ने आँखों में आँसू लाकर कहा—तुम मुझे इतना स्वार्थी समझते हो, । हीरा ? हम और तुम इतने दिनों एक साथ रहे हैं। आज तुम विपत्ति में पड़ गये, तो मैं तुम्हें छोड़कर अलग हो जाऊँ ?

हीरा ने कहा—बहुत मार पड़ेगी। लोग समझ जायँगे, यह तुम्हारी शरारत है।

मोती गर्व से बोला—जिस अपराध के लिए तुम्हारे गले में बंधन पड़ा, उसके लिए अगर मुझपर मार पड़े, तो क्या चिन्ता। इतना तो हो ही गया कि नौ-दस प्राणियों की जान बच गयी। वे सब तो आशीर्वाद देंगे।

यह कहते हुए मोती ने दोनों गधों को सींगों से मार-मारकर बाड़े के बाहर निकाला और तब अपने बन्धु के पास आकर सो रहा।

भोर होते ही मुंशी और चौकीदार तथा अन्य कर्मचारियों में कैसी खलबली मची, इसके लिखने की जरूरत नहीं। बस, इतना ही काफी है कि मोती की खूब मरम्मत हुई और उसे भी मोटी रस्सी से बाँध दिया गया।

(५)

एक सप्ताह तक दोनों मित्र वहाँ बँधे पड़े रहे। किसीने चारे का एक तृण भी न डाला। हाँ, एक बार पानी दिखा दिया जाता था। यही उनका आधार था। दोनों इतने दुर्बल हो गये थे कि उठा तक न जाता था; ठठरियाँ निकल आयी थीं।

एक दिन बाड़े के सामने डुग्गी बजने लगी और दोपहर होते-होते वहाँ पचास-साठ आदमी जमा हो गये। तब दोनों मित्र निकाले गये और उनकी देख-भाल होने लगी। लोग आ-आकर उनकी सूरत देखते और मन फीका करके चले जाते। ऐसे मृतक बैलों का कौन खरीदार होता ?

सहसा एक दढ़ियल आदमी, जिसकी आँखें लाल थीं और मुद्रा अत्यन्त कठोर, आया और दोनों मित्रों के कूल्हों में उँगली गोदकर मुन्शीजी से बातें करने लगा। उसका चेहरा देखकर अन्तर्ज्ञान से दोनों मित्रों के दिल काँप उठे। वह कौन है और उन्हें क्यों टटोल रहा है, इस विषय में उन्हें कोई सन्देह न हुआ। दोनों ने एक दूसरे को भीत नेत्रों से देखा और सिर झुका लिया।

हीरा ने कहा—गया के घर से नाहक भागे। अब जान न बचेगी।

मोती ने अश्रद्धा के भाव से उत्तर दिया—कहते हैं, भगवान् सबके ऊपर दया करते हैं। उन्हें हमारे ऊपर क्यों दया नहीं आती?

'भगवान् के लिए हमारा मरना-जीना दोनों बराबर है। चलो, अच्छा ही है, कुछ दिन उनके पास तो रहेंगे। एक बार भगवान् ने उस लड़की के रूप में हमें बचाया था। क्या अब न बचायेंगे?'

'यह आदमी छुरी चलायेगा। देख लेना।'

'तो क्या चिंता है? मांस, खाल, सींग, हड्डी सब किसी-न-किसी काम आ जायँगी।'

नीलाम हो जाने के दोनों मित्र उस दढ़ियल के साथ चले। दोनों की बोटी-बोटी काँप रही थी। बेचारे पाँव तक न उठा सकते थे; पर भय के मारे गिरते-पड़ते भागे जाते थे; क्योंकि वह जरा भी चाल धीमी हो जाने पर जोर से डंडा जमा देता था।

राह में गाय-बैलों का एक रेवड़ हरे-हरे हार में चरता नजर आया। सभी जानवर प्रसन्न थे, चिकने, चपल। कोई उछलता था, कोई आनन्द से बैठा पागुर करता था। कितना सुखी जीवन था इनका; पर कितने स्वार्थी हैं सब। किसी को चिन्ता नहीं कि उनके दो भाई बधिक के हाथ पड़े कैसे दुःखी हैं।

सहसा दोनों को ऐसा मालूम हुआ कि यह परिचित राह है। हाँ, इसी रास्ते से गया उन्हें ले गया था। वही खेत, वही बाग, वही गाँव मिलने लगे। प्रतिक्षण उनकी चाल तेज होने लगी। सारी थकन, सारी दुर्बलता गायब हो गयी। आह! यह लो! अपना ही हार आ गया। इसी कुएँ पर हम पुर चलाने आया करते थे; हाँ, यही कुआँ है।

मोती ने कहा—हमारा घर नगीच आ गया।

हीरा बोला—भगवान् की दया है।

'मैं तो अब घर भागता हूँ।'

'यह जाने देगा?'

'इसे मैं मार गिराता हूँ।'

'नहीं-नहीं, दौड़कर थान पर चलो। वहाँ से हम आगे न जायँगे।'

दोनों उन्मत्त होकर बछड़ों की भाँति कुलेलें करते हुए घर की ओर दौड़े। वह हमारा थान है। दोनों दौड़कर अपने थान पर आये और खड़े हो गये। दढ़ियल भी पीछे-पीछे दौड़ा चला आता था।

झूरी द्वार पर बैठा धूप खा रहा था। बैलों को देखते ही दौड़ा और उन्हें बारी-बारी से गले लगाने लगा। मित्रों की आँखों से आनन्द के आँसू बहने लगे। एक झूरी का हाथ चाट रहा था।

दढ़ियल ने जाकर बैलों की रस्सियाँ पकड़ लीं।

झूरी ने कहा—मेरे बैल हैं।

'तुम्हारे बैल कैसे? मैं मवेशीखाने से नीलाम लिये आता हूँ।'

'मैं तो समझता हूँ चुराये लिये आते हो। चुपके से चले जाओ। मेरे बैल हैं। मैं बेचूँगा तो बिकेंगे। किसीको मेरे बैल नीलाम करने का क्या अख्तियार है?'

'जाकर थाने में रपट कर दूँगा।'

'मेरे बैल हैं। इसका सबूत यह है कि मेरे द्वार पर खड़े हैं।'

दढ़ियल झल्लाकर बैलों को जबरदस्ती पकड़ ले जाने के लिए बढ़ा। उसी वक्त मोती ने सींग चलाया। दढ़ियल पीछे हटा। मोती ने पीछा किया। दढ़ियल भागा। मोती पीछे दौड़ा। गाँव के बाहर निकल जाने पर वह रुका; पर खड़ा दढ़ियल का रास्ता देख रहा था। दढ़ियल दूर खड़ा धमकियाँ दे रहा था, गालियाँ निकाल रहा था, पत्थर फेंक रहा था। और मोती विजयी शूर की भाँति उसका रास्ता रोके खड़ा था। गाँव के लोग यह तमाशा देखते थे और हँसते थे।

जब दढ़ियल हारकर चला गया, तो मोती अकड़ता हुआ लौटा।

हीरा ने कहा—मैं डर रहा था कि कहीं तुम गुस्से में आकर मार न बैठो।

'अगर वह मुझे पकड़ता, तो मैं बे-मारे न छोड़ता।'

'अब न आयेगा।'

'आयेगा तो दूर ही से खबर लूँगा। देखूँ, कैसे ले जाता है।'

'जो गोली मरवा दे?'

'मर जाऊँगा; पर उसके काम तो न आऊँगा।'

'हमारी जान को कोई जान ही नहीं समझता।'

'इसीलिए कि हम इतने सीधे होते हैं।'

जरा देर में नादों में खली, भूसा, चोकर और दाना भर दिया गया और दोनों मित्र खाने लगे। झूरी खड़ा दोनों को सहला रहा था और बीसों लड़के तमाशा देख रहे थे। सारे गाँव में उछाह-सा मालूम होता था।

उसी समय मालकिन ने आकर दोनों के माथे चूम लिये।

रियासत का दीवान

महाशय मेहता उन अभागों में थे, जो अपने स्वामी को प्रसन्न नहीं रख सकते थे। वह दिल से अपना काम करते थे और चाहते थे कि उनकी प्रशंसा हो। वह यह भूल जाते थे कि वह काम के नौकर तो हैं ही, अपने स्वामी के सेवक भी हैं। जब उनके अन्य सहकारी स्वामी के दरबार में हाजिरी देते थे, तो वह बेचारे दफ्तर में बैठे कागजों से सिर मारा करते थे। इसका फल यह था कि स्वामी के सेवक तो तरक्कियाँ पाते थे, पुरस्कार और पारितोषिक उड़ाते थे। और काम के सेवक मेहता किसी-न-किसी अपराध में निकाल दिये जाते थे। ऐसे कटु अनुभव उन्हें अपने जीवन में कई बार हो चुके थे; इसलिए अबकी जब राजा साहब सतिया ने उन्हें एक अच्छा पद प्रदान किया, तो उन्होंने प्रतिज्ञा की कि अब वह भी स्वामी का रुख देखकर काम करेंगे और उनके स्तुति-गान में ही भाग्य की परीक्षा करेंगे। और इस प्रतिज्ञा को उन्होंने कुछ इस तरह निभाया कि दो साल भी न गुजरे थे कि राजा साहब ने उन्हें अपना दीवान बना लिया। एक स्वाधीन राज्य की दीवानी का क्या कहना! वेतन तो ५००) मासिक ही था; मगर अख्तियार बड़े लम्बे। राई का पर्वत करो, या पर्वत से राई, कोई पूछनेवाला न था। राजा साहब भोग-विलास में पड़े रहते थे, राज्य-संचालन का सारा भार मि० मेहता पर था। रियासत के सभी अमले और कर्मचारी दण्डवत् करते, बड़े-बड़े रईस नजराने देते, यहाँ तक कि रानियाँ भी उनकी खुशामद करतीं। राजा साहब उग्र प्रकृति के मनुष्य थे, जैसे प्रायः राजे होते हैं। दुर्बलों के सामने शेर, सबलों के सामने भीगी बिल्ली। कभी मि० मेहता को डाँट-फटकार भी बताते; पर मेहता ने अपनी सफाई में एक शब्द भी मुँह से निकालने की कसम खा ली थी। सिर झुकाकर सुन लेते। राजा साहब की क्रोधाग्नि ईंधन न पाकर शान्त हो जाती।

गर्मियों के दिन थे। पोलिटिकल एजेन्ट का दौरा था। राज्य में उनके स्वागत की तैयारियाँ हो रही थीं। राजा साहब ने मेहता को बुलाकर कहा—मैं चाहता हूँ, साहब बहादुर यहां से मेरा कलमा पढ़ते हुए जायँ।

मेहता ने सिर झुकाकर विनीत भाव से कहा—चेष्टा तो ऐसी ही कर रहा हूँ, अन्नदाता !

'चेष्टा तो सभी करते हैं; मगर वह चेष्टा कभी सफल नहीं होती। मैं चाहता हूँ, तुम दृढ़ता के साथ कहो—ऐसा ही होगा।'

'ऐसा ही होगा।'

'रुपये की परवाह मत करो।'

'जो हुक्म।'

'कोई शिकायत न आये; वरना तुम जानोगे।'

'वह हुजूर को धन्यवाद देते जायँ तो सही।'

'हाँ, मैं यही चाहता हूँ।'

'जान लड़ा दूँगा, दीनबन्धु !'

'अब मुझे संतोष है।'

इधर तो पोलिटिकल एजेन्ट का आगमन था, उधर मेहता का लड़का जयकृष्ण गर्मियों की छुट्टियाँ मनाने माता-पिता के पास आया। किसी विश्व-विद्यालय में पढ़ता था। एक बार १९३२ में कोई उग्र भाषण करने के जुर्म में ६ महीने की सजा काट चुका था। मि० मेहता की नियुक्ति के बाद जब वह पहली बार आया था तो राजा साहब ने उसे खास तौर पर बुलाया था, और उससे जी खोलकर बातें की थीं, उसे अपने साथ शिकार खेलने ले गये और नित्य उसके साथ टेनिस खेला करते थे। जयकृष्ण पर राजा साहब के साम्य-वादी विचारों का बड़ा प्रभाव पड़ा था। उसे ज्ञात हुआ कि राजा साहब केवल देशभक्त ही नहीं, क्रांति के समर्थक भी हैं। रूस और फ्रांस की क्रांति पर दोनों में खूब बहस हुई थी। लेकिन अबकी यहाँ उसने कुछ और ही रंग देखा। रियासत के हर एक किसान और जमींदार से जबरन् चन्दा वसूल किया जा रहा था। पुलिस गाँव-गाँव चन्दा उगाहती फिरती थी। रकम दीवान साहब नियत करते थे। वसूल करना पुलिस का काम था। फरियाद की कहीं सुनवाई न थी। चारों ओर त्राहि-त्राहि मची हुई थी। हजारों मजदूर सरकारी इमारतों की सफाई, सजावट और सड़कों की मरम्मत में बेगार कर रहे थे। बनियों से डण्डों के जोर से रसद जमा की जा रही थी। जयकृष्ण को

आश्चर्य हो रहा था कि यह क्या हो रहा है। राजा साहब के विचार और व्यवहार में इतना अन्तर कैसे हो गया। कहीं ऐसा तो नहीं है कि महाराज को इन अत्याचारों की खबर ही न हो, या उन्होंने जिन तैयारियों का हुक्म दिया हो, उनकी तामील में कर्मचारियों ने अपनी कारगुजारी की धुन में यह अनर्थ कर डाला हो। रात-भर तो उसने किसी तरह जब्त किया। प्रातःकाल उसने मेहताजी से पूछा—आपने राजा साहब को इन अत्याचारों की सूचना नहीं दी ?

मेहताजी को स्वयं इस अनीति से ग्लानि हो रही थी। वह स्वभावतः दयालु मनुष्य थे; लेकिन परिस्थितियों ने उन्हें अशक्त कर रखा था। दुःखित स्वर में बोले—राजा साहब का यही हुक्म है, तो क्या किया जाय ?

'तो आपको ऐसी दशा में अलग हो जाना चाहिए था। आप जानते हैं, यह जो कुछ हो रहा है, उसकी सारी जिम्मेदारी आपके सिर लादी जा रही है, प्रजा आप ही को अपराधी समझती है।'

'मैं मजबूर हूँ। मैंने कर्मचारियों से बार-बार संकेत किया है कि यथासाध्य किसी पर सख्ती न की जाय; लेकिन हरेक स्थान पर मैं मौजूद तो नहीं रह सकता। अगर प्रत्यक्ष रूप से हस्तक्षेप करूँ, तो शायद कर्मचारी लोग महाराज से मेरी शिकायत कर दें। ये लोग ऐसे ही अवसरों की ताक में तो रहते ही हैं। इन्हें तो जनता को लूटने का कोई बहाना चाहिए। जितना सरकारी कोष में जमा करते हैं, उससे ज्यादा अपने घर में रख लेते हैं। मैं कुछ नहीं कर सकता।'

जयकृष्ण ने उत्तेजित होकर कहा—तो आप इस्तीफा क्यों नहीं दे देते ?

मेहता लज्जित होकर बोले—बेशक, मेरे लिए मुनासिब तो यही था; लेकिन जीवन में इतने धक्के खा चुका हूँ कि अब और सहने की शक्ति नहीं रही। यह निश्चय है कि नौकरी करके मैं अपने को बेदाग नहीं रख सकता। धर्म और अधर्म, सेवा और परमार्थ के झमेलों में पड़ कर मैंने बहुत ठोकरें खायीं। मैंने देख लिया कि दुनिया दुनियादारों के लिए है, जो अवसर और काल देख कर काम करते हैं। सिद्धान्तवादियों के लिए यह अनुकूल स्थान नहीं है।

जयकृष्ण ने तिरस्कार-भरे स्वर में पूछा—मैं राजा साहब के पास जाऊँ ?

'क्या तुम समझते हो, राजा साहब से ये बातें छिपी हैं ?'

'संभव है, प्रजा की दुःख-कथा सुनकर उन्हें कुछ दया आये।'

मि० मेहता को इसमें क्या आपत्ति हो सकती थी ? वह तो खुद चाहते थे कि किसी तरह अन्याय का बोझ उनके सिर से उतर जाय। हाँ, यह भय अवश्य था कि कहीं जयकृष्ण की सत्प्रेरणा उनके लिए हानिकर न हो, और कहीं उन्हें इस सम्मान और अधिकार से हाथ न धोना पड़े। बोले—यह खयाल रखना कि तुम्हारे मुँह से कोई ऐसी बात न निकल जाय, जो महाराज को अप्रसन्न कर दे।

जयकृष्ण ने उन्हें आश्वासन दिया कि वह ऐसी कोई बात न करेगा। क्या वह इतना नादान है ? मगर उसे क्या खबर थी कि आज के महाराजा साहब वह नहीं हैं, जो एक साल पहले थे, या संभव है, पोलिटिकल एजेंट के चले जाने के बाद वह फिर हो जायँ। वह न जानता था कि उनके लिए क्रांति और आतंक की चर्चा भी उसी तरह विनोद की वस्तु थी, जैसी हत्या या बलात्कार या जाल की वारदातें, या रूप के बाजार के आकर्षक समाचार। जब उसने ड्योढ़ी पर पहुँचकर अपनी इत्तला करायी, तो मालूम हुआ कि महाराज इस समय अस्वस्थ हैं, लेकिन वह लौट ही रहा था कि महाराज ने उसे बुला भेजा। शायद उससे सिनेमा-संसार के ताजे समाचार पूछना चाहते थे। उसके सलाम पर मुसकराकर बोले—तुम खूब आये भई, कहो एम० सी० सी० का मैच देखा या नहीं ? मैं तो इन बखेड़ों में ऐसा फँसा कि जाने की नौबत नहीं आयी। अब तो यही दुआ कर रहा हूँ कि किसी तरह एजेंट साहब खुश-खुश रुखसत हो जायँ। मैंने जो भाषण लिखवाया है, वह जरा तुम भी देख लो। मैंने इन राष्ट्रीय आन्दोलनों की खूब खबर ली है और हरिजनोद्धार पर भी छींटे उड़ा दिये हैं।

जयकृष्ण ने अपने आवेश को दबाकर कहा—राष्ट्रीय आन्दोलनों की आपने खबर ली, यह अच्छा किया; लेकिन हरिजनोद्धार को तो सरकार भी पसन्द करती है, इसीलिए उसने महात्मा गाँधी को रिहा कर दिया, और जेल में भी उन्हें इस आंदोलन के सम्बन्ध में लिखने-पढ़ने और मिलने-जुलने की पूरी स्वाधीनता दे रखी थी।

राजा साहब ने तात्विक मुसकान के साथ कहा—तुम जानते नहीं हो, यह सब प्रदर्शन-मात्र है। दिल में सरकार समझती है कि यह भी राजनैतिक आंदोलन है। वह इस रहस्य को बड़े ध्यान से देख रही है। लॉयलटी में जितना प्रदर्शन

करो, चाहे वह औचित्य की सीमा के पार हो क्यों न हो जाय, उसका रंग चोखा ही होता है—उसी तरह जैसे कवियों की विरुदावली से हम फूल उठते हैं, चाहे वह हास्यास्पद ही क्यों न हो। हम ऐसे कवि को खुशामदी समझें, अहमक भी समझ सकते हैं; पर उससे अप्रसन्न नहीं हो सकते। वह हमें जितना ही ऊँचा उठाता है, उतना ही वह हमारी दृष्टि में ऊँचा उठता जाता है।

राजा साहब ने अपने भाषण की एक प्रति मेज की दराज से निकालकर जयकृष्ण के सामने रख दी, पर जयकृष्ण के लिए इस भाषण में अब कोई आकर्षण न था। अगर वह सभा-चतुर होता, तो जाहिरदारी के लिए ही इस भाषण को बड़े ध्यान से पढ़ता, उसके शब्द-विन्यास और भावोत्कर्ष की प्रशंसा करता, और उसकी तुलना महाराजा बीकानेर या पटियाला के भाषणों से करता; पर अभी दरबारी दुनिया की रीति-नीति से अनभिज्ञ था। जिस चीज को बुरा समझता था, उसे बुरा कहता था और जिस चीज को अच्छा समझता था, उसे अच्छा कहता था। बुरे को अच्छा और अच्छे को बुरा कहना अभी उसे न आया था। उसने भाषण पर सरसरी नजर डालकर उसे मेज पर रख दिया, और अपनी स्पष्टवादिता का बिगुल फूँकता हुआ बोला—मैं राजनीति के रहस्यों को भला क्या समझ सकता हूँ लेकिन मेरा ख्याल है कि चाणक्य के ये वंशज इन चालों को खूब समझते हैं और कृत्रिम भावों का उन पर कोई असर नहीं होता बल्कि इससे आदमी उनकी नजरों में और भी गिर जाता है। अगर एजेंट को मालूम हो जाय कि उसके स्वागत के लिए प्रजा पर कितने जुल्म ढाये जा रहे हैं, तो शायद वह यहाँ से प्रसन्न होकर न जाय। फिर, मैं तो प्रजा की दृष्टि देखता हूँ। एजेंट की प्रसन्नता आपके लिए लाभप्रद हो सकती है, प्रजा को तो उससे हानि ही होगी।

राजा साहब अपने किसी काम की आलोचना नहीं सह सकते थे। उनका क्रोध पहले जिरहों के रूप में निकलता, फिर तर्क का आकार धारण कर लेता और अन्त में भूकम्प के आवेश से उबल पड़ता था, जिससे उनका स्थूल शरीर, कुर्सी, मेज, दीवारें और छत सभी में भीषण कम्पन होने लगता था। तिरछी आँखों से देखकर बोले—क्या हानि होगी, जरा सुनूँ ?

जयकृष्ण समझ गया कि क्रोध की मशीनगन चक्कर में है और घातक

स्फोट होने ही वाला है। सँभलकर बोला—इसे आप मुझसे ज्यादा समझ सकते हैं।

'नहीं, मेरी बुद्धि इतनी प्रखर नहीं है।'

'आप बुरा मान जायँगे।'

'क्या तुम समझते हो, मैं बारूद का ढेर हूँ ?'

'बेहतर है, आप इसे न पूछें।'

'तुम्हें बतलाना पड़ेगा।'

और आप-ही-आप उनकी मुट्ठियाँ बँध गयीं।

'तुम्हें बतलाना पड़ेगा, इसी वक्त!'

जयकृष्ण यह धौंस क्यों सहने लगा ? क्रिकेट के मैदान में राजकुमारों पर रोब जमाया करता था, बड़े-बड़े हुक्काम की चुटकियाँ लेता था। बोला—अभी आपके दिल में पोलिटिकल एजेन्ट का कुछ भय है, आप प्रजा पर जुल्म करते डरते हैं। जब वह आपके एहसानों से दब जायगा, आप स्वच्छन्द हो जायँगे और प्रजा की फरियाद सुननेवाला कोई न रहेगा।

राजा साहब प्रज्वलित नेत्रों से ताकते हुए बोले—मैं एजेन्ट का गुलाम नहीं हूँ कि उससे डरूँ, कोई कारण नहीं है कि मैं उससे डरूँ, बिलकुल कारण नहीं है। मैं पोलिटिकल एजेन्ट की इसीलिए खातिर करता हूँ कि वह हिज़ मैजेस्टी का प्रतिनिधि है। मेरे और हिज़ मैजेस्टी के बीच में भाई-चारा है, एजेन्ट केवल उनका दूत है। मैं केवल नीति का पालन कर रहा हूँ। मैं विलायत जाऊँ, तो हिज़ मैजेस्टी भी इसी तरह मेरा सत्कार करेंगे! मैं डरूँ क्यों ? मैं अपने राज्य का स्वतन्त्र राजा हूँ। जिसे चाहूँ, फाँसी दे सकता हूँ। मैं किसी से क्यों डरने लगा ? डरना नामर्दों का काम है, मैं ईश्वर से भी नहीं डरता। डर क्या वस्तु है, यह मैंने आज तक नहीं जाना। मैं तुम्हारी तरह कालेज का मुँहफट छात्र नहीं हूँ कि क्रांति और आजादी की हाँक लगाता फिरूँ। तुम क्या जानो, क्रांति क्या चीज है ? तुमने केवल उसका नाम सुन लिया है। उसके लाल दृश्य आँखों से नहीं देखे। बन्दूक की आवाज सुनकर तुम्हारा दिल काँप उठेगा। क्या तुम चाहते हो, मैं एजेन्ट से कहूँ—प्रजा तबाह है, आपके आने की जरूरत नहीं। मैं इतना आतिथ्य-शून्य नहीं हूँ।

मैं अन्धा नहीं हूँ, अहमक नहीं हूँ, प्रजा की दशा का मुझे तुमसे कहीं अधिक ज्ञान है, तुमने उसे बाहर से देखा है, मैं उसे नित्य भीतर से देखता हूँ। तुम मेरी प्रजा को क्रांति का स्वप्न दिखाकर उसे गुमराह नहीं कर सकते। तुम मेरे राज्य में विद्रोह और असंतोष के बीज नहीं बो सकते। तुम्हें अपने मुँह पर ताला लगाना होगा, तुम मेरे विरुद्ध एक शब्द भी मुँह से नहीं निकाल सकते, चूँ भी नहीं कर सकते........

डूबते हुए सूरज की किरणें महराबी दीवानखाने के रंगीन शीशों से होकर राजा साहब के क्रोधोन्मत्त मुख-मण्डल को और भी रंजित कर रही थीं। उनके बाल नीले हो गये थे, आँखें पीली, चेहरा लाल और देह हरी। मालूम होता था, प्रेतलोक का कोई पिशाच है। जयकृष्ण की सारी उद्दण्डता हवा हो गयी। राजा साहब को इस उन्माद की दशा में उसने कभी न देखा था, लेकिन इसके साथ ही उसका आत्म गौरव इस ललकार का जवाब देने के लिए व्याकुल हो रहा था। जैसे विनय का जवाब विनय है, वैसे ही क्रोध का जवाब क्रोध है, जब वह आतङ्क और भय, अदब और लिहाज के बन्धनों को तोड़कर निकल पड़ता है।

उसने भी राजा साहब को आग्नेय नेत्रों से देखकर कहा—मैं अपनी आँखों से यह अत्याचार देखकर मौन नहीं रह सकता।

राजा साहब ने आवेश से खड़े होकर, मानो उसकी गरदन पर सवार होते हुए कहा—तुम्हें यहाँ जबान खोलने का कोई हक नहीं है।

'प्रत्येक विचारशील मनुष्य को अन्याय के विरुद्ध आवाज उठाने का हक है। आप वह हक मुझसे नहीं छीन सकते!'

'मैं सब कुछ कर सकता हूँ।'

'आप कुछ नहीं कर सकते।'

'मैं तुम्हें अभी जेल में बन्द कर सकता हूँ।'

'आप मेरा बाल भी नहीं बाँका कर सकते।'

इसी वक्त मि० मेहता बदहवास-से कमरे में आये और जयकृष्ण की ओर कोप-भरी आँखें उठाकर बोले—कृष्णा, निकल जा यहाँ से, अभी मेरी आँखों से दूर हो जा, और खबरदार! फिर मुझे अपनी सूरत न दिखाना। मैं तुझ-जैसे

कपूत का मुँह नहीं देखना चाहता। जिस थाल में खाता है, उसी में छेद करता है, बेअदब कहीं का! अब अगर जबान खोली, तो मैं तेरा खून पी जाऊँगा।

जयकृष्ण ने हिंसा-विक्षिप्त पिता को घृणा की आँखों से देखा और अकड़ता हुआ, गर्व से सिर उठाये, दीवनखाने के बाहर निकल गया।

राजा साहब ने कोच पर लेटकर कहा—बदमाश आदमी है, पल्ले सिरे का बदमाश! मैं नहीं चाहता कि ऐसा खतरनाक आदमी एक क्षण भी रियासत में रहे। तुम उससे जाकर कहो, इसी वक्त यहाँ से चला जाय वरना उसके हक में अच्छा न होगा। मैं केवल आपकी मुरौवत से गम खा गया, नहीं तो इसी वक्त इसका मजा चखा सकता था। केवल आपकी मुरौवत ने हाथ पकड़ लिया। आपको तुरन्त निर्णय करना पड़ेगा, इस रियासत की दीवानी या लड़का। अगर दीवानी चाहते हो, तो तुरन्त उसे रियासत से निकाल दो और कह दो कि फिर कभी मेरी रियासत में पाँव न रखे। लड़के से प्रेम है, तो आज ही रियासत से निकल जाइए। आप यहाँ से कोई चीज नहीं ले जा सकते, एक पाई की भी चीज नहीं। जो कुछ है, वह रियासत की है। बोलिए, क्या मंजूर है?

मि० मेहता ने क्रोध के आवेश में जयकृष्ण को डाँट तो बतलायी थी पर यह न समझे थे कि मामला इतना तूल खींचेगा। एक क्षण के लिए वह सन्नाटे में आ गये। सिर झुकाकर परिस्थिति पर विचार करने लगे—राजा उन्हें मिट्टी में मिला सकता है। वह यहाँ बिलकुल बेबस हैं, कोई उनका साथी नहीं, कोई उनकी फरियाद सुननेवाला नहीं। राजा उन्हें भिखारी छोड़ देगा। इस अपमान के साथ निकाले जाने की कल्पना करके वह काँप उठे। रियासत में उनके वैरियों की कमी न थी। सब-के-सब मूसलों ढोल बजायेंगे। जो आज उनके सामने भीगी बिल्ली बने हुए हैं, कल शेरों की तरह गुर्रायेंगे। फिर इस उमर में अब उन्हें नौकर ही कौन रखेगा। निर्दयी संसार के सामने क्या फिर उन्हें हाथ फैलाना पड़ेगा? नहीं, इससे तो यह कहीं अच्छा है कि वह यहीं पड़े रहें। कम्पित स्वर में बोले—मैं आज ही उसे घर से निकाल देता हूँ, अन्नदाता!

'आज नहीं, इसी वक्त!'

'इसी वक्त निकाल दूँगा।'

'हमेशा के लिए?'

'हमेशा के लिए।'

'अच्छी बात है, जाइए और आध घंटे के अन्दर मुझे सूचना दीजिए।'

मि० मेहता घर चले, तो मारे क्रोध के उनके पाँव काँप रहे थे। देह में आग-सी लगी हुई थी। इस लौंडे के कारण आज उन्हें कितना अपमान सहना पड़ा। गधा चला है यहाँ अपने साम्यवाद का राग अलापने। अब बचा को मालूम होगा, जबान पर लगाम न रखने का क्या नतीजा होता है। मैं क्यों उसके पीछे गली-गली ठोकरें खाऊँ। हाँ, मुझे यह पद और सम्मान प्यारा है। क्यों न प्यारा हो? इसके लिए बरसों एड़ियाँ रगड़ी हैं, अपना खून और पसीना एक किया है। यह अन्याय बुरा जरूर लगता है; लेकिन बुरी लगने की यही एक बात तो नहीं है। और हजारों बातें भी तो बुरी लगती हैं। जब किसी बात का उपाय मेरे पास नहीं, तो इस मुआमले के पीछे क्यों अपनी जिन्दगी खराब करूँ?

उन्होंने घर आते-ही-आते पुकारा—जयकृष्ण!

सुनीता ने कहा—जयकृष्ण तो तुमसे पहले ही राजा साहब के पास गया था। तब से यहाँ कब आया?

'अब तक यहाँ नहीं आया! वह तो मुझसे पहले ही चल चुका था।'

वह फिर बाहर आये और नौकरों से पूछना शुरू किया। अब भी उसका पता न था। मारे डर के कहीं छिप रहा होगा और राजा ने आध घंटे में इत्तला देने का हुक्म दिया है। यह लौंडा न जाने क्या करने पर लगा हुआ है। आप तो जायगा ही, मुझे भी अपने साथ ले डूबेगा।

सहसा एक सिपाही ने एक पुरजा लाकर उनके हाथ में रख दिया। अच्छा, यह तो जयकृष्ण की लिखावट है। क्या कहता है—इस दुर्दशा के बाद मैं इस रियासत में एक क्षण भी नहीं रह सकता। मैं जाता हूँ। आपको अपना पद और मान अपनी आत्मा से ज्यादा प्रिय है, आप खुशी से उसका उपभोग कीजिए। मैं फिर आपको तकलीफ देने न आऊँगा। अम्माँ से मेरा प्रणाम कहिएगा।

मेहता ने पुरजा लाकर सुनीता को दिखाया और खिन्न होकर बोले—इसे न-जाने कब समझ आयेगी, लेकिन बहुत अच्छा हुआ। अब लाला को मालूम होगा, दुनिया में किस तरह रहना चाहिए। बिना ठोकरें खाये, आदमी की आँखें नहीं खुलतीं। मैं ऐसे तमाशे बहुत खेल चुका, अब इस खुराफात के पीछे अपना शेष जीवन नहीं बरबाद करना चाहता—और तुरन्त राजा साहब को सूचना देने चले।

(२)

दम-के-दम में सारी रियासत में यह समाचार फैल गया। जयकृष्ण अपने शील-स्वभाव के कारण जनता में बड़ा प्रिय था। लोग बाजारों और चौरस्तों पर खड़े हो-होकर इस काण्ड पर आलोचना करने लगे—अजी, वह आदम नहीं था भाई, उसे किसी देवता का अवतार समझो। महाराज के पास जाकर बेधड़क बोला—अभी बेगार बन्द कीजिए वरना शहर में हंगामा हो जायगा। राजा साहब की तो जबान बन्द हो गयी। बगलें झाँकने लगे। शेर है शेर! उम्र तो कुछ नहीं पर आफत का परकाला है। और वह यह बेगार बन्द कराके रहता, हमेशा के लिए। राजा साहब को भागने की राह न मिलती। सुना, घिघियाने लगे थे। मुदा इसी बीच में दीवान साहब पहुँच गये और उसे देश-निकाले का हुक्म दे दिया। यह हुक्म सुनकर उसको आँखों में खून उतर आया था, लेकिन बाप का अपमान न किया।

'ऐसे बाप को तो गोली मार देनी चाहिए। बाप है या दुश्मन!'

'वह कुछ भी हो, है तो बाप ही।'

सुनीता सारे दिन बैठी रोती रही। जैसे कोई उसके कलेजे में बर्छियाँ चुभो रहा था। बेचारा न-जाने कहाँ चला गया। अभी जलपान तक न किया था। चूल्हें में जाय ऐसा भोग-विलास, जिसके पीछे उसे बेटे को त्यागना पड़े। हृदय में ऐसा उद्वेग उठा कि इसी दम पति और घर को छोड़कर रियासत से निकल जाय, जहाँ ऐसे नर-पिशाचों का राज्य है। इन्हें अपनी दीवानी प्यारी है, उसे लेकर रहें। वह अपने पुत्र के साथ उपवास करेगी, पर उसे आँखों से देखती तो रहेगी।

एकाएक वह उठकर महारानी के पास चली। वह उनसे फरियाद करेगी। उन्हें भी ईश्वर ने बालक दिये हैं। उन्हें क्या एक अभागिनी माता पर दया न आवेगी? इसके पहले भी वह कई बार महारानी के दर्शन कर चुकी थी। उसका मुरझाया हुआ मन आशा से लहलहा उठा।

लेकिन रनिवास में पहुँची तो देखा कि महारानी के तीवर भी बदले हुए हैं। उसे देखते ही बोली—तुम्हारा लड़का बड़ा उजड्ड है। जरा भी अदब नहीं। किससे किस तरह बात करनी चाहिए, इसका जरा भी सलीका नहीं। न-जाने विश्वविद्यालय में क्या पढ़ा करता है। आज महाराज से उलझ बैठा। कहता था कि बेगार बन्द कर दीजिए और एजेंट साहब के स्वागत-सत्कार कि कोई तैयारी न कीजिए। इतनी समझ भी उसे नहीं है कि इस तरह कोई राजा कै घंटे गद्दी पर रह सकता है। एजेंट बहुत बड़ा अफसर न सही; लेकिन है तो बादशाह का प्रतिनिधि। उसका आदर-सत्कार करना तो हमारा धर्म है। फिर ये बेगार किस दिन काम आयेंगे। उन्हें रियासत से जागीरें मिली हुई हैं। किस दिन के लिए? प्रजा में विद्रोह की आग भड़काना कोई भले आदमी का काम है? जिस पत्तल में खाओ, उसी में छेद करो। महाराज ने दीवान साहब का मुलाहजा किया, नहीं तो उसे हिरासत में डलवा देते। अब बच्चा नहीं है। खासा पाँच हाथ का जवान है। सब कुछ देखता और समझता है। हम हाकिमों से वैर करें, तो कै दिन निबाह हो। उसका क्या बिगड़ता है। कहीं सौ-पचास की चाकरी पा जायगा। यहाँ तो करोड़ों की रियासत बरबाद हो जायगी।

सुनीता ने आँचल फैलाकर कहा—महरानी बहुत सत्य कहती हैं; पर अब तो उसका अपराध क्षमा कीजिए। बेचारा लज्जा और भय के मारे घर नहीं गया। न-जाने किधर चला गया। हमारे जीवन का यही एक अवलम्ब है, महारानी! हम दोनों रो-रोकर मर जायँगे। आंचल फैलाकर आपसे भीख माँगती हूँ, उसको क्षमा-दान दीजिए। माता के हृदय को आपसे ज्यादा और कौन समझेगा, आप महाराज से सिफारिश कर दें........

महारानी ने अपनी बड़ी-बड़ी आँखों से उसकी ओर देखा मानो वह कोई बड़ी अनोखी बात कह रही हो और अपने रँगे हुए होठों पर अँगूठियों से जगमगाती हुई उँगली रखकर बोलीं—क्या कहती हो, सुनीता देवी! उस युवक की महराज से सिफारिश करूँ, जो हमारी जड़ खोदने पर तुला हुआ है!

आस्तीन में साँप पालूँ ? तुम किस मुँह से ऐसी बात कहती हो ? और महाराज मुझे क्या कहेंगे ? ना, मैं इसके बीच में न पड़ूँगी। उसने जो बीज बोये हैं, उनका वह फल खाये। मेरा लड़का ऐसा नालायक होता, तो उसका मुँह न देखती। और तुम ऐसे बेटे की सिफारिश करती हो ?

सुनीता ने आँखों में आँसू भरकर कहा—महारानी, ऐसी बातें आपके मुँह से शोभा नहीं देतीं।

महारानी मसनद टेककर उठ बैठीं और तिरस्कार-स्वर में बोलीं—अगर तुमने सोचा था कि मैं तुम्हारे आँसू पोंछूँगी, तो तुमने भूल की। हमारे द्रोही की सिफारिश लेकर हमारे ही पास आना, इसके सिवा और क्या है कि तुम उसके अपराध को बाल-क्रीड़ा समझ रही हो। अगर तुमने उसके अपराध की भीषणता का ठीक अनुमान किया होता, तो मेरे पास कभी न आतीं। जिसने इस रियासत का नमक खाया हो, वह रियासत के द्रोही की पीठ सहलाये! वह स्वयं राजद्रोही है। इसके सिवा और क्या कहूँ ?

सुनीता भी गर्म हो गयी। पुत्र-स्नेह म्यान के बाहर निकल आया। बोली—राजा का कर्त्तव्य केवल अपने अफसरों को प्रसन्न करना नहीं है। प्रजा को पालने की जिम्मेदारी इससे कहीं बढ़कर है।

उसी समय महाराज ने कमरे में कदम रक्खा। रानी ने उठकर स्वागत किया और सुनीता सिर झुकाये निस्पंद खड़ी रह गयी।

राजा ने व्यंग्यपूर्ण मुसकान के साथ पूछा—यह कौन महिला तुम्हें राजा के कर्त्तव्य का उपदेश दे रही थी ?

रानी ने सुनीता की ओर आँख मारकर कहा—यह दीवान साहब की धर्मपत्नी हैं। राजा साहब की त्यौरियाँ चढ़ गयीं। ओठ चबाकर बोले—जब माँ ऐसी पैनी छुरी है, तो लड़का क्यों न जहर का बुझाया हुआ हो ? देवीजी, मैं तुमसे यह शिक्षा नहीं लेना चाहता कि राजा का अपनी प्रजा के साथ क्या धर्म है। यह शिक्षा मुझे कई पीढ़ियों से मिलती चली आयी है। बेहतर हो कि तुम किसी से यह शिक्षा प्राप्त कर लो कि स्वामी के प्रति उसके सेवक का क्या धर्म है, और जो नमकहराम है, उसके साथ स्वामी को कैसा व्यवहार करना चाहिए।

यह कहते हुए राजा साहब उसी उन्माद की दशा में बाहर चले गये।

मि० मेहता घर जा रहे थे कि राजा साहब ने कठोर स्वर में पुकारा—सुनिए मि० मेहता! आपके सपूत तो विदा हो गये लेकिन मुझे अभी मालूम हुआ कि आपकी देवीजी राजद्रोह के मैदान में उनसे भी दो कदम आगे हैं; बल्कि मैं तो कहूँगा, वह केवल रेकर्ड है, जिसमें देवीजी की आवाज ही बोल रही है। मैं नहीं चाहता कि जो व्यक्ति रियासत का संचालक हो, उसके साये में रियासत के विद्रोहियों को आश्रय मिले। आप खुद इस दोष से मुक्त नहीं हो सकते। यह हरगिज मेरा अन्याय न होगा, यदि मैं यह अनुमान कर लूँ कि आपही ने यह मन्त्र फूँका है।

मि० मेहता अपनी स्वामि-भक्ति पर यह आक्षेप न सह सके। व्यथित कंठ से बोले—यह तो मैं किस जबान से कहूँ कि दीनबन्धु इस विषय में मेरे साथ अन्याय कर रहे हैं; लेकिन मैं सर्वथा निर्दोष हूँ और मुझे यह देखकर दुःख होता है कि मेरी वफादारी पर यों संदेह किया जा रहा है।

'वफादारी केवल शब्दों से नहीं होती।'

'मेरा खयाल है कि मैं उसका प्रमाण दे चुका।'

'नयी-नयी दलीलों के नये-नये प्रमाणों की जरूरत है। आपके पुत्र के लिए जो दण्ड-विधान था, वही आपकी स्त्री के लिए भी है। मैं इसमें किसी भी तरह का उज्र नहीं चाहता। और इसी वक्त इस हुक्म की तामील होनी चाहिए।'

'लेकिन दीनानाथ....'

'मैं एक शब्द भी नहीं सुनना चाहता।'

'मुझे कुछ निवेदन करने की आज्ञा न मिलेगी ?'

'बिलकुल नहीं, यह मेरा आखिरी हुक्म है।'

मि० मेहता यहाँ से चले, तो उन्हें सुनीता पर बेहद गुस्सा आ रहा था। इन सभों को न-जाने क्या सनक सवार हो गयी है। जयकृष्ण तो खैर बालक है, बेसमझ है, इस बुढ़िया को क्या सूझी। न-जाने रानी साहब से जाकर क्या कह आयी। किसी को मुझसे हमदर्दी नहीं, सब अपनी-अपनी धुन में मस्त हैं। किस मुसीबत से मैं अपनी जिन्दगी के दिन काट रहा हूँ, यह कोई नहीं समझता। कितनी निराशा और विपत्तियों के बाद यहाँ जरा निश्चिन्त हुआ था कि इन सभों ने यह नया तूफान खड़ा कर दिया। न्याय और सत्य का ठीका क्या हमीं ने

लिया है ? यहाँ भी वही हो रहा है, जो सारी दुनिया में हो रहा है। कोई नयी बात नहीं है। संसार में दुर्बल और दरिद्र होना पाप है। इसकी सजा से कोई बच ही नहीं सकता। बाज कबूतर पर कभी दया नहीं करता। सत्य और न्याय का समर्थन मनुष्य की सज्जनता और सभ्यता का एक अंग है। बेशक इससे कोई इन्कार नहीं कर सकता; लेकिन जिस तरह और सभी प्राणी केवल मुख से इसका समर्थन करते हैं, क्या उसी तरह हम भी नहीं कर सकते। और जिन लोगों का पक्ष लिया जाय, वे भी तो कुछ इसका महत्व समझें। आज राजा साहब इन्हीं बेगारों से जरा हँसकर बातें करें, तो वे अपने सारे दुखड़े भूल जायँगे और उल्टे हमारे ही शत्रु बन जायँगे। शायद सुनीता महारानी के पास जाकर अपने दिल का बुखार निकाल आयी है। गधी यह नहीं समझती कि दुनिया में किसी तरह मान-मर्यादा का निर्वाह करते हुए जिन्दगी काट लेना ही हमारा धर्म है। अगर भाग्य में यश और कीर्ति बदी होती, तो इस तरह दूसरों की गुलामी क्यों करता ? लेकिन समस्या यह है कि इसे भेजूँ कहाँ ! मैके में कोई है नहीं, मेरे घर में कोई है नहीं। उँह ! अब मैं इस चिन्ता में कहाँ तक मरूँ ? जहाँ जी चाहे जाय, जैसा किया है वैसा भोगे।

वह इसी क्षोभ और ग्लानि की दशा में घर में गये और सुनीता से बोले—आखिर तुम्हें भी वही पागलपन सूझा, जो उस लौंडे को सूझा था। मैं कहता हूँ, आखिर तुम्हें कभी समझ आयेगी या नहीं ? क्या सारे संसार के सुधार का बीड़ा हमीं ने उठाया है ? कौन राजा ऐसा है, जो अपनी प्रजा पर जुल्म न करता हो, उनके स्वत्वों का अपहरण न करता हो। राजा ही क्यों, हम-तुम सभी तो दूसरों पर अन्याय कर रहे हैं। तुम्हें क्या हक है कि तुम दर्जनों खिदमतगार रखो और उन्हें जरा-जरा-सी बात पर सजा दो ? न्याय और सत्य निरर्थक शब्द है, जिनकी उपयोगिता इसके सिवा और कुछ नहीं कि बुद्धुओं की गर्दन मारी जाय और समझदारों की वाह-वाह हो। तुम और तुम्हारा लड़का उन्हीं बुद्धुओं में हैं। और इसका दण्ड तुम्हें भोगना पड़ेगा। महाराज का हुक्म है कि तुम तीन घंटे के अन्दर रियासत से निकल जाओ, नहीं तो पुलिस आकर तुम्हे निकाल देगी। मैंने तो तय कर लिया है कि राजा साहब की इच्छा के विरुद्ध एक शब्द भी मुँह से न निकालूँगा। न्याय का पक्ष लेकर

देख लिया है। हैरानी और अपमान के सिवा और कुछ हाथ न आया। जिनकी हिमाकत की थी, वे आज भी उसी दशा में हैं; बल्कि उससे भी और बदतर। मैं साफ कहता हूँ कि मैं तुम्हारी उद्दण्डताओं का तावान देने के लिए तैयार नहीं। मैं गुप्त रूप से तुम्हारी सहायता करता रहूँगा। इसके सिवा मैं और कुछ नहीं कर सकता।

सुनीता ने गर्व के साथ कहा—मुझे तुम्हारी सहायता की जरूरत नहीं। कहीं भेद खुल जाय, तो दीन-बन्धु तुम्हारे ऊपर कोप का वज्र गिरा दें। तुम्हें अपना पद और सम्मान प्यारा है, उसका आनन्द से उपभोग करो। मेरा लड़का और कुछ न कर सकेगा, तो पाव-भर आटा तो कमा ही लायेगा। मैं भी देखूँगी कि तुम्हारी स्वामि-भक्ति कब तक निभती है और कब तक तुम अपनी आत्मा की हत्या करते हो।

मेहता ने तिलमिलाकर कहा—क्या तुम चाहती हो कि फिर उसी तरह चारों तरफ ठोकरें खाता फिरूँ ?

सुनीता ने घाव पर नमक छिड़का—नहीं, कदापि नहीं। अब तक तो मैं समझती थी, तुम्हें ठोकरें खाने में मजा आता है तथा पद और अधिकार से भी मूल्यवान् कोई वस्तु तुम्हारे पास है, जिसकी रक्षा के लिए तुम ठोकरें खाना अच्छा समझते हो। अब मालूम हुआ; तुम्हें अपना पद अपनी आत्मा से भी प्रिय है। फिर क्यों ठोकरें खाओ; मगर कभी-कभी अपना कुशल-समाचार तो भेजते रहोगे, या राजा साहब की आज्ञा लेनी पड़ेगी ?

'राजा साहब इतने न्याय-शून्य हैं कि मेरे पत्र-व्यवहार में रोक-टोक करें ?'

'अच्छा ! राजा साहब में इतनी आदमीयत है ? मुझे तो विश्वास नहीं आता।'

'तुम अब भी अपनी गलती पर लज्जित नहीं हो ?'

'मैंने कोई गलती नहीं की। मैं तो ईश्वर से चाहती हूँ कि जो मैंने आज किया, वह बार-बार करने का मुझे अवसर मिले।'

मेहता ने अरुचि के साथ पूछा—तुमने कहाँ जाने का इरादा किया है ?

'जहन्नुम में !'

'गलती आप करती हो, गुस्सा मुझ पर उतारती हो ?'

'मैं तुम्हें इतना निर्लज्ज न समझती थी !'

'मैं भी इसी शब्द का तुम्हारे लिए प्रयोग कर सकता हूँ।'

'केवल मुख से, मन से नहीं।'

मि० मेहता लज्जित हो गये।

(३)

जब सुनीता की विदाई का समय आया, तो स्त्री-पुरुष दोनों खूब रोये और एक तरह से सुनीता ने अपनी भूल स्वीकार कर ली। वास्तव में इस बेकारी के दिनों में मेहता ने जो कुछ किया, वही उचित था, बेचारे कहाँ मारे-मारे फिरते।

पोलिटिकल एजेन्ट साहब पधारे और कई दिनों तक खूब दावतें खायीं और खूब शिकार खेला। राजा साहब ने उनकी तारीफ की। उन्होंने राजा साहब की तारीफ की। राजा साहब ने उन्हें अपनी लायलटी का विश्वास दिलाया, उन्होंने सतिया राज्य को आदर्श कहा और राजा साहब को न्याय और सेवा का अवतार स्वीकार किया; और तीन दिन में रियासत को ढाई लाख की चपत देकर विदा हो गये।

मि० मेहता का दिमाग आसमान पर था। सभी उनकी कारगुजारी की प्रशंसा कर रहे थे। एजेण्ट साहब तो उनकी दक्षता पर मुग्ध हो गये। उन्हें 'राय साहब' की उपाधि मिली और उनके अधिकारों में भी वृद्धि हुई। उन्होंने अपनी आत्मा को उठाकर ताक पर रख दिया था। उनकी यह साधना कि महाराज और एजेण्ट दोनों उनसे प्रसन्न रहें, सम्पूर्ण रीति से पूरी हो गयी। रियासत में ऐसा स्वामि-भक्त सेवक दूसरा न था।

राजा साहब अब कम-से-कम तीन साल के लिए निश्चिन्त थे। एजेन्ट खुश है, तो फिर किसका भय! कामुकता, लम्पटता और भाँति-भाँति के दुर्व्यसनों की लहर प्रचण्ड हो उठी। सुन्दरियों की टोह लगाने के लिए सुराग-रसानी का एक विभाग खुल गया, जिसका सम्बन्ध सीधे राजा साहब से था। एक बूढ़ा खुर्राट, जिसका पेशा हिमालय की परियों को फँसाकर राजाओं को लूटना था, और जो इसी पेशे की बदौलत राज-दरबारों में पूजा जाता था, इस विभाग का अध्यक्ष बना दिया गया। नयी-नयी चिड़ियाँ आने लगीं। भय, लोभ और सम्मान, सभी अस्त्रों से शिकार खेला जाने लगा; लेकिन एक ऐसा अवसर भी पड़ा, जहाँ इस तिकड़म की सारी सामूहिक और वैयक्तिक चेष्टाएँ निष्फल हो गयीं और गुप्त विभाग ने निश्चय किया कि इस बालिका को किसी तरह उड़ा लाया जाय। और इस महत्वपूर्ण कार्य के सम्पादन का भार मि० मेहता पर रखा गया, जिनसे ज्यादा स्वामि-भक्त सेवक रियासत में दूसरा न था। उनके ऊपर महाराजा साहब को पूरा विश्वास था। दूसरों के विषय में सन्देह था कि कहीं रिश्वत लेकर शिकार बहका दें, या भण्डाफोड़ कर दें, या अमानत में खयानत कर बैठें। मेहता की ओर से किसी तरह की उन बातों की शंका न थी। रात को नौ बजे उनकी तलबी हुई—अन्नदाता ने हजूर को याद किया है।

मेहता साहब ड्योढ़ी पर पहुँचे, तो राजा साहब पाईबाग में टहल रहे थे। मेहता को देखते ही बोले—आइए मि० मेहता, आपसे एक खास बात में सलाह लेनी है। यहाँ कुछ लोगों की राय है कि सिंहद्वार के सामने आपकी एक प्रतिमा स्थापित की जाय, जिससे चिरकाल तक आपकी यादगार कायम रहे। आपको तो शायद इसमें कोई आपत्ति न होगी। और यदि हो भी, तो लोग इस विषय में आपकी अवज्ञा करने पर भी तैयार हैं। सतिया की आपने जो अमूल्य सेवा की है, उसका पुरस्कार तो कोई क्या दे सकता है, लेकिन जनता के हृदय में आपसे जो श्रद्धा है, उसे तो वह किसी-न-किसी रूप में प्रकट ही करेगी।

मेहता ने बड़ी नम्रता से कहा—यह अन्नदाता की गुण-ग्राहकता है, मैं तो एक तुच्छ सेवक हूँ। मैंने जो कुछ किया, यह इतना ही है कि नमक का हक अदा करने का सदैव प्रयत्न किया, मगर मैं इस सम्मान के योग्य नहीं हूँ।

राजा साहब ने कृपालु भाव से हंसकर कहा—आप योग्य हैं या नहीं, इसका निर्णय आपके हाथ में नहीं है मि० मेहता, आपकी दीवानी यहाँ न चलेगी। हम आपका सम्मान नहीं कर रहे हैं, अपनी भक्ति का परिचय दे रहे हैं। थोड़े दिनों में न हम रहेंगे, न आप रहेंगे, उस वक्त भी यह प्रतिमा अपनी मूक वाणी से कहती रहेगी कि पिछले लोग अपने उद्धारकों का आदर करना जानते थे। मैंने लोगों से कह दिया है कि चन्दा जमा करें। एजेण्ट ने अबकी जो पत्र लिखा है, उसमें आपको खास तौर से सलाम लिखा है।

मेहता ने जमीन में गड़कर कहा—यह उनकी उदारता है, मैं तो जैसा आपका सेवक हूँ, वैसा ही उनका भी सेवक हूँ।

राजा साहब कई मिनट तक फूलों की बहार देखते रहे। फिर इस तरह बोले, मानो कोई भूली हुई बात याद आ गयी हो—तहसील खास में एक गाँव लगनपुर है, आप कभी वहाँ गये हैं?

'हाँ अन्नदाता! एक बार गया हूँ, वहाँ एक धनी साहूकार है। उसी के दीवानखाने में ठहरा था। अच्छा आदमी है।'

'हाँ, ऊपर से बहुत अच्छा आदमी है; लेकिन अन्दर से पक्का पिशाच। आपको शायद मालूम न हो, इधर कुछ दिनों से महारानी का स्वास्थ्य बहुत बिगड़ गया है और मैं सोच रहा हूँ कि उन्हें किसी सैनेटोरियम में भेज दूँ। वहाँ सब तरह की चिन्ताओं एवं झंझटों से मुक्त होकर वह आराम से रह सकेंगी; लेकिन रनिवास में एक नारी का रहना लाजिम है। अफसरों के साथ उनकी लेडियाँ भी आती हैं; और भी कितने अंग्रेज मित्र अपनी लेडियों के साथ मेरे मेहमान होते रहते हैं। कभी राजे-महाराजे भी रानियों के साथ आ जाते हैं। रानी के बगैर लेडियों का आदर-सत्कार कौन करेगा? मेरे लिए यह वैयक्तिक प्रश्न नहीं, राजनैतिक समस्या है, और शायद आप भी मुझसे सहमत होंगे; इसलिए मैंने दूसरी शादी करने का इरादा कर लिया है। इस साहूकार की एक लड़की है, जो कुछ दिनों अजमेर में शिक्षा पा चुकी है। मैं एक बार उस गाँव से होकर निकला, तो मैंने उसे अपने घर की छत पर खड़े देखा। मेरे मन में तुरन्त भावना उठी कि अगर यह रमणी रनिवास में आ जाय, तो रनिवास की शोभा बढ़ जाय। मैंने महारानी की अनुमति लेकर साहूकार के पास सन्देशा भेजा; किन्तु मेरे द्रोहियों ने उसे कुछ ऐसी पट्टी पढ़ा दी कि उसने मेरा सन्देशा स्वीकार न किया। कहता है, कन्या का विवाह हो चुका है। मैंने कहला भेजा, इसमें कोई हानि नहीं, मैं तावान देने को तैयार हूँ, लेकिन वह दुष्ट बराबर इन्कार किये जाता है। आप जानते हैं, प्रेम असाध्य रोग है। आपको भी शायद इसका कुछ-न-कुछ अनुभव हो। बस, यह समझ लीजिए कि जीवन निरानन्द हो रहा है। नींद और आराम हराम है। भोजन से अरुचि हो गयी है। अगर कुछ दिन यही हाल रहा, तो समझ लीजिए कि मेरी जान पर बन आयेगी। सोते-जागते वही मूर्ति आँखों के सामने नाचती रहती है। मन को समझाकर हार गया और अब विवश होकर मैंने कूटनीति से काम लेने का निश्चय किया है। प्रेम और समर में सब कुछ क्षम्य है। मैं चाहता हूँ, आप थोड़े-से मातबर आदमियों को लेकर जायँ और उस रमणी को किसी तरह ले आयें। खुशी से आये खुशी से, बल से आये बल से, इसकी चिन्ता नहीं। मैं अपने राज्य का मालिक हूँ। इसमें जिस वस्तु पर मेरी इच्छा हो, उसपर किसी दूसरे व्यक्ति का नैतिक या सामाजिक स्वत्व नहीं हो सकता। यह समझ लीजिए कि आप ही मेरे प्राणों की रक्षा कर सकते हैं। कोई दूसरा ऐसा आदमी नहीं है, जो इस काम को इतने सुचारु रूप से पूरा कर दिखाये। आपने राज्य की बड़ी-बड़ी सेवाएँ की हैं। यह उस यज्ञ की पूर्णाहुति होगी और आप जन्म-जन्मान्तर तक राजवंश के इष्टदेव समझे जायँगे।

मि० मेहता का मरा हुआ आत्म-गौरव एकाएक सचेत हो गया। जो रक्त चिरकाल से प्रवाह शून्य हो गया था, उसमें सहसा उद्रेक हो उठा। त्योरियाँ चढ़ाकर बोले—तो आप चाहते हैं, मैं उसे किडनैप करूँ?

राजा साहब ने उनके तेवर देखकर आग पर पानी डालते हुए कहा—कदापि नहीं मि० मेहता, आप मेरे साथ घोर अन्याय कर रहे हैं! मैं आपको अपना प्रतिनिधि बनाकर भेज रहा हूँ। कार्य-सिद्धि के लिए आप जिस नीति से चाहे, काम ले सकते हैं। आपको पूरा अधिकार है।

मि० मेहता ने और भी उत्तेजित होकर कहा—मुझसे ऐसा पाजीपन नहीं हो सकता।

राजा साहब की आँखों से चिनगारियाँ निकलने लगीं।

'अपने स्वामी की आज्ञा-पालन करना पाजीपन है?'

'जो आज्ञा नीति और धर्म के विरुद्ध हो, उसका पालन करना बेशक पाजीपन है।'

'किसी स्त्री से विवाह का प्रस्ताव करना नीति और धर्म के विरुद्ध है?'

'इसे आप विवाह कहकर 'विवाह' शब्द को कलंकित करते हैं। यह बलात्कार है!'

'आप अपने होश में हैं?'

'खूब अच्छी तरह !'

'मैं आपको धूल में मिला सकता हूँ !'

'तो आपकी गद्दी भी सलामत न रहेगी !'

'मेरी नेकियों का यही बदला है, नमकहराम ?'

'आप अब शिष्टता की सीमा से आगे बढ़े जा रहे हैं; राजा साहब ! मैंने अब तक अपनी आत्मा की हत्या की है और आपके हर एक जा और बेजा हुक्म की तामील की है; लेकिन आत्मसेवा की भी एक हद होती है, जिसके आगे कोई भला आदमी नहीं जा सकता। आपका यह कृत्य जघन्य है और इसमें जो व्यक्ति आपका सहायक हो, वह इसी योग्य है कि उसकी गर्दन काट ली जाय। मैं ऐसी नौकरी पर लानत भेजता हूँ।'

यह कहकर वह घर आये और रातो-रात बोरिया-बकचा समेटकर रियासत से निकल गये; मगर इसके पहले सारा वृत्तान्त लिखकर उन्होंने एजेण्ट के पास भेज दिया।

मुफ्त का यश

उन दिनों संयोग से हाकिम-जिला एक रसिक सज्जन थे। इतिहास और पुराने सिक्कों की खोज में उन्होंने अच्छी ख्याति प्राप्त कर ली थी। ईश्वर जाने दफ़्तर के सूखे कामों से उन्हें ऐतिहासिक छान-बीन के लिए कैसे समय मिल जाता था। यहाँ तो जब किसी अफसर से पूछिए, तो वह यही कहता है—'मारे काम के मरा जाता हूँ, सिर उठाने की फ़ुरसत नहीं मिलती।' शायद शिकार और सैर भी उनके काम में शामिल है ? उन सज्जन की कीर्तियाँ मैंने देखी थीं और मन में उनका आदर करता था; लेकिन उनकी अफसरी किसी प्रकार की घनिष्ठता में बाधक थी। मुझे यह संकोच था कि अगर मेरी ओर से पहले हुई तो लोग यही कहेंगे कि इसमें मेरा कोई स्वार्थ है, और मैं किसी दशा में भी यह इलजाम अपने सिर नहीं लेना चाहता। मैं तो हुक्काम की दावतों और सार्वजनिक उत्सवों में नेवता देने का भी विरोधी हूँ, और जब कभी सुनता हूँ कि किसी अफसर को किसी आम जलसे का सभापति बनाया गया या कोई स्कूल, औषधालय या विधवाश्रम किसी गवर्नर के नाम से खोला गया, तो अपने देश-बन्धुओं की दास-मनोवृत्ति पर घण्टों अफसोस करता हूँ; मगर जब एक दिन हाकिम-जिला ने खुद मेरे नाम एक रुक्का भेजा कि मैं आपसे मिलना चाहता हूँ; क्या आप मेरे बँगले पर आने का कष्ट स्वीकार करेंगे, तो मैं बड़े दुविधे में पड़ गया। क्या जवाब दूँ ? अपने दो-एक मित्रों से सलाह ली। उन्होंने कहा—'साफ लिख दीजिए, मुझे फ़ुरसत नहीं। वह हाकिम-जिला होंगे, तो अपने घर के होंगे, कोई सरकारी वा जाब्ते का काम होता, तो आपका जाना अनिवार्य था; लेकिन निजी मुलाकात के लिए जाना आपकी शान के खिलाफ है। आखिर वह खुद आपके मकान पर क्यों नहीं आये ? इससे क्या उनकी शान में बट्टा लगा जाता था ? इसी-लिए तो खुद नहीं आये कि वह हाकिम-जिला हैं। इन अहमक हिन्दुस्तानियों को कब यह समझ आयेगी कि दफ़्तर के बाहर वे भी वैसे ही साधारण मनुष्य हैं, जैसे हम या आप। शायद ये लोग अपनी घरवालियों से भी अफसरी जताते होंगे। अपना पद उन्हें कभी नहीं भूलता।'

एक मित्र ने, जो लतीफों के चलते-फिरते तिजोरी हैं, हिन्दुस्तानी अफसरों के विषय में कई बड़ी मनोरञ्जक घटनाएँ सुनायीं। एक अफसर साहब ससुराल गये। शायद स्त्री को विदा कराना था। जैसा आम रिवाज है, ससुरजी ने पहले ही वादे पर लड़की को विदा करना उचित न समझा। कहने लगे—बेटा, इतने दिनों के बाद आयी है, अभी कैसे विदा कर दूँ? भला, छः महीने तो रहने दो। उधर धर्मपत्नीजी ने भी नाइन से सन्देशा कहला भेजा—अभी मैं नहीं जाना चाहती? आखिर माता-पिता से भी तो मेरा कोई नाता है। कुछ तुम्हारे हाथ बिक थोड़े ही गयी हूँ? दामाद साहब अफसर थे, जामे से बाहर हो गये। तुरन्त घोड़े पर बैठे और सदर की राह ली। दूसरे ही दिन ससुरजी पर सम्मन जारी कर दिया। बेचारा बूढ़ा आदमी तुरन्त लड़की को साथ लेकर दामाद की सेवा में जा पहुँचा। तब जाके उसकी जान बची। ये लोग ऐसे मिथ्याभिमानी होते हैं, और फिर तुम्हें हाकिम-जिला से लेना ही क्या है? अगर तुम कोई विद्रोहात्मक गल्प वा लेख लिखोगे, तो फौरन गिरफ्तार कर लिये आओगे। हाकिम-जिला जरा भी मुरौवत न करेंगे। कह देंगे—यह गवर्नमेंट का हुक्म है, मैं क्या करूँ? अपने लड़के के लिए कानूनगोई या नायब तहसीलदारी की लालसा तुम्हें है नहीं। व्यर्थ क्यों दौड़े जाओ।

लेकिन, मुझे मित्रों की यह सलाह पसन्द न आयी। एक भला आदमी जब निमन्त्रण देता है, तो केवल इसलिए अस्वीकार कर देना कि हाकिम-जिला ने भेजा है, मुटमर्दी है। बेशक हाकिम साहब मेरे घर आ जाते, तो उनकी शान कम न होती। उदार हृदयवाला आदमी बेतकल्लुफ चला आता; लेकिन भाई, जिले की अफसरी बड़ी चीज है। और एक उपन्यासकार की हस्ती ही क्या है। इंगलैंड या अमेरिका में गल्प लेखकों और उपन्यासकारों की मेज पर निमंत्रित होने में प्रधान मंत्री भी अपना गौरव समझेगा, हाकिम-जिला की तो गिनती ही क्या है? लेकिन यह भारतवर्ष है, जहाँ हरएक रईस के दरबार में कवि-सम्राटों का एक जत्था रईस के कीर्तिगान के लिए जमा रहता था और आज भी ताजपोशी में हमारे लेखक-वृन्द बिना बुलाये राजाओं की खिदमत में हाजिर होते हैं, कसीदे पेश करते हैं और इनाम के लिए हाथ पसारते हैं। तुम ऐसे कहाँ के बड़े वह हो, कि हाकिम-ज़िला तुम्हारे घर चला आये। जब

तुममें इतनी अकड़ और तुनुकमिजाजी है, तो वह तो जिले का बादशाह है। अगर उसे कुछ अभिमान भी हो, तो उचित है। इसे उसकी कमजोरी कहो, बेहूदगी कहो, मूर्खता कहो, उजड्डुता कहो, फिर भी उचित है। देवता होना गर्व की बात है; लेकिन मनुष्य होना भी अपराध नहीं।

और मैं तो कहता हूँ—ईश्वर को धन्यवाद दो कि हाकिम-जिला तुम्हारे घर नहीं आये; वरना तुम्हारी कितनी भद होती। उनके आदर सत्कार का सामान तुम्हारे पास कहाँ था? गत की एक कुर्सी भी तो नहीं है। उन्हें क्या तीन टाँगोंवाले सिंहासन पर बैठाते या मटमैले जाजिम पर? तीन पैसे की चौबीस बीड़ियाँ पीकर दिल खुश कर लेते हो। है सामर्थ्य रुपये के दो सिगार खरीदने की? तुम तो इतना भी नहीं जानते कि वह सिगार मिलता कहाँ है; उसका नाम क्या है। अपना भाग्य सराहो कि अफसर साहब तुम्हारे घर नहीं आये और तुम्हें बुला लिया। चार-पाँच रुपये बिगड़ भी जाते और लज्जित भी होना पड़ता। और कहीं तुम्हारे परम दुर्भाग्य और पापों के दण्ड-स्वरूप उनकी धर्म-पत्नी भी उनके साथ होतीं, तब तो तुम्हें धरती में समा जाने के सिवा और कोई ठिकाना न था। तुम या तुम्हारी धर्मपत्नी उस महिला का सत्कार कर सकती थीं? तुम्हारी तो घिग्घी बँध जाती साहब, बदहवास हो जाते! वह तुम्हारे दीवानखाने तक ही न रहती जिसे तुमने गरीबामऊ ढंग से सजा रखा है। वहाँ तुम्हारी गरीबी अवश्य है; पर फूहड़पन नहीं। अन्दर तो पग-पग पर फूहड़पन के दृश्य नजर आते। तुम अपने में फटे-पुराने पहनकर और अपनी विपन्नता में मगन रह कर जिन्दगी बसर कर सकते हो; लेकिन कोई भी आत्माभिमानी आदमी यह पसन्द नहीं कर सकता कि उसकी दुरवस्था दूसरों के लिए विनोद की वस्तु बने। इन लेडी साहबा के सामने तो तुम्हारी जबान बंद हो जाती।

चुनाँचे मैंने हाकिम-जिला का निमन्त्रण स्वीकार कर लिया और यद्यपि उनके स्वभाव में कुछ अनावश्यक अफसरी की शान थी; लेकिन उनके स्नेह और उदारता ने उसे यथासाध्य प्रकट न होने दिया। कम-से-कम उन्होंने मुझे शिकायत का कोई मौका न दिया। अफ़सराना प्रकृति को तब्दील करना उनकी शक्ति के बाहर था।

मैंने, इस प्रसंग को कोई महत्व देने की कोई बात भी न थी, महत्व न

दिया। उन्होंने मुझे बुलाया, मैं चला गया। कुछ गप-शप किया और लौट आया। किसी से इसकी जिक्र करने की जरूरत ही क्या? मानो भाजी खरीदने बाजार गया था।

लेकिन टोहियों ने जाने कैसे टोह लगा लिया। विशेष समुदायों में यह चर्चा होने लगी कि हाकिम जिला से मेरी बड़ी गहरी मैत्री है, और वह मेरा बड़ा सम्मान करते हैं। अतिशयोक्ति ने मेरा सम्मान और भी बढ़ा दिया। यहाँ तक मशहूर हुआ कि वह मुझसे सलाह लिये बगैर कोई फैसला या रिपोर्ट नहीं लिखते।

कोई भी समझदार आदमी इस ख्याति से लाभ उठा सकता था। स्वार्थ में आदमी बावला हो जाता है। तिनके का सहारा ढूँढ़ता फिरता है। ऐसों को विश्वास दिलाना कुछ मुश्किल न था कि मेरे द्वारा उनका काम निकल सकता है; लेकिन मैं ऐसी बातों से घृणा करता हूँ। सैकड़ों व्यक्ति अपनी कथाएं लेकर मेरे पास आये। किसी के साथ पुलिस ने बेजा ज्यादती की थी। कोई इन्कमटैक्स वालों की सख्तियों से दुखी था, किसी की यह शिकायत थी कि दफ्तर में उसकी हकतलफी हो रही है और उसके पीछे के आदमियों को दनादन तरक्कियाँ मिल रही हैं। उसका नम्बर आता है, तो कोई परवाह नहीं करता। इस तरह का कोई-न-कोई प्रसंग नित्य ही मेरे पास आने लगा; लेकिन मेरे पास उन सबके लिए एक ही जवाब था—मुझसे कोई मतलब नहीं।

एक दिन मैं अपने कमरे में बैठा था, कि मेरे बचपन के एक सहपाठी मित्र आ टपके। हम दोनों एक ही मकतब में पढ़ने जाया करते थे। कोई ४५ साल की पुरानी बात है। मेरी उम्र १६ साल से अधिक न थी। वह भी लगभग इसी उम्र के रहे होंगे; लेकिन मुझसे कहीं बलवान और हृष्ट-पुष्ट। मैं जहीन था, वह निरे कौदन। मौलवी साहब उनसे हार गये थे, और उन्हें सबक पढ़ाने का भार मुझ पर डाल दिया था। अपने से दुगुने व्यक्ति को पढ़ाना मैं अपने लिए गौरव की बात समझता था और खूब मन लगा कर पढ़ाता था। फल यह हुआ कि मौलवी साहब की छड़ी जहाँ असफल रही, वहाँ मेरा प्रेम सफल हो गया। बलदेव चल निकला, खालिकबारी तक जा पहुँचा, मगर इस बीच में मौलवी साहब का स्वर्गवास हो गया और वह शाखा टूट गयी। उनके छात्र

भी इधर-उधर हो गये। तब से बलदेव को मैंने केवल दो-तीन बार रास्ते में देखा, (मैं अब भी वही सींकिया पहलवान हूँ और वह अब भी वही भीमकाय) राम-राम हुई, क्षेम-कुशल पूछा और अपनी-अपनी राह चले गये।

मैंने उनसे हाथ मिलाते हुए कहा—आओ भाई बलदेव, मजे में तो हो? कैसे याद किया, क्या करते हो आजकल?

बलदेव ने व्यथित कंठ से कहा—जिन्दगी के दिन पूरे कर रहे हैं भाई, और क्या। तुमसे मिलने की बहुत दिनों से इच्छा थी। याद करो वह मकतब-वाली बात, जब तुम मुझे पढ़ाया करते थे। तुम्हारी बदौलत चार अक्षर पढ़ गया और अपनी जमींदारी का काम सँभाल लेता हूँ, नहीं तो मूर्ख ही बना रहता। तुम मेरे गुरु हो भाई, सच कहता हूँ; मुझ-जैसे गधे को पढ़ाना तुम्हारा ही काम था। न-जाने क्या बात थी कि मौलवी साहब से सबक पढ़कर अपनी जगह पर आया नहीं कि बिलकुल साफ। तुम जो पढ़ाते थे, वह बिना याद किये ही याद हो जाता था। तुम तब भी बड़े जहीन थे।

यह कहकर उन्होंने मुझे सगर्व-नेत्रों से देखा।

मैं बचपन के साथियों को देख कर फूल उठता हूँ। सजल नेत्र होकर बोला—मैं तो जब तुम्हें देखता हूँ, तो यही जी में आता है कि दौड़कर तुम्हारे गले लिपट जाऊँ। ४५ वर्ष का युग मानो बिलकुल गायब हो जाता है। वह मकतब आँखों के सामने फिरने लगता है, और बचपन सारी मनोहर-ताओं के साथ ताजा हो जाता है।

बलदेव ने भी द्रवित कंठ से उत्तर दिया—मैंने तो भाई, तुम्हें सदैव अपना इष्टदेव समझा है। जब तुम्हें देखता हूँ, तो छाती गज-भर की हो जाती है कि वह मेरा बचपन का संगी जा रहा है, जो समय आ पड़ने पर कभी दगा न देगा। तुम्हारी बड़ाई सुन-सुनकर मन-ही-मन प्रसन्न हो जाता हूँ; लेकिन यह बताओ, क्या तुम्हें खाना नहीं मिलता? कुछ खाते-पीते क्यों नहीं? सूखते क्यों जाते हो? घी न मिलता हो, तो दो-चार कनस्टर भिजवा दूँ। अब तुम भी बूढ़े हुए, खूब डटकर खाया करो। अब तो देह में जो कुछ तेज और बल है, वह केवल भोजन के अधीन है। मैं तो अब भी सेर-भर दूध और पाव-भर घी उड़ाये जाता हूँ। इधर थोड़ा मक्खन भी खाने लगा हूँ। जिन्दगी-

भर बाल-बच्चों के लिए मर मिटे। अब कोई यह भी नहीं पूछता कि तुम्हारी तबीअत कैसी है। अगर आज कंधा डाल दूँ, तो कोई एक लोटे पानी को न पूछे। इसलिए खूब खाता हूँ और सबसे ज्यादा काम करता हूँ। घर पर अपना रोब बना हुआ है। वही जो तुम्हारा जेठा लड़का है, उसपर पुलिस ने एक झूठा मुकदमा चला दिया है। जवानी के मद में किसी को कुछ समझता नहीं। है भी अच्छा खासा पहलवान। दरोगाजी से एक बार कुछ कहा सुनी हो गयी। तब से घात में लगे हुए थे। इधर गाँव में एक डाका पड़ गया। दारोगाजी ने तहकीकात में उसे भी फाँस लिया। आज एक सप्ताह से हिरासत में है। मुकदमा मुहम्मद खलील, डिप्टी, के इजलास में है और मुहम्मद खलील और दारोगाजी की दाँत-कटी रोटी है। अवश्य सजा हो जायगी। अब तुम्हीं बचाओ, तो उसकी जान बच सकती है। और कोई आशा नहीं। सजा तो जो होगी वह होगी ही,इज्जत भी खाक में मिल जायगी। तुम जाकर हाकिम-जिला से इतना कह दो कि मुकदमा झूठा है, आप खुद चल कर तहकीकात कर लें। बस, देखो भाई, बचपन के साथी हो, 'नहीं' न करना। जानता हूँ, तुम इन मुआमलों में नहीं पड़ते और तुम्हारे-जैसे आदमी को पड़ना भी न चाहिए। तुम प्रजा की लड़ाई लड़ने वाले जीव हो, तुम्हें सरकार के आदमियों से मेल-जोल बढ़ाना उचित नहीं; नहीं तो जनता की नजरों से गिर जाओगे। लेकिन यह घर का मुआमला है। इतना समझ लो कि मुआमला बिलकुल झूठ न होता, तो मैं कभी तुम्हारे पास न आता। लड़के की माँ रो-रोकर जान दिये डालती है, बहू ने दाना-पानी छोड़ रखा है। सात दिन से घर में चूल्हा नहीं जला। मैं तो थोड़ा-सा दूध पी लेता हूँ, लेकिन दोनों सास-बहू तो निराहार पड़ी हुई हैं। अगर बच्चा को सजा हो गयी, तो दोनों मर जायँगी। मैंने यही कहकर उन्हें ढाढ़स दिया है कि जब तक हमारा छोटा भाई सलामत है, कोई हमारा बाल बाँका नहीं कर सकता। तुम्हारी भाभी ने तुम्हारी एक पुस्तक पढ़ी है। वह तो तुम्हें देवतुल्य समझती है, और जब कोई बात होती है, तुम्हारी नजीर देकर मुझे लज्जित करती रहती है। मैं भी साफ कह देता हूँ—मैं उस छोकरे की-सी बुद्धि कहाँ से लाऊँ ? तुम्हें उसकी नजरों से गिराने के लिए तुम्हें छोकरा, मरियल सभी कुछ कहता हूँ, पर तुम्हारे सामने मेरा रंग नहीं जमता।

मैं बड़े संकट में पड़ गया। मेरी ओर से जितनी आपत्तियाँ हो सकती थीं, उन सबका जवाब बलदेवसिंह ने पहले ही से दे दिया था। उनको फिर दुहराना व्यर्थ था। इसके सिवा कोई जवाब न सूझा कि मैं जाकर साहब से कहूँगा। हाँ, इतना मैंने अपनी तरफ से और बढ़ा दिया कि मुझे आशा नहीं कि मेरे कहने का विशेष खयाल किया जाय; क्योंकि सरकारी मुआमलों में हुक्काम हमेशा अपने मातहतों का पक्ष लिया करते हैं।

बलदेवसिंह ने प्रसन्न होकर कहा—इसकी चिन्ता नहीं, तकदीर में जो लिखा है, वह तो होगा ही। बस, तुम जाकर कह-भर दो।

'अच्छी बात है।'

'तो कल जाओगे ?'

'हाँ, अवश्य जाऊँगा।'

'यह जरूर कहना कि आप चलकर तहकीकात कर लें।'

'हाँ, यह जरूर कहूँगा।'

'और यह भी कह देना कि बलदेवसिंह मेरा भाई है।'

'झूठ बोलने के लिए मुझे मजबूर न करो।'

'तुम मेरे भाई नहीं हो ? मैंने तो हमेशा तुम्हें अपना भाई समझा है।'

'अच्छा, यह भी कह दूँगा।'

बलदेवसिंह को विदा करके मैंने अपना लेख समाप्त किया और आराम से भोजन करके लेटा। मैंने उससे गला छुड़ाने के लिए झूठा वादा कर दिया था। मेरा इरादा हाकिम-जिला से कुछ कहने का नहीं था। मैंने पेशबंदी के तौर पर पहले ही जता दिया था कि हुक्काम आमतौर पर पुलिस के मुआमलों में दखल नहीं देते; इसलिए सजा हो भी गयी, तो मुझे यह कहने की काफी गुञ्जाइश थी कि साहब ने मेरी बात स्वीकार नहीं की।

कई दिन गुजर गये थे। मैं इस वाकिये को बिलकुल भूल गया था। सहसा एक दिन बलदेवसिंह अपने पहलवान बेटे के साथ मेरे कमरे में दाखिल हुए। बेटे ने मेरे चरणों पर सिर रख दिया और अदब से एक किनारे खड़ा हो गया। बलदेवसिंह बोले—बिलकुल बरी हो गया भैया ! साहब ने दरोगा को बुलाकर खूब डाँटा कि तुम भले आदमियों को सताते और बदनाम करते

हो। अगर फिर ऐसा झूठा मुक़दमा लाये, तो बर्खास्त कर दिये जाओगे। दारोगाजी बहुत झेंपे। मैंने उन्हें झुककर सलाम किया। बचा पर घड़ों पानी पड़ गया। यह तुम्हारी सिफारिश का चमत्कार है, भाईजान! अगर तुमने मदद न की होती, तो हम तबाह हो गये थे। यह समझ लो कि तुमने चार प्राणियों की जान बचा ली। मैं तुम्हारे पास बहुत डरते-डरते आया था। लोगों ने कहा था—उसके पास नाहक जाते हो, वह बड़ा बेमुरौवत आदमी है, उसकी जात से किसी का उपकार नहीं हो सकता। आदमी वह है; जो दूसरों का हित करे। वह क्या आदमी है, जो किसीकी कुछ सुने ही नहीं! लेकिन भाईजान, मैंने किसी की बात न मानी। मेरे दिल में मेरा राम बैठा कह रहा था—तुम चाहे कितने ही रूखे और बेलाग हो; लेकिन मुझपर अवश्य दया करोगे।

यह कहकर बलदेवसिंह ने अपने बेटे को इशारा किया। वह बाहर गया और एक बड़ा-सा गट्ठर उठा लाया, जिसमें भाँति-भाँति की देहाती सौगातें बँधी हुई थीं। हालाँकि मैं बराबर कहे जात था—तुम ये चीजें नाहक लाये, इनकी क्या जरूरत थी, कितने गँवार हो, आखिर तो ठहरे देहाती, मैंने कुछ नहीं कहा, मैं तो साहब के पास गया भी नहीं, लेकिन कौन सुनता है। खोया, दही, मटर की फलियाँ, अमावट, ताजा गुड़ और जाने क्या-क्या आ गया।

मैंने कहने को तो एक तरह से कह दिया—मैं साहब के पास गया ही नहीं, जो कुछ हुआ, खुद हुआ; मेरा कोई एहसान नहीं है, लेकिन उसका मतलब यह निकाला गया कि मैं केवल नम्रता से और सौगातों को लौटा देने का कोई बहाना ढूँढ़ने के लिए ऐसा कह रहा हूँ। मुझे इतनी हिम्मत न हुई कि मैं इस बात का विश्वास दिलाता। इसका जो अर्थ निकाला गया, वही मैं चाहता था। मुफ्त का एहसान छोड़ने को जी न चाहता था अन्त में जब मैंने जोर देकर कहा कि किसीसे इस बात का जिक्र न करना, नहीं तो मेरे पास फरियादों का मेला लग जायगा, तो मानो मैंने स्वीकार कर लिया कि मैंने सिफारिश की—और जोरों से की।

———

बासी भात में खुदा का साझा

शाम को जब दीनानाथ ने घर आकर गौरी से कहा कि मुझे एक कार्यालय में पचास रुपये की नौकरी मिल गयी है, तो गौरी खिल उठी। देवताओं में उसकी आस्था और भी दृढ़ हो गयी। इधर एक साल से बुरा हाल था। न कोई रोजी न रोजगार। घर में जो थोड़े-बहुत गहने थे, वह बिक चुके थे। मकान का किराया सिर पर चढ़ा हुआ था। जिन मित्रों से कर्ज मिल सकता था, सबसे ले चुके थे। साल-भर का बच्चा दूध के लिए बिलख रहा था। एक वक्त का भोजन मिलता, तो दूसरे जून की चिन्ता होती। तकाजों के मारे बेचारे दीनानाथ को घर से निकलना मुश्किल था। घर से निकला नहीं, कि चारों ओर से चिथाड़ मच जाती—वाह बाबूजी, वाह! दो दिन का वादा करके ले गये और आज दो महीने से सूरत नहीं दिखायी। भाई साहब, यह तो अच्छी बात नहीं, आपको अपनी जरूरत का खयाल है; मगर दूसरों की जरूरत का जरा भी खयाल नहीं? इसी से कहा है, दुश्मन को चाहे कर्ज दे दो, दोस्त को कभी न दो। दीनानाथ को ये वाक्य तीरों-से लगते थे और उसका जी चाहता था कि जीवन का अन्त कर डाले; मगर बेजबान स्त्री और अबोध बच्चे का मुँह देखकर कलेजा थाम के रह जाता। बारे, आज भगवान् ने उस पर दया की और संकट के दिन कट गये।

गौरी ने प्रसन्नमुख होकर कहा—मैं कहती थी कि नहीं, कि ईश्वर सबकी सुधि लेते हैं और कभी-न-कभी हमारी भी सुधि लेंगे; मगर तुमको विश्वास ही न आता था। बोलो, अब तो ईश्वर की दयालुता के कायल हुए?

दीनानाथ ने हठधर्मी करते हुए कहा—यह मेरी दौड़-धूप का नतीजा है, ईश्वर की क्या दयालुता? ईश्वर को तो तब जानता, जब कहीं से छप्पर फाड़ कर भेज देते।

लेकिन मुँह से चाहे कुछ कहे, ईश्वर के प्रति उसके मन में श्रद्धा उदय हो गयी थी।

(२)

दीनानाथ का स्वामी बड़ा ही रूखा आदमी था और काम में बड़ा चुस्त। उसकी उम्र पचास के लगभग थी और स्वास्थ्य भी अच्छा न था, फिर भी वह कार्यालय में सबसे ज्यादा काम करता। मजाल न थी कि कोई आदमी एक मिनट की भी देर करे, या एक मिनट भी समय के पहले चला जाय। बीच में १५ मिनट की छुट्टी मिलती थी, उसमें जिसका जी चाहे पान खा ले, या सिगरेट पी ले या जलपान कर ले। इसके अलावा एक मिनट का अवकाश न मिलता था। वेतन पहली तारीख को मिल जाता था। उत्सवों में भी दफ्तर बंद रहता था और नियत समय के बाद कभी काम न लिया जाता था। सभी कर्मचारियों को बोनस मिलता था और प्राविडेन्ट फंड की भी सुविधा थी। फिर भी कोई आदमी खुश न था। काम या समय की पाबन्दी की किसी को शिकायत न थी। शिकायत थी केवल स्वामी के शुष्क व्यवहार की। कितना ही जी लगाकर काम करो, कितना ही प्राण दे दो; पर उसके बदले धन्यवाद का एक शब्द भी न मिलता था।

कर्मचारियों में और कोई सन्तुष्ट हो या न हो, दीनानाथ को स्वामी से कोई शिकायत न थी। वह घुड़कियाँ और फटकार पाकर भी शायद उतने ही परिश्रम से काम करता था। साल-भर में उसने कर्ज चुका दिये और कुछ संचय भी कर लिया। वह उन लोगों में था, जो थोड़े में भी संतुष्ट रह सकते हैं—अगर नियमित रूप से मिलता जाय। एक रुपया भी किसी खास काम में खर्च करना पड़ता, तो दम्पति में घंटों सलाह होती और बड़े झाँव-झाँव के बाद कहीं मंजूरी मिलती थी। बिल गौरी की तरफ से पेश होता, तो दीनानाथ विरोध में खड़ा होता। दीनानाथ की तरफ से पेश होता, तो गौरी उसकी कड़ी आलोचना करती। बिल को पास करा लेना प्रस्तावक की जोरदार वकालत पर मुनहसर था। सर्टिफाई करने वाली कोई तीसरी शक्ति वहाँ न थी।

और दीनानाथ अब पक्का आस्तिक हो गया था। ईश्वर की दया या न्याय में अब उसे कोई शंका न थी। नित्य संध्या करता और नियमित रूप से गीता का पाठ करता। एक दिन उसके एक नास्तिक मित्र ने जब ईश्वर की निन्दा की, तो उसने कहा—भाई, इसका तो आज तक निश्चय नहीं हो

सका ईश्वर है या नहीं। दोनों पक्षों के पास इस्पात की सी दलीलें मौजूद हैं; लेकिन मेरे विचार में नास्तिक रहने से आस्तिक रहना कहीं अच्छा है। अगर ईश्वर की सत्ता है, तब तो नास्तिकों को नरक के सिवा कहीं ठिकाना नहीं। आस्तिक के दोनों हाथों में लड्डू है। ईश्वर है तो पूछना ही क्या, नहीं है, तब भी क्या बिगड़ता है। दो-चार मिनट का समय ही तो जाता है?

नास्तिक मित्र इस दोरुखी बात पर मुँह बिचकाकर चल दिये।

(३)

एक दिन जब दीनानाथ शाम को दफ्तर से चलने लगा, तो स्वामी ने उसे अपने कमरे में बुला भेजा और बड़ी खातिर से उसे कुर्सी पर बैठाकर बोला—तुम्हें यहाँ काम करते कितने दिन हुए? साल-भर तो हुआ ही होगा?

दीनानाथ ने नम्रता से कहा—जी हाँ तेरहवाँ महीना चल रहा है।

'आराम से बैठो, इस वक्त घर जाकर जलपान करते हो?'

'जी नहीं, मैं जलपान का आदी नहीं।'

'पान-वान तो खाते ही होगे? जवान आदमी होकर अभी से इतना संयम!'

यह कहकर उसने घण्टी बजायी और अर्दली से पान और कुछ मिठाइयाँ लाने को कहा।

दीनानाथ को शंका हो रही थी—आज इतनी खातिरदारी क्यों हो रही है। कहाँ तो सलाम भी नहीं लेते थे, कहाँ आज मिठाई और पान सभी कुछ मँगाया जा रहा है! मालूम होता है मेरे काम से खुश हो गये हैं। इस खयाल से उसे कुछ आत्मविश्वास हुआ और ईश्वर की याद आ गयी? अवश्य परमात्मा सर्वदर्शी और न्यायकारी है; नहीं तो मुझे कौन पूछता?

अर्दली मिठाई और पान लाया। दीनानाथ आग्रह से विवश होकर मिठाई खाने लगा।

स्वामी ने मुसकराते हुए कहा—तुमने मुझे बहुत रूखा पाया होगा। बात यह है कि हमारे यहाँ अभी तक लोगों को अपनी जिम्मेदारी का इतना कम ज्ञान है कि अफसर जरा भी नर्म पड़ जाय, तो लोग उसकी शराफत का अनुचित लाभ उठाने लगते हैं, और काम खराब होने लगता है। कुछ ऐसे भाग्यशाली हैं, जो नौकरों से हेल मेल भी रखते हैं, उनसे हँसते-बोलते भी हैं,

फिर भी नौकर नहीं बिगड़ते, बल्कि और भी दिल लगाकर काम करते हैं। मुझमें वह कला नहीं है, इसलिए मैं अपने आदमियों से कुछ अलग-अलग रहना ही अच्छा समझता हूँ, और अब तक मुझे इस नीति से कोई हानि भी नहीं हुई; लेकिन मैं आदमियों का रंग-ढंग देखता रहता हूँ और सबको परखता रहता हूँ। मैंने तुम्हारे विषय में जो मत स्थिर किया है; वह यह है कि तुम वफादार हो और मैं तुम्हारे ऊपर विश्वास कर सकता हूँ, इसलिए मैं तुम्हें ज्यादा जिम्मेदारी का काम देना चाहता हूँ, जहाँ तुम्हें खुद बहुत कम काम करना पड़ेगा, केवल निगरानी करनी पड़ेगी। तुम्हारे वेतन में पचास रुपये की और तरक्की हो जायगी। मुझे विश्वास है, तुमने अब तक जितनी तनदेही से काम किया है, उससे भी ज्यादा तनदेही से आगे करोगे।

दीनानाथ की आँखों में आँसू भर आये और कण्ठ की मिठाई कुछ नमकीन हो गयी। जी में आया, स्वामी के चरणों पर सिर रख दे और कहे—आपकी सेवा के लिए मेरी जान हाजिर है। आपने मेरा जो सम्मान बढ़ाया है, मैं उसे निभाने में कोई कसर न उठा रखूँगा; लेकिन स्वर काँप रहा था और वह केवल कृतज्ञता भरी आँखों से देखकर रह गया।

सेठ ने एक मोटा-सा लेजर निकालते हुए कहा—मैं एक ऐसे काम में तुम्हारी मदद चाहता हूँ, जिस पर इस कार्यालय का सारा भविष्य टिका हुआ है। इतने आदमियों में मैंने केवल तुम्हीं को विश्वास-योग्य समझा है। और मुझे आशा है कि तुम मुझे निराश न करोगे। यह पिछले साल का लेजर है और इसमें कुछ ऐसी रकमें दर्ज हो गयी हैं; जिनके अनुसार कम्पनी को कई हजार लाभ होता है, लेकिन तुम जानते हो, हम कई महीनों से घाटे पर काम कर रहे हैं। जिस क्लर्क ने यह लेजर लिखा था, उसकी लिखावट तुम्हारी लिखावट से बिलकुल मिलती है। अगर दोनों लिखावटें आमने-सामने रख दी जायँ, तो किसी विशेषज्ञ को भी उनमें भेद करना कठिन हो जायगा। मैं चाहता हूँ, तुम लेजर में एक पृष्ठ फिर से लिखकर जोड़ दो और उसी नम्बर का पृष्ठ उसमें से निकाल लो। मैंने पृष्ठ का नम्बर छपवा लिया है, एक दफ्तरी भी ठीक कर लिया है, जो रात भर में लेजर की जिल्द-बन्दी कर देगा। किसी

को पता तक न चलेगा। जरूरत सिर्फ यह है कि तुम अपनी कलम से उस पृष्ठ की नकल कर दो।

दीनानाथ ने शंका की—जब उस पृष्ठ की नकल ही करनी है, तो उसे निकालने की क्या जरूरत है?

सेठजी हँसे—तो क्या तुम समझते हो, उस पृष्ठ की हुबहू नकल करनी होगी! मैं कुछ रकमों में परिवर्तन कर दूँगा। मैं तुम्हें विश्वास दिलाता हूँ कि मैं केवल कार्यालय की भलाई के खयाल से यह कार्रवाई कर रहा हूँ। अगर यह रद्दोबदल न किया गया, तो कार्यालय के एक सौ आदमियों की जीविका में बाधा पड़ जायगी। इसमें कुछ सोच-विचार करने की जरूरत ही नहीं। केवल आध घंटे का काम है। तुम बहुत तेज लिखते हो।

कठिन समस्या थी। स्पष्ट था कि उससे जाल बनाने को कहा जा रहा है। उसके पास इस रहस्य के पता लगाने का कोई साधन न था कि सेठजी जो कुछ कह रहे हैं, वह स्वार्थवश होकर या कार्यालय की रक्षा के लिए; लेकिन किसी दशा में भी है यह जाल, घोर जाल। क्या वह अपनी आत्मा की हत्या करेगा? नहीं; किसी तरह नहीं।

उसने डरते-डरते कहा—मुझे आप क्षमा करें, मैं यह काम न कर सकूँगा।

सेठजी ने उसी अविचलित मुसकान के साथ पूछा—क्यों?

'इसलिए कि यह सरासर जाल है।'

'जाल किसे कहते हैं?'

'किसी हिसाब में उलट-फेर करना जाल है।'

'लेकिन उस उलट-फेर से एक सौ आदमियों की जीविका बनी रहे, तो इस दशा में भी वह जाल है? कम्पनी की असली हालत कुछ और है, कागजी हालत कुछ और; अगर यह तब्दीली न की गयी, तो तुरन्त कई हजार रुपये नफे के देने पड़ जायँगे और नतीजा यह होगा कि कम्पनी का दिवाला हो जायगा और सारे आदमियों को घर बैठना पड़ेगा। मैं नहीं चाहता कि थोड़े से मालदार हिस्सेदारों के लिए इतने गरीबों का खून किया जाय। परोपकार के लिए कुछ जाल भी करना पड़े, तो वह आत्मा की हत्या नहीं है।'

दीनानाथ को कोई जवाब न सूझा। अगर सेठजी का कहना सच है और

इस जाल से सौ आदमियों की रोजी बनी रहे तो वास्तव में वह जाल नहीं, कठोर कर्त्तव्य है; अगर आत्मा की हत्या होती भी हो, तो सौ आदमियों की रक्षा के लिए उसकी परवाह न करनी चाहिए; लेकिन नैतिक समाधान हो जाने पर अपनी रक्षा का विचार आया। बोला—लेकिन कहीं मुआमला खुल गया, तो मैं मिट जाऊँगा। चौदह साल के लिए काले पानी भेज दिया जाऊँगा।

सेठ ने जोर से कहकहा मारा—अगर मुआमला खुल गया, तो तुम न फँसोगे, मैं फँसूँगा। तुम साफ इनकार कर सकते हो।

'लिखावट तो पकड़ी जायगी?'

'पता ही कैसे चलेगा कि कौन पृष्ठ बदला गया, लिखावट तो एक-सी है।'

दीनानाथ परास्त हो गया। उसी वक्त उस पृष्ठ की नकल करने लगा।

(४)

फिर भी दीनानाथ के मन में चोर पैदा हुआ था। गौरी से इस विषय में वह एक शब्द भी न कह सका।

एक महीने के बाद उसकी तरक्की हुई। सौ रुपये मिलने लगे। दो सौ बोनस के भी मिले।

यह सब कुछ था, घर में खुशहाली के चिह्न नजर आने लगे; लेकिन दीनानाथ का अपराधी मन एक बोझ से दबा रहता था। जिन दलीलों से सेठजी ने उसकी जबान बन्द कर दी थी, उन दलीलों से गौरी को सन्तुष्ट कर सकने का उसे विश्वास न था।

उसकी ईश्वर-निष्ठा उसे सदैव डराती रहती थी। इस अपराध का कोई भयङ्कर दंड अवश्य मिलेगा। किसी प्रायश्चित्त, किसी अनुष्ठान से उसे रोकना असम्भव है। अभी न मिले; साल-दो-साल न मिले, दस-पाँच साल न मिले; पर जितनी ही देर में मिलेगा, उतना ही भयङ्कर होगा, मूलधन ब्याज के साथ बढ़ता जायगा। वह अक्सर पछताता, मैं क्यों सेठजी के प्रलोभन में आ गया। कार्यालय टूटता या रहता, मेरी बला से; आदमियों की रोजी जाती या रहती, मेरी बला से; मुझे तो यह प्राण-पीड़ा न होती; लेकिन अब तो जो कुछ होना था हो चुका और दंड अवश्य मिलेगा। इस शंका ने उसके जीवन का उत्साह, आनन्द और माधुर्य सब कुछ हर लिया।

मलेरिया फैला हुआ था। बच्चे को ज्वर आया। दीनानाथ के प्राण नहों में समा गये। दण्ड का विधान आ पहुँचा। कहाँ जाय, क्या करे, जैसे बुद्धि भ्रष्ट हो गयी।

गौरी ने कहा—जाकर कोई दवा लाओ, या किसी डॉक्टर को दिखा दो, तीन दिन तो हो गये।

दीनानाथ ने चिन्तित मन से कहा—हाँ, जाता हूँ, लेकिन मुझे बड़ा भय लग रहा है।

'भय की कौन-सी बात है, बेबात की बात मुँह से निकालते हो। आज-कल किसे ज्वर नहीं आता?'

'ईश्वर इतना निर्दयी क्यों है?'

'ईश्वर निर्दयी है पापियों के लिए। हमने किसका क्या हर लिया है?'

'ईश्वर पापियों को कभी क्षमा नहीं करता?'

'पापियों को दण्ड न मिले, तो संसार में अनर्थ हो जाय।'

'लेकिन आदमी ऐसे काम भी तो करता है, जो एक दृष्टि से पाप हो सकते हैं, दूसरी दृष्टि से पुण्य।'

'मैं नहीं समझी।'

'मान लो, मेरे झूठ बोलने से किसीकी जान बचती हो, तो क्या वह पाप है?'

'मैं तो समझती हूँ, ऐसा झूठ पुण्य है।'

'तो जिस पाप से मनुष्य का कल्याण हो, वह पुण्य है?'

'और क्या।'

दीनानाथ की अमंगल शंका थोड़ी देर के लिए दूर हो गयी। डॉक्टर को बुला लाया, इलाज शुरू किया, बालक एक सप्ताह में चंगा हो गया।

मगर थोड़े ही दिन बाद वह खुद बीमार पड़ा। वह अवश्य ही ईश्वरीय दण्ड है और वह बच नहीं सकता। साधारण मलेरिया ज्वर था; पर दीनानाथ की दण्ड-कल्पना ने उसे सन्निपात का रूप दे दिया। ज्वर में, नशे की हालत की तरह, यों भी कल्पनाशक्ति तीव्र हो जाती है। पहले केवल मनोगत शंका थी, वह भीषण सत्य बन गयी। कल्पना ने यमदूत रच डाले, उनके भाले और गदाएँ रच डालीं, नरक का अग्निकुण्ड दहका दिया। डॉक्टर की

एक घूँट दवा एक हजार मन की गदा के आवाज और आग के उबलत हुए समुद्र के दाह पर क्या असर करती? दीनानाथ मिथ्यावादी न था। पुराणों की रहस्यमय कल्पनाओं में उसे विश्वास न था। नहीं, वह बुद्धिवादी था और ईश्वर में भी तभी उसे विश्वास आया, जब उसकी तर्कबुद्धि कायल हो गयी। लेकिन ईश्वर के साथ उसकी दया भी आयी, उसका दण्ड भी आया। दया ने उसे रोजी दी, मान दिया। ईश्वर की दया न होती, तो शायद वह भूखों मर जाता; लेकिन भूखों मरना अग्निकुण्ड में ढकेल दिये जाने से कहीं सरल था, खेल था। दण्ड-भावना जन्म-जन्मान्तरों के संस्कार से ऐसी बद्धमूल हो गयी थी, मानो उसकी बुद्धि का, उसकी आत्मा का, एक अंग हो गयी हो। उसका तर्कवाद और बुद्धिवाद इस मन्वन्तरों के जमे हुए संस्कार पर समुद्र की ऊँची लहरों की भाँति आता था, पर एक क्षण उन्हें जल-मग्न करके फिर लौट जाता था और वह पर्वत ज्यों-का-त्यों अचल खड़ा रह जाता था।

जिन्दगी बाकी थी, बच गया। ताकत आते ही दफ्तर जाने लगा। एक दिन गौरी बोली—जिन दिनों तुम बीमार थे और एक दिन तुम्हारी हालत बहुत नाजुक हो गयी थी, तो मैंने भगवान् से कहा था कि यह अच्छे हो जायँगे, तो पचास ब्राह्मणों को भोजन कराऊँगी। दूसरे ही दिन से तुम्हारी हालत सुधरने लगी। ईश्वर ने मेरी विनती सुन ली। उसकी दया न हो जाती, तो मुझे कहीं माँगे भीख न मिलती। आज बाजार से सामान ले आओ, तो मनौती पूरी कर दूँ। पचास ब्राह्मण नेवते जायँगे, तो सौ अवश्य आयेंगे। पचास कँगले भी समझ लो, और मित्रों में बीस-पचीस निकल ही आयेंगे। दो सौ आदमियों का डौल है। मैं सामग्रियों की सूची लिखे देती हूँ।

दीनानाथ ने माथा सिकोड़कर कहा—तुम समझती हो, मैं भगवान् की दया से अच्छा हुआ?

'और कैसे अच्छे हुए?'

'अच्छा हुआ इसलिए कि जिन्दगी बाकी थी।'

'ऐसी बातें न करो। मनौती पूरी करनी होगी।'

'कभी नहीं। मैं भगवान् को दयालु नहीं समझता।'

'और क्या भगवान् निर्दयी हैं?'

'उनसे बड़ा निर्दयी कोई संसार में न होगा। जो अपने रचे हुए खिलौनों को उनकी भूलों और बेवकूफियों की सजा अग्निकुण्ड में ढकेलकर दे, वह भगवान् दयालु नहीं हो सकता। भगवान् जितना दयालु है, उससे असंख्य गुना निर्दयी है। और ऐसे भगवान् की कल्पना से मुझे घृणा होती है। प्रेम सबसे बड़ी शक्ति कही गयी है। विचारवानों ने प्रेम को ही जीवन की और संसार की सबसे बड़ी विभूति मानी है। व्यवहार में न सही, आदर्श में प्रेम ही हमारे जीवन का सत्य है, मगर तुम्हारा ईश्वर दण्ड-भय से सृष्टि का संचालन करता है। फिर उसमें और मनुष्य में क्या फर्क हुआ? ऐसे ईश्वर की उपासना मैं नहीं करना चाहता, नहीं कर सकता। जो मोटे हैं, उनके लिए ईश्वर दयालु होगा; क्योंकि वे दुनियाँ को लूटते हैं। हम-जैसों को तो ईश्वर की दया कहीं नजर नहीं आती। हाँ, भय पग-पग पर खड़ा घूरा करता है। यह मत करो, नहीं तो ईश्वर दण्ड देगा। वह मत करो, नहीं तो ईश्वर दण्ड देगा। प्रेम से शासन करना मानवता है, आतंक से शासन करना बर्बरता है। आतंकवादी ईश्वर से तो ईश्वर का न रहना ही अच्छा है। उसे हृदय से निकाल कर मैं उसकी दया और दण्ड दोनों से मुक्त हो जाना चाहता हूँ। एक कठोर दण्ड बरसों के प्रेम को मिट्टी में मिला देता है। मैं तुम्हारे ऊपर बराबर जान देता रहता हूँ; लेकिन किसी दिन डण्डा लेकर पीट चलूँ, तो तुम मेरी सूरत न देखोगी। ऐसे आतंकमय, दण्डमय जीवन के लिए मैं ईश्वर का एहसान नहीं लेना चाहता। बासी भात में खुदा के साझे की जरूरत नहीं। अगर तुमने ओज-भोज पर जोर दिया, तो मैं जहर खा लूँगा।'

गौरी उसके मुँह की ओर भयातुर नेत्रों से ताकती रह गयी।

दूध का दाम

अब बड़े-बड़े शहरों में दाइयाँ, नर्सें और लेडी डॉक्टर, सभी पैदा हो गयी हैं; लेकिन देहातों में जच्चेखानों पर अभी तक भंगिनों का ही प्रभुत्व है और निकट-भविष्य में इसमें कोई तब्दीली होने की आशा नहीं। बाबू महेशनाथ अपने गाँव के जमींदार थे, शिक्षित थे और जच्चेखानों में सुधार की आवश्यकता को मानते थे; लेकिन इसमें जो बाधाएँ थीं, उन पर कैसे विजय पाते ? कोई नर्स देहात में जाने पर राजी न हुई और बहुत कहने-सुनने से राजी भी हुई, तो इतनी लम्बी-चौड़ी फीस माँगी कि बाबू साहब को सिर झुकाकर चले आने के सिवा और कुछ न सूझा। लेडी डॉक्टर के पास जाने की उन्हें हिम्मत न पड़ी। उसकी फीस पूरी करने के लिए तो शायद बाबू साहब को अपनी आधी जायदाद बेचनी पड़ती; इसलिए जब तीन कन्याओं के बाद वह चौथा लड़का पैदा हुआ, तो फिर वही गूदड़ था और वही गूदड़ की बहू। बच्चे अक्सर रात ही को पैदा होते हैं। एक दिन आधीरात को चपरासी ने गूदड़ के द्वार पर ऐसी हाँक लगायी कि पास-पड़ोस में भी जाग पड़ गयी। लड़की न थी कि मरी आवाज से पुकारता।

गूदड़ के घर में इस शुभ अवसर के लिए महीनों से तैयारी हो रही थी। भय था तो यही कि फिर बेटी न हो जाय, नहीं तो वही बँधा हुआ एक रुपया और एक साड़ी मिलकर रह जायगी। इस विषय में स्त्री-पुरुष में कितने ही बार झगड़ा हो चुका था, शर्त लग चुकी थी। स्त्री कहती थी—अगर अब की बेटा न हो, तो मुँह न दिखाऊँ; हाँ-हाँ, मुँह न दिखाऊँ, सारे लच्छन बेटे के हैं। और गूदड़ कहता था—देख लेना, बेटी होगी और बीच खेत बेटी होगी। बेटा निकले तो मूँछें मुँड़ा लूँ; हाँ-हाँ, मूँछें मुड़ा लूँ। शायद गूदड़ समझता था कि इस तरह अपनी स्त्री में पुत्र-कामना को बलवान् करके वह बेटे की अवाई के लिए रास्ता साफ कर रहा है।

भूँगी बोली—अब मूँछ मुँड़ा ले दाढ़ीजार ! कहती थी, बेटा होगा। सुनता

ही न था। अपनी ही रट लगाये जाता था। मैं आप तेरी मूँछें मूँड़ूँगी, खूँटी तक तो रखूँगी ही नहीं।

गूदड़ ने कहा—अच्छा मूँड़ लेना भलीमानस ! मूँछें क्या फिर निकलेंगी ही नहीं ? तीसरे दिन देख लेना, फिर ज्यों-की-त्यों हैं, मगर जो कुछ मिलेगा, उसमें आधा रखा लूँगा, कहे देता हूँ।

भूँगी ने अँगूठा दिखाया और अपने तीन महीने के बालक को गूदड़ के सुपुर्द कर सिपाही के साथ चल खड़ी हुई।

गूदड़ ने पुकारा—अरी ! सुन तो, कहाँ भागी जाती है ? मुझे भी बधाई बजाने जाना पड़ेगा। इसे कौन सँभालेगा ?

भूँगी ने दूर ही से कहा—इसे वही धरती पर सुला देना। मैं आके दूध पिला जाऊँगी।

(२)

महेशनाथ के यहाँ अब की भूँगी की खूब खातिरदारियाँ होने लगीं। सवेरे हरीरा मिलता, दोपहर को पूरियाँ और हलवा, तीसरे पहर को फिर और रात को फिर और गूदड़ को भी भरपूर परोसा मिलता था। भूँगी अपने बच्चे को दिन-रात में एक-दो बार से ज्यादा न पिला सकती थी। उसके लिए ऊपर के दूध का प्रबन्ध था। भूँगी का दूध बाबूसाहब का भाग्यवान् बालक पीता था। और यह सिलसिला बारहवें दिन भी न बन्द हुआ। मालकिन मोटी-ताजी देवी थीं; पर अब की कुछ ऐसा संयोग कि उन्हें दूध हुआ ही नहीं। तीनों लड़कियों की बार इतने इफरात से दूध होता था कि लड़कियों को बदहजमी हो जाती थी। अब की एक बूँद नहीं। भूँगी दाई भी थी और दूध-पिलाई भी।

मालकिन कहतीं—भूँगी, हमारे बच्चे को पाल दे, फिर जब तक तू जिये, बैठी खाती रहना। पाँच बीघे माफी दिलवा दूँगी। नाती-पोते तक चैन करेंगे।

और भूँगी का लाड़ला ऊपर का दूध हजम न कर सकने के कारण बार-बार उलटी करता और दिन-दिन दुबला होता जाता था।

भूँगी कहती—बहूजी, मूँड़न में चूड़े लूँगी, कहे देती हूँ।

बहूजी उत्तर देतीं—हाँ हाँ, चूड़े लेना भाई, धमकाती क्यों है ? चाँदी के लेगी या सोने के ?

'वाह बहूजी ! चाँदी के चूड़े पहन के किसे मुँह दिखाऊँगी और किसकी हँसी होगी ?'

'अच्छा, सोने के लेना भाई, कह तो दिया ।'

'और ब्याह में कण्ठा लूँगी और चौधरी (गूदड़) के लिए हाथों के तोड़े।'

'वह भी लेना, भगवान् वह दिन तो दिखावें ।'

घर में मालकिन के बाद भूँगी का राज्य था। महरियाँ, महराजिन, नौकर चाकर सब उसका रोब मानते थे । यहाँ तक कि खुद बहूजी भी उससे दब जाती थी । एक बार तो उसने महेशनाथ को भी डाँटा था । हँसकर टाल गये । बात चली थी भंगियों की । महेशनाथ ने कहा था—दुनिया में और चाहे जो कुछ हो जाय, भंगी भंगी ही रहेंगे । इन्हें आदमी बनाना कठिन है ।

इस पर भूँगी ने कहा था—मालिक, भंगी तो बड़ों-बड़ों को आदमी बनाते हैं, उन्हें कोई क्या आदमी बनाये ।

यह गुस्ताखी करके किसी दूसरे अवसर पर भला भूँगी के सिर के बाल बच सकते थे ? लेकिन आज बाबूसाहब ठठाकर हँसे और बोले—भूँगी बात बड़े पते की कहती है ।

(३)

भूँगी का शासनकाल साल-भर से आगे न चल सका । देवताओं ने बालक के भगिन का दूध पीने पर आपत्ति की, मोटेराम शास्त्री तो प्रायश्चित्त का प्रस्ताव कर बैठे । दूध तो छुड़ा दिया गया; लेकिन प्रायश्चित की बात हँसी में उड़ गयी । महेशनाथ ने फटकारकर कहा—प्रायश्चित की खूब कही शास्त्रीजी, कल तक उसी भंगिन का खून पीकर पला, अब उसमें छूत घुस गयी । वाह रे आपका धर्म !

शास्त्रीजी शिखा फटकारकर बोले—यह सत्य है, वह कल तक भंगिन का रक्त पीकर पला । मांस खाकर पला, यह भी सत्य है; लेकिन कल की बात कल थी, आज की बात आज । जगन्नाथपुरी में तो छूत-अछूत सब एक पंगत में खाते हैं; पर यहाँ तो नहीं खा सकते । बीमारी में तो हम भी कपड़े पहने खा लेते हैं, खिचड़ी तक खा लेते हैं बाबूजी; लेकिन अच्छे हो जाने पर तो नेम का पालन करना ही पड़ता है । आपद्धर्म की बात न्यारी है ।

'तो इसका यह अर्थ है कि धर्म बदलता रहता है—कभी कुछ, कभी कुछ ?'

'और क्या ! राजा का धर्म अलग, प्रजा का धर्म अलग, अमीर का धर्म अलग, गरीब का धर्म अलग । राजे महराजे जो चाहें खायँ, जिसके साथ चाहें खायँ, जिसके साथ चाहें शादी-ब्याह करें, उनके लिए कोई बन्धन नहीं । समर्थ पुरुष हैं । बन्धन तो मध्यवालों के लिए है ।'

प्रायश्चित्त तो न हुआ; लेकिन भूँगी को गद्दी से उतरना पड़ा । हाँ, दान दक्षिणा इतनी मिली कि वह अकेले ले न जा सकी, और सोने के चूड़े भी मिले । एक की जगह दो नयी, सुन्दर साड़ियाँ—मामूली नैनसुख की नहीं, जैसी लड़कियों की बार मिली थी ।

(४)

इसी साल प्लेग ने जोर बाँधा और गूदड़ पहले ही चपेट में आ गया । भूँगी अकेली रह गयी; पर गृहस्थी ज्यों-की-त्यों चलती रही । लोग ताक लगाये बैठे थे कि भूँगी अब गयी । फलाँ भंगी से बातचीत हुई, फलाँ चौधरी आये, लेकिन भूँगी न कहीं आयी, न कहीं गयी, यहाँ तक कि पाँच साल बीत गये और उसका बालक मंगल, दुर्बल और सदा रोगी रहने पर भी, दौड़ने लगा । सुरेश के सामने पिद्दी-सा लगता था ।

एक दिन भूँगी महेशनाथ के घर का परनाला साफ कर रही थी । महीनों से गलीज जमा हो रहा था । आँगन में पानी भरा रहने लगा था । परनाले में एक लम्बा मोंटा बाँस डालकर जोर से हिला रही थी । पूरा दाहिना हाथ परनाले के अन्दर था कि एकाएक उसने चिल्लाकर हाथ बाहर निकाल लिया और उसी वक्त एक काला साँप परनाले से निकलकर भागा । लोगों ने दौड़कर उसे मार तो डाला; लेकिन भूँगी को न बचा सके । समझे; पानी का साँप है, विषैला न होगा, इसलिए पहले कुछ गफलत की गयी । जब विष देह में फैल गया और लहरें आने लगीं, तब पता चला कि वह पानी का साँप नहीं, गेहुँवन था ।

मंगल अब अनाथ था । दिन-भर महेशबाबू के द्वार पर मँडलाया करता । घर में जूठन इतना बचता था कि ऐसे-ऐसे दस-पाँच बालक पल सकते थे । खाने की कोई कमी न थी । हाँ, उसे तब बुरा जरूर लगता था, जब उसे

मिट्टी के सकोरों में ऊपर से खाना दिया जाता था। सब लोग अच्छे-अच्छे बरतनों में खाते हैं, उसके लिए मिट्टी के सकोरे !

यों उसे इस भेद-भाव का बिलकुल ज्ञान न होता था, लेकिन गाँव के लड़के चिढ़ा-चिढ़ाकर उसका अपमान करते रहते थे। कोई उसे अपने साथ खेलाता भी न था। यहाँ तक कि जिस टाट पर वह सोता था, वह भी अछूत था। मकान के सामने एक नीम का पेड़ था। इसी के नीचे मंगल का डेरा था। एक फटा-सा टाट का टुकड़ा, दो मिट्टी के सकोरे और एक धोती, जो सुरेशबाबू की उतारन थी। जाड़ा, गरमी बरसात हरेक मौसम में वह जगह एक-सी आरामदेह थी, और भाग्य का बली मंगल झुलसती हुई लू, गलते हुए जाड़े और मूसलधार वर्षा में भी जिन्दा और पहले से कहीं स्वस्थ था। बस, उसका कोई अपना था, तो गाँव का एक कुत्ता, जो अपने सहवर्गियों के जुल्म से दुखी होकर मङ्गल की शरण आ पड़ा था। दोनों एक ही खाना खाते, एक ही टाट पर सोते, तबीअत भी दोनों की एक-सी थी, और दोनों एक दूसरे के स्वभाव को जान गये थे। कभी आपस में झगड़ा न होता।

गाँव के धर्मात्मा लोग बाबूसाहब की इस उदारता पर आश्चर्य करते। ठीक द्वार के सामने—पचास हाथ भी न होगा—मङ्गल का पड़ा रहना उन्हें सोलहों आने धर्म-विरुद्ध जान पड़ता। छिः ! यही हाल रहा, तो थोड़े ही दिनों में धर्म का अन्त ही समझो। भंगी को भी भगवान् ने ही रचा है, यह हम भी जानते हैं। उनके साथ हमें किसी तरह का अन्याय न करना चाहिए, यह किसे नहीं मालूम ? भगवान् का तो नाम ही पतित-पावन है; लेकिन समाज की मर्यादा भी कोई वस्तु है ! उस द्वार पर जाते हुए संकोच होता है। गाँव के मालिक हैं, जाना तो पड़ता ही है; लेकिन बस यही समझ लो कि घृणा होती है।

मङ्गल और टामी में गहरी छनती थी। मङ्गल कहता—देखो भाई टामी, जरा और खिसककर सोओ। आखिर मैं कहाँ लेटूँ ? सारा टाट तो तुमने घेर लिया।

टामी कूँ-कूँ करता, दुम हिलाता और खिसक जाने के बदले और ऊपर चढ़ आता एवं मङ्गल का मुँह चाटने लगता।

शाम को वह एक बार रोज अपना घर देखने और थोड़ी देर रोने जाता।

पहले साल फूस का छप्पर गिर पड़ा, दूसरे साल एक दीवार गिरी और अब केवल आधी-आधी दीवारें खड़ी थीं, जिनका ऊपरी भाग नोकदार हो गया था। यही उसे स्नेह की सम्पत्ति मिली थी। वही स्मृति, वही आकर्षण, वही प्यास उसे एक बार उस ऊजड़ में खींच ले जाती थी और टामी सदैव उसके साथ होता था। मंगल नोकदार दीवार पर बैठ जाता और जीवन के बीते और आनेवाले स्वप्न देखने लगता और टामी बार-बार उछल कर उसकी गोद में आ बैठने की असफल चेष्टा करता।

(५)

एक दिन कई लड़के खेल रहे थे। मंगल भी पहुँच कर दूर खड़ा हो गया। या तो सुरेश को उस पर दया आयी, या खेलनेवालों की जोड़ी पूरी न पड़ती थी, कह नहीं सकते। जो कुछ भी हो, उसने तजवीज की कि आज मंगल को भी खेल में शरीक कर लिया जाय। यहाँ कौन देखने आता है। क्यों रे मंगल, खेलेगा।

मंगल बोला—ना भैया, कहीं मालिक देख लें, तो मेरी चमड़ी उधेड़ दी जाय। तुम्हें क्या, तुम तो अलग हो जाओगे।

सुरेश ने कहा—तो यहाँ कौन आता है देखने बे ? चल, हम लोग सवार-सवार खेलेंगे। तू घोड़ा बनेगा, हम लोग तेरे ऊपर सवारी करके दौड़ायेंगे।

मंगल ने शंका की—मैं बराबर घोड़ा ही रहूँगा, कि सवारी भी करूँगा ? यह बता दो।

यह प्रश्न टेढ़ा था। किसी ने इस पर विचार न किया था। सुरेश ने एक क्षण विचार करके कहा—तुझे कौन अपनी पीठ पर बिठायेगा, सोच ? आखिर तू भंगी है कि नहीं ?

मंगल भी कड़ा हो गया। बोला—मैं कब कहता हूँ कि मैं भंगी नहीं हूँ; लेकिन तुम्हें मेरी ही माँ ने अपना दूध पिला कर पाला है। जब तक मुझे भी सवारी करने को न मिलेगी, मैं घोड़ा न बनूँगा। तुम लोग बड़े चघड़ हो। आप तो मजे से सवारी करोगे और मैं घोड़ा ही बना रहूँगा।

सुरेश ने डाँट कर कहा, तुझे घोड़ा बनना पड़ेगा और मंगल को पकड़ने दौड़ा। मंगला भागा। सुरेश ने दौड़ाया। मंगल ने कदम और तेज किया।

सुरेश ने भी जोर लगाया; मगर वह बहुत खा-खाकर थलथल हो गया था और दौड़ने में उसकी साँस फूलने लगती थी।

आखिर उसने रुक कर कहा—आकर घोड़ा बनो मंगल, नहीं तो कभी पा जाऊँगा, तो बुरी तरह पीटूँगा।

'तुम्हें भी घोड़ा बनना पड़ेगा।

'अच्छा हम भी बन जायँगे।'

'तुम पीछे से निकल जाओगे। पहले तुम घोड़ा बन जाओ। मैं सवारी कर लूँ, फिर मैं बनूँगा।'

सुरेश ने सचमुच चकमा देना चाहा था। मंगल का यह मुतालबा सुनकर साथियों से बोला—देखते हो इसकी बदमाशी, भंगी है न।

तीनों ने मंगल को घेर लिया और उसे जबरदस्ती घोड़ा बना दिया। सुरेश ने चटपट उसकी पीठ पर आसन जमा लिया और टिकटिक करके बोला—चल घोड़े, चल!

मंगल कुछ दूर तक तो चला, लेकिन उस बोझ से उसकी कमर टूटी जाती थी। उसने धीरे से पीठ सिकोड़ी और सुरेश की रान के नीचे से सरक गया। सुरेश महोदय लद से गिर पड़े और भोंपू बजाने लगे।

माँ ने सुना, सुरेश कहीं रो रहा है। सुरेश कहीं रोये, तो उनके तेज कानों में जरूर भनक पड़ जाती थी और उसका रोना भी बिलकुल निराला होता था, जैसे छोटी लाइन के इञ्जन की आवाज।

महरी से बोली—देख तो, सुरेश कहीं रो रहा है, पूछ तो किसने मारा है?

इतने में सुरेश खुद आँखें मलता हुआ आया। उसे जब रोने का अवसर मिलता था, तो माँ के पास फरियाद लेकर जरूर आता था। माँ मिठाई या मेवे देकर आँसू पोंछ देती थी। आप थे तो आठ साल के; मगर थे बिलकुल गावदी। हद से ज्यादा प्यार ने उसकी बुद्धि के साथ वही किया था, जो हद से ज्यादा भोजन ने उसकी देह के साथ।

माँ ने पूछा—क्यों रोता है सुरेश, किसने मारा?

सुरेश ने रोकर कहा—मंगल ने छू दिया।

माँ को विश्वास न आया। मंगल इतना निरीह था कि उससे किसी तरह की शरारत की शंका न होती थी; लेकिन जब सुरेश कसमें खाने लगा, तो विश्वास करना लाजिम हो गया। मंगल को बुलवाकर डाँटा—क्यों रे मंगल अब तुझे बदमाशी सूझने लगी। मैंने तुझसे कहा था, सुरेश को कभी मत छूना, याद है कि नहीं, बोल!

मंगल ने दबी आवाज से कहा—याद क्यों नहीं है।

'तो फिर तूने उसे क्यों छुआ?'

'मैंने नहीं छुआ।'

'तूने नहीं छुआ, तो वह रोता क्यों था?'

'गिर पड़े, इससे रोने लगे।'

चोरी और सीनाजोरी! देवीजी दाँत पीसकर रह गयीं। मारतीं, तो उसी दम स्नान करना पड़ता। छड़ी तो हाथ में लेनी ही पड़ती और छूत का विद्युत्-प्रवाह इस छड़ी के रास्ते उनकी देह में पैवस्त हो जाता, इसलिए जहाँ तक गालियाँ दे सकीं, दीं और हुक्म दिया कि अभी-अभी यहाँ से निकल जा। फिर जो इस द्वार पर तेरी सूरत नजर आयी, तो खून ही पी जाऊँगी। मुफ्त की रोटियाँ खा-खाकर शरारत सूझती है; आदि।

मंगल में गैरत तो क्या थी, हाँ, डर था। चुपके से अपने सकोरे उठाये, टाट का टुकड़ा बगल में दबाया, धोती कन्धे पर रखी और रोता हुआ वहाँ से चल पड़ा। अब वह यहाँ कभी न आयेगा। यही तो होगा कि भूखों मर जायगा। क्या हरज है? इस तरह जीने से फायदा ही क्या? गाँव में उसके लिए और कहाँ ठिकाना था? भंगी को कौन पनाह देता? उसी खंडहर की ओर चला, जहाँ भले दिनों की स्मृतियाँ उसके आँसू पोंछ सकती थीं, और खूब फूटफूटकर रोया।

उसी क्षण टामी भी उसे ढूँढ़ता हुआ पहुँचा और दोनों फिर अपनी व्यथा भूल गये।

(६)

लेकिन ज्यों-ज्यों दिन का प्रकाश क्षीण होता जाता था, मंगल की ग्लानि भी गायब होती जाती थी। बचपन की बेचैन करने वाली भूख देह का रक्त पी-पीकर और भी बलवान होती जाती थी। आँखें बार-बार सकोरों की ओर उठ

जातीं। वहाँ अब तक सुरेश की जूठी मिठाइयाँ मिल गयी होतीं। यहाँ क्या धूल फाँके?

उसने टामी से सलाह की—खाओगे क्या टामी? मैं तो भूखा लेट रहूँगा।

टामी ने कूँ-कूँ करके शायद कहा—इस तरह का अपमान तो जिन्दगी-भर सहना है। यों हिम्मत हारोगे, तो कैसे काम चलेगा? मुझे देखो न, कभी किसी ने डण्डा मारा, चिल्ला उठा, फिर जरा देर बाद दुम हिलाता हुआ उसके पास जा पहुँचा। हम-तुम दोनों इसीलिए बने हैं भाई!

मंगल ने कहा—तो तुम जाओ, जो कुछ मिले खा लो, मेरी परवाह न करो।

टामी ने अपनी श्वान-भाषा में कहा—अकेला नहीं जाता, तुम्हें साथ लेकर चलूँगा।

'मैं नहीं जाता।'

'तो मैं नहीं जाता।'

'भूखों मर जाओगे।'

'तो क्या तुम जीते रहोगे?'

'मेरा कौन बैठा है, जो रोयेगा?'

'यहाँ भी वही हाल है भाई, क्वार में जिस कुतिया से प्रेम किया था, उसने बेवफाई की और अब कल्लू के साथ है। खैरियत यही हुई कि अपने बच्चे लेती गयी, नहीं तो मेरी जान गाढ़े में पड़ जाती। पाँच-पाँच बच्चों को कौन पालता?'

एक क्षण के बाद भूख ने एक दूसरी युक्ति सोच निकाली।

'मालकिन हमें खोज रही होंगी, क्यों टामी?'

'और क्या? बाबूजी और सुरेश खा चुके होंगे। कहार ने उनकी थाली से जूठन निकाल लिया होगा और हमें पुकार रहा होगा।'

'बाबूजी और सुरेश दोनों की थालियों में घी खूब रहता है, और वह मीठी-मीठी चीज—हाँ मलाई!'

'सब-का-सब घूरे पर डाल दिया जायगा।'

'देखें, हमें खोजने कोई आता है?'

'खोजने कौन आयेगा; क्या कोई पुरोहित हो? एक बार 'मंगल-मंगल' होगा और बस, थाली परनाले में उड़ेल दी जायगी।

'अच्छा, तो चलो चलें। मगर मैं छिपा रहूँगा, अगर किसी ने मेरा नाम लेकर न पुकारा; तो मैं लौट आऊँगा। यह समझ लो।'

दोनों वहाँ से निकले और आकर महेशनाथ के द्वार पर अँधेरे में दबक-कर खड़े हो गये; मगर टामी को सब्र कहाँ? वह धीरे से अन्दर घुस गया। देखा, महेशनाथ और सुरेश थाली पर बैठ गये हैं। बरोठे में धीरे से बैठ गया; मगर डर रहा था कि कोई डंडा न मार दे।

नौकर में बातचीत हो रही थी। एक ने कहा—आज मँगलवा नहीं दिखायी देता। मालकिन ने डाँटा था, इससे भागा है साइत।

दूसरे ने जवाब दिया—अच्छा हुआ, निकाल दिया गया। सबेरे-सबेरे भंगी का मुँह देखना पड़ता था।

मंगल और अँधेर में खिसक गया! आशा गहरे जल में डूब गयी।

महेशनाथ थाली से उठ गये। नौकर हाथ धुला रहा है। अब हुक्का पीयेंगे और सोयेंगे। सुरेश अपनी माँ के पास बैठा कोई कहानी सुनता-सुनता सो जायगा। गरीब मंगल की किसे चिन्ता है? इतनी देर हो गयी, किसी ने भूल से भी न पुकारा।

कुछ देर तक वह निराश-सा वहाँ खड़ा रहा, फिर एक लम्बी साँस खींच-कर जाना ही चाहता था कि कहार पत्तल में थाली का जूठन ले जाता नजर आया।

मंगल अँधेरे से निकलकर प्रकाश में आ गया। अब मन को कैसे रोके?

कहार ने कहा—अरे, तू यहाँ था? हमने समझा कि कहीं चला गया। ले, खा ले; मैं फेंकने ले जा रहा था।

मंगल ने दीनता से कहा—मैं तो बड़ी देर से यहाँ खड़ा था।

'तो बोला क्यों नहीं?'

'मारे डर के।'

'अच्छा, ले खा ले।'

उसने पत्तल को ऊपर उठाकर मंगल के फैले हुए हाथों में डाल दिया।

मंगल ने उसकी ओर ऐसी आँखों से देखा, जिसमें दीन कृतज्ञता भरी हुई थी।

टामी भी अन्दर से निकल आया था। दोनों वहीं नीम के नीचे पत्तल में खाने लगे।

मंगल ने एक हाथ से टामी का सिर सहलाकर कहा—देखा, पेट की आग ऐसी होती है! यह लात की मारी हुई रोटियाँ भी न मिलतीं, तो क्या करते?

टामी ने दुम हिला दी।

'सुरेश को अम्माँ ने पाला था।'

टामी ने फिर दुम हिलायी।

'लोग कहते हैं, दूध का दाम कोई नहीं चुका सकता और मुझे दूध का यह दाम मिल रहा है।'

टामी ने फिर दुम हिलायी।

बालक

गंगू को लोग ब्राह्मण कहते हैं और वह अपने को ब्राह्मण समझता भी है। मेरे सईस और खिदमतगार मुझे दूर से सलाम करते हैं। गंगू मुझे कभी सलाम नहीं करता। वह शायद मुझसे पालागन की आशा रखता है। मेरा जूठा गिलास कभी हाथ से नहीं छूता और न मेरी कभी इतनी हिम्मत हुई कि उससे पंखा झलने को कहूँ। जब मैं पसीने से तर होता हूँ और वहाँ कोई दूसरा आदमी नहीं होता, तो गंगू आप-ही-आप पंखा उठा लेता है; लेकिन उसकी मुद्रा से यह भाव स्पष्ट प्रकट होता है कि मुझ पर कोई एहसान कर रहा है और मैं भी न-जाने क्यों फौरन ही उसके हाथ से पंखा छीन लेता हूँ। उग्र स्वभाव का मनुष्य है। किसी की बात नहीं सह सकता। ऐसे बहुत कम आदमी होंगे, जिनसे उसकी मित्रता हो; पर रईस और खिदमतगार के साथ बैठना शायद वह अपमानजनक समझता है। मैंने उसे किसी से मिलते-जुलते नहीं देखा। आश्चर्य यह है कि उसे भंग-बूटी से प्रेम नहीं, जो इस श्रेणी के मनुष्यों में एक असाधारण गुण है। मैं उसे कभी पूजा पाठ करते या नदी में स्नान करने जाते नहीं देखा। बिलकुल निरक्षर है; लेकिन फिर भी वह ब्राह्मण है और चाहता है कि दुनिया उसकी प्रतिष्ठा तथा सेवा करे और क्यों न चाहे? जब पुरुषाओं की पैदा की हुई सम्पत्ति पर आज भी लोग अधिकार जमाये हुए हैं और उसी शान से, मानो खुद पैदा किये हो, तो वह क्यों उस प्रतिष्ठा और सम्मान को त्याग दे, जो उसके पुरुषाओं ने संचय किया था? यह उसक बपौती है।

मेरा स्वभाव कुछ इस तरह का है कि अपने नौकरों से बहुत कम बोलता हूँ। मैं चाहता हूँ, जब तक मैं खुद न बुलाऊँ, कोई मेरे पास न आये। मुझे यह अच्छा नहीं लगता कि जरा-सी बातों के लिए नौकरों को आवाज देता फिरूँ। मुझे अपने हाथ से सुराही से पानी उँड़ेल लेना, अपना लैम्प जला लेना अपने जूते पहन लेना या आलमारी से कोई किताब निकाल लेना, इससे कहीं ज्यादा सरल मालूम होता है कि हींगन और मैकू को पुकारूँ। इससे मुझे अपनी स्वेच्छा और आत्म-विश्वास का बोध होता है। नौकर भी मेरे स्वभाव से परि-

न्चित हो गये हैं और बिना जरूरत मेरे पास बहुत कम आते हैं। इसलिए एक दिन जब प्रातःकाल गंगू मेरे सामने आकर खड़ा हो गया, तो मुझे बहुत बुरा लगा। ये लोग जब आते हैं, तो पेशगी हिसाब में कुछ माँगने के लिए या किसी दूसरे नौकर की शिकायत करने के लिए। मुझे ये दोनों ही बातें अत्यंत अप्रिय है। मैं पहिली तारीख को हर एक का वेतन चुका देता हूँ और बीच में जब कोई कुछ माँगता है, तो क्रोध आ जाता है। कौन दो-दो, चार-चार रुपये का हिसाब रखता फिरे। फिर जब किसी को महीने-भर की पूरी मजूरी मिल गयी, तो उसे क्या हक है कि उसे पन्द्रह दिन में खर्च कर दे और ऋण या पेशगी की शरण ले, और शिकायतों से तो मुझे घृणा है। मैं शिकायतों को दुर्बलता का प्रमाण समझता हूँ, या ठकुरसुहाती की क्षुद्र चेष्टा।

मैंने माथा सिकोड़ कर कहा—क्या बात है, मैंने तो तुम्हें बुलाया नहीं!

गंगू के तीखे अभिमानी मुख पर आच कुछ ऐसी नम्रता, कुछ ऐसी याचना कुछ ऐसा संकोच था कि मैं चकित हो गया। ऐसा जान पड़ा, वह कुछ जवाब देना चाहता है; मगर शब्द नहीं मिल रहे हैं।

मैंने जरा नम्र होकर कहा—आखिर क्या बात है, कहते क्यों नहीं? तुम जानते हो, यह मेरे टहलने का समय है। मुझे देर हो रही है।

गंगू ने निराश-भरे स्वर में कहा—तो आप हवा खाने जायँ, मैं फिर आ जाऊँगा।

यह अवस्था और भी चिन्ताजनक थी। इस जल्दी में तो वह एक क्षण में अपना वृत्तान्त कह सुनायेगा। वह जानता है कि मुझे ज्यादा अवकाश नहीं है। दूसरे अवसर पर तो दुष्ट घण्टों रोयेगा। मेरे कुछ लिखने-पढ़ने को तो वह शायद कुछ काम समझता हो; लेकिन विचार को, जो मेरे लिए सबसे कठिन साधना है, वह मेरे विश्राम का समय समझता है। वह उसी वक्त आ-कर मेरे सिर पर सवार हो जायगा।

मैंने निर्दयता के साथ कहा— क्या कुछ पेशगी माँगने आये हो? मैं पेशगी नहीं देता।

'जी नहीं सरकार, मैंने तो कभी पेशगी नहीं माँगा।'

'तो क्या किसी की शिकायत करना चाहते हो? मुझे शिकायतों से घृणा है?'

'जी नहीं सरकार, मैंने तो कभी किसी का शिकायत नहीं की?'

गंगू ने अपना दिल मजबूत किया। उसकी आकृति से स्पष्ट झलक रहा था, मानो वह कोई छलाँग मारने के लिए अपनी सारी शक्तियों को एकत्र कर रहा हो। और लड़खड़ाती हुई आवाज में बोला—मुझे आप छुट्टी दे दें। मैं आपकी नौकरी अब न कर सकूँगा।

यह इस तरह का पहला प्रस्ताव था, जो मेरे कानों में पड़ा। मेरे आत्मा-भिमान को चोट लगी। मैं जब अपने को मनुष्यता का पुतला समझता हूँ, अपने नौकरों को कभी कटु-वचन नहीं कहता, अपने स्वामित्व को यथासाध्य म्यान में रखने की चेष्टा करता हूँ, तब मैं इस प्रस्ताव पर क्यों न विस्मित हो जाता! कठोर स्वर में बोला—क्यों, क्या शिकायत है?

आपने तो हुजूर, जैसा अच्छा स्वभाव पाया है, वैसा क्या कोई पायेगा; लेकिन बात ऐसी आ पड़ी है कि अब मैं आपके यहाँ नहीं रह सकता। ऐसा न हो कि पीछे से कोई बात हो जाय, तो आपकी बदनामी हो। मैं नहीं चाहता कि मेरी वजह से आपकी आबरू में बट्टा लगे।

मेरे दिल में उलझन पैदा हुई। जिज्ञासा की अग्नि प्रचण्ड हो गयी। आत्म-समर्पण के भाव से बरामदे में पड़ी हुई कुर्सी पर बैठकर बोला—तुम तो पहेलियाँ बुझवा रहे हो। साफ-साफ क्यों नहीं कहते, क्या मामला है?

गंगू ने बड़ी नम्रता से कहा—बात यह है कि वह स्त्री, जो अभी विधवा-आश्रम से निकाल दी गयी है, वह गोमती देवी........

वह चुप हो गया। मैंने अधीर होकर कहा—हाँ, निकाल दी गयी है तो फिर? तुम्हारी नौकरी से उससे क्या सम्बन्ध?

गंगू ने जैसे अपने सिर का भारी बोझ जमीन पर पटक दिया—

'मैं उससे ब्याह करना चाहता हूँ बाबूजी!'

मैं विस्मय से उसका मुँह ताकने लगा। यह पुराने विचारों का पोंगा ब्राह्मण, जिसे नयी सभ्यता की हवा तक न लगी, उस कुलटा से विवाह करने जा रहा है, जिसे कोई भला आदमी अपने घर में कदम भी न रखने देगा। गोमती ने मुहल्ले के शान्त वातावरण में थोड़ी-सी हलचल पैदा कर दी। कई साल पहले वह विधवाश्रम में आयी थी। तीन बार आश्रम के कर्मचारियों

ने उसका विवाह कर दिया था, पर हर बार वह महीने-पन्द्रह दिन के बाद भाग आयी थी। यहाँ तक कि आश्रम के मन्त्री ने अब की बार उसे आश्रम से निकाल दिया था। तब से वह इसी मुहल्ले में एक कोठरी लेकर रहती थी और सारे मुहल्ले के शोहदों के लिए मनोरञ्जन का केन्द्र बनी हुई थी।

मुझे गंगू की सरलता पर क्रोध भी आया और दया भी। इस गधे को सारी दुनिया में कोई स्त्री ही न मिलती थी, जो इससे ब्याह करने जा रहा है। जब वह तीन बार पतियों के पास से भाग आयी, तो इसके पास कितने दिन रहेगी? कोई गाँठ का पूरा आदमी होता, तो एक बात भी थी। शायद साल-छः महीने टिक जाती। यह तो निपट आँख का अन्धा है। एक सप्ताह भी तो निबाह न होगा।

मैंने चेतावनी के भाव से पूछा—तुम्हें इस स्त्री की जीवन-कथा मालूम है?

गंगू ने आँखों-देखी बात की तरह कहा—सब झूठ है सरकार, लोगों ने हकनाहक उसको बदनाम कर दिया है।

'क्या कहते हो, वह तीन बार अपने पतियों के पास से नहीं भाग आयी?'

'उन लोगों ने उसे निकाल दिया, तो क्या करती?'

'कैसे बुद्धू आदमी हो! कोई इतनी दूर से आकर विवाह करके ले जाता है, हजारों रुपये खर्च करता है, इसीलिए कि औरत को निकाल दे?'

गंगू ने भावुकता से कहा—जहाँ प्रेम नहीं है हजूर, वहाँ कोई स्त्री नहीं रह सकती। स्त्री केवल रोटी-कपड़ा ही नहीं चाहती, कुछ प्रेम भी तो चाहती है। वे लोग समझते होंगे कि हमने एक विधवा से विवाह करके उसके ऊपर कोई बहुत बड़ा एहसान किया है। चाहते होंगे कि तन-मन से वह उनकी हो जाय, लेकिन दूसरे को अपना बनाने के लिए पहले आप उसका बन जाना पड़ता है हजूर। यह बात है। फिर उसे एक बीमारी भी है। उसे कोई भूत लगा हुआ है। वह कभी-कभी बक-झक करने लगती है और बेहोश हो जाती है।

'और तुम ऐसी स्त्री से विवाह करोगे?'—मैंने संदिग्ध भाव से सिर हिलाकर कहा—समझ लो, जीवन कड़वा हो जायगा।

गंगू ने शहीदों के-से आवेश से कहा—मैं तो समझता हूँ, मेरी जिन्दगी बन जायगी बाबूजी, आगे भगवान् की मर्जी!

मैंने जोर देकर पूछा—तो तुमने तय कर लिया है?

'हाँ, हजूर।'

'तो मैं तुम्हारा इस्तीफा मंजूर करता हूँ।'

मैं निरर्थक रूढ़ियों और व्यर्थ के बन्धनों का दास नहीं हूँ; लेकिन जो आदमी एक दुष्टा से विवाह करे, उसे अपने यहाँ रखना वास्तव में जटिल समस्या थी। आये-दिन टण्टे-बखेड़े होंगे, नयी-नयी उलझनें पैदा होंगी, कभी पुलिस दौड़ लेकर आयेगी, कभी मुकदमे खड़े होंगे। सम्भव है, चोरी की वारदातें भी हों। इस दलदल से दूर रहना ही अच्छा। गंगू क्षुधा-पीड़ित प्राणी की भाँति रोटी का टुकड़ा देखकर उसकी ओर लपक रहा है। रोटी जूठी है, सूखी हुई है, खाने योग्य नहीं है, इसकी उसे परवाह नहीं; उसको विचार-बुद्धि से काम लेना कठिन था। मैंने उसे पृथक् कर देने ही में अपनी कुशल समझी।

(२)

पाँच महीने गुजर गये। गंगू ने गोमती से विवाह कर लिया था और उसी मुहल्ले में एक खपरैल का मकान लेकर रहता था। वह अब चाट का खोंचा लगाकर गुजर-बसर करता था। मुझे जब कभी बाजार में मिल जाता, तो मैं उसका क्षेम-कुशल पूछता। मुझे उसके जीवन से विशेष अनुराग हो गया था। यह एक सामाजिक प्रश्न की परीक्षा थी—सामाजिक ही नहीं मनोवैज्ञानिक भी। मैं देखना चाहता था, इसका परिणाम क्या होता है। मैं गंगू को सदैव प्रसन्न-मुख देखता। समृद्धि और निश्चिन्तता से मुख पर जो एक तेज और स्वभाव में जो एक आत्म-सम्मान पैदा हो जाता है, वह मुझे यहाँ प्रत्यक्ष दिखायी देता था। रुपये-बीस आने की रोज बिक्री हो जाती थी। इसमें लागत निकालकर आठ-दस आने बच जाते थे। यही उसकी जीविका थी; किन्तु इसमें किसी देवता का वरदान था; क्योंकि इस वर्ग के मनुष्यों में जो निर्लज्जता और विपन्नता पायी जाती है, इसका वहाँ चिह्न तक न था। उसके मुख पर आत्म-विकास और आनन्द की झलक थी, जो चित्त की शान्ति से ही आ सकती है।

एक दिन मैंने सुना कि गोमती गंगू के घर से भाग गयी है। कह नहीं

सकता, क्यों? मुझे इस खबर से एक विचित्र आनन्द हुआ। मुझे गंगू के सन्तुष्ट और सुखी जीवन पर एक प्रकार की ईर्ष्या होती थी। मैं उसके विषय में किसी अनिष्ट की, किसी घातक अनर्थ की, किसी लज्जास्पद घटना की प्रतीक्षा करता था। इस खबर से इस ईर्ष्या को सान्त्वना मिली। आखिर वही बात हुई, जिसका मुझे विश्वास था। आखिर बचा को अपनी अदूरदर्शिता का दण्ड भोगना पड़ा। अब देखें, बचा कैसे मुँह दिखाते हैं। अब आँखें खुलेंगी, और मालूम होगा कि लोग, जो उन्हें इस विवाह से रोक रहे थे, उनके कैसे शुभचिन्तक थे। उस वक्त तो ऐसा मालूम होता था, मानो आपको कोई दुर्लभ पदार्थ मिला जा रहा हो। मानो मुक्ति का द्वार खुल गया है। लोगों ने कितना कहा कि यह स्त्री विश्वास के योग्य नहीं है, कितनों को दगा दे चुकी है, तुम्हारे साथ भी दगा करेगी; लेकिन इन कानों पर जूँ तक न रेंगी। अब मिलें, तो जरा उनका मिजाज पूछूँ। कहूँ—क्यों महाराज, देवीजी का यह वरदान पाकर प्रसन्न हुए या नहीं? तुम तो कहते थे, वह ऐसी है और वैसी है, लोग उसपर केवल दुर्भावना के कारण दोष आरोपित करते हैं। अब बतलाओ, किसकी भूल थी?

उसी दिन संयोगवश गंगू से बाजार में भेंट हो गयी। घबराया हुआ था, बदहवास था, बिलकुल खोया हुआ। मुझे देखते ही उसकी आँखों में आँसू भर आये, लज्जा से नहीं व्यथा से। मेरे पास आकर बोला—बाबूजी, गोमती ने मेरे साथ भी विश्वासघात किया। मैंने कुटिल आनन्द से, लेकिन कृत्रिम सहानुभूति दिखाकर, कहा—तुमसे तो मैंने पहले ही कहा था; लेकिन तुम माने ही नहीं, अब सब्र करो। इसके सिवा और क्या उपाय है। रुपये-पैसे ले गयी या कुछ छोड़ गयी?

गंगू ने छाती पर हाथ रखा। ऐसा जान पड़ा, मानो मेरे इस प्रश्न ने उसके हृदय को विदीर्ण कर दिया है।

'अरे बाबूजी, ऐसा न कहिए, उसने धेले की भी चीज नहीं छुई। अपना जो कुछ था, वह भी छोड़ गयी। न-जाने मुझमें क्या बुराई देखी। मैं उसके योग्य न था और क्या कहूँ। वह पढ़ी-लिखी थी, मैं करिया अच्छर भैंस बराबर। मेरे साथ इतने दिन रही, यही बहुत था। कुछ दिन और उसके साथ

रह जाता, तो आदमी बन जाता। उसका आपसे कहाँ तक बखान करूँ हजूर। औरों के लिए चाहे जो कुछ रही हो, मेरे लिए तो किसी देवता का आशीर्वाद थी। न-जाने मुझसे क्या ऐसी खता हो गयी। मगर कसम ले लीजिए, जो उसके मुख पर मैल तक आया हो। मेरी औकात ही क्या है बाबूजी? दस-बारह आने का मजूर हूँ; पर इसी में उसके हाथों इतनी बरक्कत थी कि कभी कमी नहीं पड़ी।'

मुझे इन शब्दों से घोर निराशा हुई। मैंने समझा था, वह उसकी बेवफाई की कथा कहेगा और मैं उसकी अन्ध-भक्ति पर कुछ सहानुभूति प्रकट करूँगा; मगर उस मूर्ख की आँखें अब तक नहीं खुलीं। अब भी उसी का मन्त्र पढ़ रहा है। अवश्य ही इसका चित्त कुछ अव्यवस्थित है।

मैंने कुटिल परिहास आरम्भ किया—तो तुम्हारे घर से कुछ नहीं ले गयी?'

'कुछ भी नहीं बाबूजी, धेले की भी चीज नहीं।'

'और तुमसे प्रेम भी बहुत करती थी?'

'अब आपसे क्या कहूँ बाबूजी, वह प्रेम तो मरते दम तक याद रहेगा।'

'फिर भी तुम्हें छोड़कर चली गयी?'

'यही तो आश्चर्य है बाबूजी!'

'त्रिया-चरित्र का नाम कभी सुना है?'

'अरे बाबूजी, ऐसा न कहिए। मेरी गर्दन पर कोई छुरी रख दे, तो भी मैं उसका यश ही गाऊँगा।'

'तो फिर ढूँढ़ निकालो!'

'हाँ, मालिक। जब तक उसे ढूढ़ँ न लाऊँगा, मुझे चैन न आयेगा। मुझे इतना मालूम हो जाय कि वह कहाँ है, फिर तो मैं उसे ले ही आऊँगा; और बाबूजी, मेरा दिल कहता है कि वह आयेगी जरूर। देख लीजिएगा। वह मुझसे रूठकर नहीं गयी; लेकिन दिल नहीं मानता। जाता हूँ, महीने-दो-महीने जंगल-पहाड़ की धूल छानूँगा। जीता रहा, तो फिर आपके दर्शन करूँगा।'

यह कह कर वह उन्माद की दशा में एक तरफ चल दिया।

(३)

इसके बाद मुझे एक जरूरत से नैनीताल जाना पड़ा। सैर करने के लिए

नहीं। एक महीने के बाद लौटा, और अभी कपड़े भी न उतारने पाया था कि देखता हूँ, गंगू एक नव-जात शिशु को गोद में लिये खड़ा है। शायद कृष्ण को पाकर नन्द भी इतने पुलकित न हुए होंगे। मालूम होता था, उसके रोम-रोम से आनन्द फूटा पड़ता है। चेहरे और आँखों से कृतज्ञता और श्रद्धा के राग-से निकल रहे थे। कुछ वही भाव था, जो किसी क्षुधा-पीड़ित भिक्षुक के चेहरे पर भर पेट भोजन करने के बाद नजर आता है।

मैंने पूछा—कहो महाराज, गोमतीदेवी का कुछ पता लगा, तुम तो बाहर गये थे?

गंगू ने आपे में न समाते हुए जवाब दिया—हाँ बाबूजी, आपके आशीर्वाद से ढूँढ़ लाया। लखनऊ के जनाने अस्पताल में मिली। यहाँ एक सहेली से कह गयी थी कि अगर वह बहुत घबरायें, तो बतला देना। मैं सुनते ही लखनऊ भागा और उसे घसीट लाया। घाते में यह बच्चा भी मिल गया।

उसने बच्चे को उठाकर मेरी तरफ बढ़ाया। मानो कोई खिलाड़ी तमगा पाकर दिखा रहा हो।

मैंने उपहास के भाव से पूछा—अच्छा, यह लड़का भी मिल गया! शायद इसीलिए वह यहाँ से भागी थी। है तो तुम्हारा ही लड़का?

'मेरा काहे को है बाबूजी, आपका है, भगवान का है।'

'तो लखनऊ में पैदा हुआ?'

'हाँ बाबूजी, अभी तो कुल एक महीने का है।'

'तुम्हारे ब्याह हुए कितने दिन हुए?'

'यह साँतवाँ महीना जा रहा है।'

'तो शादी के छठे महीने पैदा हुआ?

'और क्या बाबूजी—।'

'फिर भी तुम्हारा लड़का है?'

'हाँ, जी।'

'कैसी बे-सिर-पैर की बातें कर रहे हो?'

मालूम नहीं, वह मेरा आशय समझ रहा था, या बन रहा था। उसी निष्कपट भाव से बोला—मरते-मरते बची, बाबूजी नया जनम हुआ। तीन दिन, तीन रात छटपटाती रही। कुछ न पूछिए।

मैंने अब जरा व्यंग-भाव से कहा—लेकिन छः महीने में लड़का होते आज ही सुना।

यह चोट निशाने पर जा बैठी।

मुसकराकर बोला—अच्छा, वह बात! मुझे तो उसका ध्यान भी नहीं आया। इसी भय से तो गोमती भागी थी। मैंने कहा—गोमती, अगर तुम्हारा मन मुझसे नहीं मिलता, तो तुम मुझे छोड़ दो। मैं अभी चला जाऊँगा और फिर कभी तुम्हारे पास न आऊँगा। तुमको जब कुछ काम पड़े तो मुझे लिखना, मैं भरसक तुम्हारी मदद करूँगा। मुझे तुमसे कुछ मलाल नहीं है। मेरी आँखों में तुम अब भी उतनी ही भली हो। अब भी मैं तुम्हें उतना ही चाहता हूँ। नहीं, अब मैं तुम्हें और ज्यादा चाहता हूँ; लेकिन अगर तुम्हारा मन मुझसे फिर नहीं गया है, तो मेरे साथ चलो। गंगू जीते-जी तुमसे बेवफाई नहीं करेगा। मैंने तुमसे इसलिए विवाह नहीं किया कि तुम देवी हो; बल्कि इसलिए कि मैं तुम्हें चाहता था और सोचता था कि तुम भी मुझे चाहती हो। यह बच्चा मेरा बच्चा है। मेरा अपना बच्चा है। मैंने एक बोया हुआ खेत लिया, तो क्या उसकी फसल को इसलिए छोड़ दूँगा, कि उसे किसी दूसरे ने बोया था?

यह कह कर उसने जोर से ठट्ठा मारा।

मैं कपड़े उतारना भूल गया। कह नहीं सकता, क्यों मेरी आँखें सजल हो गयीं। न-जाने वह कौन-सी शक्ति थी, जिसने मेरी मनोगत घृणा को दबाकर मेरे हाथों को बढ़ा दिया। मैंने उस निष्कलंक बालक को गोद में ले लिया और इतने प्यार से उसका चुम्बन लिया कि शायद अपने बच्चों का भी न लिया होगा।

गंगू बोला—बाबूजी, आप बड़े सज्जन हैं। मैं गोमती से बार-बार आपका बखान किया करता हूँ। कहता हूँ, चल, एक बार उनके दर्शन कर आ; लेकिन मारे लाज के आती ही नहीं।

मैं और सज्जन! अपनी सज्जनता का पर्दा आज मेरी आँखों से हटा। मैंने भक्ति से डूबे हुए स्वर में कहा—नहीं जी, मेरे-जैसे कलुषित मनुष्य के पास वह क्या आयेंगी। चलो, मैं उनके दर्शन करने चलता हूँ। तुम मुझे सज्जन समझते हो? मैं ऊपर से सज्जन हूँ; पर दिल का कमीना हूँ। असली सज्जनता तुममें है और यह बालक वह फूल है, जिससे तुम्हारी सज्जनता की महक निकल रही है।

मैं बच्चे को छाती से लगाये हुए गंगू के साथ चला।

जीवन का शाप

कावसजी ने पत्र निकाला और यश कमाने लगे। शापूरजी ने रूई की दलाली शुरू की और धन कमाने लगे ? कमाई दोनों ही कर रहे थे, पर शापूरजी प्रसन्न थे; कावसजी विरक्त। शापूरजी को धन के साथ सम्मान और यश आप-ही-आप मिलता था। कावसजी को यश के साथ धन दूरबीन से देखने पर भी न दिखायी देता था; इसलिए शापूरजी के जीवन में शांति थी, सहृदयता थी, आशीर्वाद था, क्रीड़ा थी। कावसजी के जीवन में अशांति थी, कटुता थी, निराशा थी, उदासीनता थी। धन को तुच्छ समझने की वह बहुत चेष्टा करते थे; लेकिन प्रत्यक्ष को कैसे झुठला देते ? शापूरजी के घर में विराजने वाले सौजन्य और शांति के सामने उन्हें अपने घर के कलह और फूहड़-पन से घृणा होती थी। मृदुभाषिणी मिसेज़ शपूर के सामने उन्हें अपनी गुलशन बानू संकीर्णता और ईर्ष्या का अवतार-सी लगती थी। शापूरजी घर में आते, तो शीरींबाई मृदु हास से उनका स्वागत करती। वह खुद दिन-भर के थके-माँदे घर आते, तो गुलशन अपना दुखड़ा सुनाने बैठ जाती और उनको खूब फटकारें बताती—तुम भी अपने को आदमी कहते हो ! मैं तो तुम्हें बैल समझती हूँ, बैल बड़ा मेहनती है, गरीब है, सन्तोषी है, माना; लेकिन उसे विवाह करने का क्या हक था ?

कावसजी से एक लाख बार यह प्रश्न किया जा चुका था कि जब तुम्हें समाचार-पत्र निकालकर अपना जीवन बरबाद करना था, तो तुमने विवाह क्यों किया ? क्यों मेरी जिन्दगी तबाह कर दी ? जब तुम्हारे घर में रोटियाँ न थीं, तो मुझे क्यों लाये ! इस प्रश्न का जवाब देने की कावसजी में शक्ति न थी। उन्हें कुछ सूझता ही न था। वह सचमुच अपनी गलती पर पछताते थे। एक बार बहुत तंग आकर उन्होंने कहा था—अच्छा भाई, अब तो जो होना था, हो चुका; लेकिन मैं तुम्हें बाँधे तो नहीं हूँ, तुम्हें जो पुरुष ज्यादा सुखी रख सके, उसके साथ जाकर रहो, अब मैं क्या कहूँ ? आमदनी नहीं

बढ़ती, तो मैं क्या करूँ ? क्या चाहती हो, जान दे दूँ ? इस पर गुलशन ने उनके दोनों कान पकड़कर जोर से ऐंठे और गालों पर दो तमाचे लगाये और पैनी आँखों से काटती हुई बोली—अच्छा, अब चोंच सँभालो, नहीं तो अच्छा न होगा। ऐसी बात मुँह से निकालते तुम्हें लाज नहीं आती। हयादार होते, तो चिल्लू भर पानी में डूब मरते। उस दूसरे पुरुष के महल में आग लगा दूँगी, उसका मुँह झुलस दूँगी। तब से बेचारे कावसजी के पास इस प्रश्न का कोई जवाब न रहा। कहाँ तो यह असन्तोष और विद्रोह की ज्वाला, और कहाँ वह मधुरता और भद्रता की देवी शीरीं, जो कावसजी को देखते ही फूल की तरह खिल उठतीं, मीठी-मीठी बातें करतीं चाय, मुरब्बे और फूलों से सत्कार करती और अक्सर उन्हें अपनी कार पर घर पहुँचा देती। कावसजी ने कभी मन में भी इसे स्वीकार करने का साहस नहीं किया; मगर उनके हृदय में यह लालसा छिपी हुई थी कि गुलशन की जगह शीरीं होती, तो उनका जीवन कितना गुलजार होता ! कभी-कभी गुलशन को कटूक्तियों से वह इतने दुखी हो जाते कि यमराज का आवाहन करते। घर उनके लिए कैदखाने से कम जान-लेवा न था और उन्हें जब अवसर मिलता, सीधे शीरीं के घर जाकर अपने दिल की जलन बुझा आते।

(२)

एक दिन कावसजी सबेरे गुलशन से झल्लाकर शापूरजी के टेरेस में पहुँचे, तो देखा शीरीं बानू की आँखें लाल हैं और चेहरा भभराया हुआ है, जैसे रोकर उठी हों। कावसजी ने चिन्तित होकर पूछा—आपका जी कैसा है ? बुखार तो नहीं आ गया ?

शीरीं ने दर्द-भरी आँखों से देखकर रोनी आवाज से कहा—नहीं, बुखार तो नहीं है, कम-से-कम देह का बुखार तो नहीं है।

कावसजी इस पहेली का कुछ मतलब न समझे।

शीरीं ने एक क्षण मौन रहकर फिर कहा—आपको मैं अपना मित्र समझती हूँ मि० कावसजी ! आपसे क्या छिपाऊँ। मैं इस जीवन से तंग आ गयी हूँ ! मैंने अब तक हृदय की आग हृदय में रखी; लेकिन ऐसा मालूम होता है कि अब उसे बाहर न निकालूँ, तो मेरी हड्डियाँ तक जल जायँगी। इस वक्त

आठ बजे हैं; लेकिन मेरे रँगीले पिया का कहीं पता नहीं। रात को खाना खाकर वह एक मित्र से मिलने का बहाना करके घर से निकले थे और अभी तक लौटकर नहीं आये। यह आज कोई नई बात नहीं है, इधर कई महीनों से यह इनकी रोज की आदत है। मैंने आज तक आपसे कभी अपना दर्द नहीं कहा; मगर उस समय भी, जब मैं हँस-हँसकर आपसे बातें करती थी, मेरी आत्मा रोती रहती थी।

कावसजी ने निष्कपट भाव से कहा—तुमने पूछा नहीं, कहाँ रह जाते हो?

'पूछने से क्या लोग अपने दिल की बातें बता दिया करते हैं?'

'तुमसे तो उन्हें कोई भेद न रखना चाहिए।'

'घर में जी न लगे तो आदमी क्या करे?'

'मुझे यह सुनकर आश्चर्य हो रहा है। तुम जैसी देवी जिस घर में हो, वह स्वर्ग है। शापूरजी को तो अपना भाग्य सराहना चाहिए!'

'आपका यह भाव तभी तक है, जब तक आपके पास धन नहीं है। आज तुम्हें कहीं से दो-चार लाख मिल जाय, तो तुम यों न रहोगे, और तुम्हारे ये भाव बदल जायँगे। यही धन का सबसे बड़ा अभिशाप है। ऊपरी सुख-शांति के नीचे कितनी आग है, यह तो उसी वक्त खुलता है, जब ज्वालामुखी फट पड़ता है। वह समझते हैं, धन से घर भर कर उन्होंने मेरे लिए वह सब कुछ कर दिया जो उनका कर्तव्य था, और अब मुझे असन्तुष्ट होने का कोई कारण नहीं। यह नहीं जानते कि ऐश के ये सामान उन मिश्री-तहखानों में गड़े हुए पदार्थों की तरह हैं, जो मृतात्मा के भोग के लिए रखे जाते थे,

कावसजी आज एक नयी बात सुन रहे थे। उन्हें अब तक जीवन का जो अनुभव हुआ था, वह यह था कि स्त्री अन्तःकरण से विलासिनी होती है। उस पर लाख प्राण वारो, उनके लिए मर ही क्यों न मिटो; लेकिन व्यर्थ। वह केवल खरहरा नहीं चाहती, उससे कहीं ज्यादा दाना और घास चाहती है। लेकिन एक यह देवी है, जो विलास की चीजों को तुच्छ समझती है और केवल मीठे स्नेह और सहवास से ही प्रसन्न रहना चाहती है। उनके मन में गुदगुदी-सी उठी।

मिसेज शापूर ने फिर कहा—उनका यह व्यापार मेरी बर्दाश्त के बाहर हो

गया है, मि० कावसजी! मेरे मन में विद्रोह की ज्वाला उठ रही है, और मैं धर्म, शास्त्र और मर्यादा इन सभी का आश्रय लेकर भी त्राण नहीं पाती। मन को समझाती हूँ—क्या संसार में लाखों विधवाएँ नहीं पड़ी हुई हैं; लेकिन किसी तरह चित्त नहीं शान्त होता। मुझे विश्वास आता जाता है कि वह मुझे मैदान में आने के लिए चुनौती दे रहे हैं। मैंने अब तक उनकी चुनौती नहीं ली है; लेकिन अब पानी सिर के ऊपर चढ़ गया है और मैं किसी तिनके का सहारा ढूँढ़े बिन नहीं रह सकती। वह जो चाहते हैं, वह हो जायगा। आप उनके मित्र हैं, आपसे बन पड़े, तो उनको समझाइए। मैं इस मर्यादा की बेड़ी को अब और न पहन सकूँगी।

मि० कावसजी मन में भावी सुख कर एक स्वर्ग निर्माण कर रहे थे। बोले—हाँ-हाँ, मैं अवश्य समझाऊँगा। यह तो मेरा धर्म है; लेकिन मुझे आशा नहीं कि मेरे समझाने का उनपर कोई असर हो। मैं तो दरिद्र हूँ, मेरे समझाने का उनकी दृष्टि में मूल्य ही क्या?

'यों वह मेरे ऊपर बड़ी कृपा रखते हैं बस, उनकी यही आदत मुझे पसन्द नहीं!'

'तुमने इतने दिनों बर्दाश्त किया, यही आश्चर्य है। कोई दूसरी औरत तो एक दिन न सहती।'

'थोड़ी-बहुत तो यह आदत सभी पुरुषों में होती है; लेकिन ऐसे पुरुषों की स्त्रियाँ भी वैसी ही होती हैं। कर्म से न सही, मन से ही सही। मैंने तो सदैव इनको अपना इष्टदेव समझा।'

'किन्तु जब पुरुष इसका अर्थ ही न समझे, तो क्या हो? मुझे भय है, वह मन में कुछ और न सोच रहे हों।'

'और क्या सोच सकते हैं?'

'आप अनुमान कर सकतीं?'

'अच्छा, वह बात! मगर मेरा कोई अपराध?'

'शेर और मेमनेवाली कथा आपने नहीं सुनी?'

मिसेज़ शापूर एकाएक चुप हो गयीं। सामने से शापूरजी की कार आती दिखायी दी। उन्होंने कावसजी को ताकीद और विनय-भरी आँखों से देखा

और दूसरे द्वार के कमरे से निकलकर अन्दर चली गयीं। मि० शापूर लाल आँखें किये कार से उतरे और मुसकराकर कावसजी से हाथ मिलाया। स्त्री की आँखें भी लाल थीं, पति की आँखें भी लाल। एक रुदन से, दूसरी रात की खुमारी से।

(३)

शापूरजी ने हैट उतारकर खूँटी पर लटकाते हुए कहा—क्षमा कीजिएगा, मैं रात को एक मित्र के घर सो गया था। दावत थी। खाने में देर हुई, तो मैंने सोचा अब कौन घर जाय।

कावसजी ने व्यंग्य मुसकान के साथ कहा—किसके यहाँ दावत थी? मेरे रिपोर्टर ने तो कोई खबर नहीं दी। जरा मुझे नोट कर दीजिएगा।

उन्होंने जेब से नोटबुक निकाली।

शापूरजी ने सतर्क होकर कहा—ऐसी कोई बड़ी दावत नहीं थी जी, दो-चार मित्रों का प्रीतिभोज था।

'फिर भी समाचार तो जानना ही चाहिए। जिस प्रीतिभोज में आप-जैसे प्रतिष्ठित लोग शरीक हों, वह साधारण बात नहीं हो सकती। क्या नाम है मेजवान साहब का?'

'आप चौंकेंगे तो नहीं?'

'बतलाइए तो।'

'मिस गौहर!'

'मिस गौहर!!'

'जी हाँ, आप चौंके क्यों? क्या आप इसे तस्लीम नहीं करते कि दिन-भर रुपये-आने-पाई से सिर मारने के बाद मुझे कुछ मनोरंजन करने का भी अधिकार है, नहीं तो जीवन भार हो जाय।'

'मैं इसे नहीं मानता।'

'क्यों?'

'इसीलिए कि मैं इस मनोरंजन को अपनी व्याहता स्त्री के प्रति अन्याय समझता हूँ।'

शापूरजी नकली हँसी हँसे—वही दकियानूसी बात। आपको मालूम होना चाहिए; आज का समय ऐसा कोई बन्धन स्वीकार नहीं करता।

'और मेरा खयाल है कि कम-से-कम इस विषय में आज का समाज एक पीढ़ी पहले के समाज से कहीं परिष्कृत है। अब देवियों का यह अधिकार स्वीकार किया जाने लगा है।'

'यानी देवियाँ पुरुषों पर हुकूमत कर सकती हैं?'

'उसी तरह जैसे पुरुष देवियों पर हुकूमत कर सकते हैं।'

'मैं इसे नहीं मानता। पुरुष स्त्री का मुहताज नहीं है, स्त्री पुरुष की मुहताज है।'

'आपका आशय यही तो है कि स्त्री अपने भरण-पोषण के लिए पुरुष पर अवलम्बित है?'

'अगर आप इन शब्दों में कहना चाहते हैं, तो मुझे कोई आपत्ति नहीं; मगर अधिकार की बागडोर जैसे राज-नीति में, वैसे ही समाज-नीति में धन-बल के हाथ रही है और रहेगी।'

'अगर दैवयोग से धनोपार्जन का काम स्त्री कर रही हो और पुरुष कोई काम न मिलने के कारण घर बैठा हो, तो स्त्री को अधिकार है कि अपना मनोरंजन जिस तरह चाहे करे?'

'मैं स्त्री को अधिकार नहीं दे सकता।'

'यह आपका अन्याय है।

'बिलकुल नहीं। स्त्री पर प्रकृति ने ऐसे बन्धन लगा दिये हैं कि वह जितना भी चाहे, पुरुष की भाँति स्वच्छन्द नहीं रह सकती और न पशुबल में पुरुष का मुकाबला ही कर सकती है। हाँ, गृहिणी का पदत्याग कर या अप्राकृतिक जीवन का आश्रय लेकर, वह सब कुछ कर सकती है।'

'आप लोग उसे मजबूर कर रहे हैं कि अप्राकृतिक जीवन का आश्रय ले।'

'मैं ऐसे समय की कल्पना ही नहीं कर सकता, जब पुरुषों का आधिपत्य स्वीकार करनेवाली औरतों का काल पड़ जाय। कानून और सभ्यता मैं नहीं जानता। पुरुषों ने स्त्रियों पर हमेशा राज किया है और करेंगे।'

सहसा कावसजी ने पहलू बदला। इतनी थोड़ी-सी देर में ही वह अच्छे

खासे कूटनीति-चतुर हो गये थे। शापूरजी को प्रशंसा-सूचक आँखों से देखकर बोले—तो हम और आप दोनों एक विचार के हैं। मैं आपकी परीक्षा ले रहा था। मैं भी स्त्री को गृहिणी, माता और स्वामिनी, सब कुछ मानने को तैयार हूँ; पर उसे स्वच्छन्द नहीं देख सकता। अगर कोई स्त्री स्वच्छन्द होना चाहती है तो उसके लिए मेरे घर में स्थान नहीं है। अभी मिसेज़ शापूर की बातें सुनकर मैं दंग रह गया। मुझे इसकी कल्पना भी न थी कि कोई नारी मन में इतने विद्रोहात्मक भावों को स्थान दे सकती है।

मि० शापूर की गर्दन की नसें तन गयीं; नथने फूल गये। कुर्सी से उठकर बोले—अच्छा, तो अब शीरीं ने यह ढंग निकाला! मैं अभी उससे पूछता हूँ—आपके सामने पूछता हूँ—अभी फैसला कर डालूँगा। मुझे उसकी परवाह नहीं है। किसी की परवाह नहीं है। बेवफा औरत! जिसके हृदय में जरा भी संवेदना नहीं, जो मेरे जीवन में जरा-सा आनन्द भी नहीं सह सकती, चाहती है, मैं उसके अञ्चल में बँधा-बँधा घूमूँ! शापूर से यह आशा रखती है? अभागिनी भूल जाती है कि आज मैं आँखों का इशारा कर दूँ, तो एक सौ एक शीरियाँ मेरी उपासना करने लगें, जी हाँ, मेरे इशारों पर नाचें। मैंने इसके लिए जो कुछ किया, बहुत कम पुरुष किसी स्त्री के लिए करते हैं। मैंने ....मैंने....

उन्हें खयाल आ गया कि वह जरूरत से ज्यादा बहके जा रहे हैं। शीरीं की प्रेममय सेवाएँ-याद आयी, रुककर बोले—लेकिन मेरा खयाल है कि वह अब भी समझ से काम ले सकती है। मैं उसका दिल नहीं दुखाना चाहता। मैं यह भी जानता हूँ कि वह ज्यादा-से-ज्यादा जो कर सकती है, वह शिकायत है। इसके आगे बढ़ने की हिमाकत वह नहीं कर सकती। औरतों को मना लेना बहुत मुश्किल नहीं है, कम-से-कम मुझे तो यही तजरबा है।

कावसजी ने खण्डन किया—मेरा तजरबा तो कुछ और है।

'हो सकता है; मगर आपके पास खाली बातें हैं, मेरे पास लक्ष्मी का आशीर्वाद है।'

'जब मन में विद्रोह के भाव जम गये, तो लक्ष्मी के टाले भी नहीं टल सकते।

शापूरजी ने विचारपूर्ण भाव से कहा—शायद आपका विचार ठीक है।

(४)

कई दिन के बाद कावसजी की शीरीं से पार्क में मुलाकात हुई। वह इसी अवसर की खोज में थे। उनका स्वर्ग तैयार हो चुका था। केवल उसमें शीरीं को प्रतिष्ठित करने की कसर थी। उस शुभ-दिन की कल्पना में वह पागल-से हो रहे थे। गुलशन को उन्होंने उसके मैके भेज दिया था। भेज क्या दिया था, वह रूठकर चली गयी थी। जब शीरीं उनकी दरिद्रता का स्वागत कर रही है, तो गुलशन की खुशामद क्यों की जाय? लपककर शीरीं से हाथ मिलाया और बोले—आप खूब मिलीं। मैं आज आनेवाला था।

शीरीं ने गिला करते हुए कहा—आपकी राह देखते-देखते आँखें थक गयीं। आप भी जबानी हमदर्दी ही करना जानते हैं। आपको क्या खबर, इन कई दिनों में मेरी आँखों से कितने आँसू बहे हैं।

कावसजी ने शीरींबानू की उत्कण्ठापूर्ण मुद्रा देखी, जो बहुमूल्य रेशमी साड़ी की आब से और भी दमक उठी थी, और उनका हृदय अंदर से बैठता हुआ जान पड़ा। उस छात्र की-सी दशा हुई, जो आज अन्तिम परीक्षा पास कर चुका हो और जीवन का प्रश्न उसके सामने अपने भयंकर रूप में खड़ा हो। काश वह कुछ दिन और परीक्षाओं की भूल-भुलैया में जीवन के स्वप्नों का आनन्द ले सकता! उस स्वप्न के सामने यह सत्य कितना डरावना था। अभी तक कावसजी ने मधुमक्खी का शहद ही चखा था। इस समय वह उनके मुख पर मँड़रा रही थी और वह डर रहे थे कि कहीं डंक न मारे।

दबी हुई आवाज से बोले—मुझे यह सुनकर बड़ा दुख हुआ। मैंने तो शापूर को बहुत समझाया था।

शीरीं ने उनका हाथ पकड़कर एक बेंच पर बिठा दिया और बोली—उन पर अब समझाने-बुझाने का कोई असर न होगा। और मुझे ही क्या गरज पड़ी है कि मैं उनके पाँव सहलाती रहूँ। आज मैंने निश्चय कर लिया है, अब उस घर में लौटकर न जाऊँगी। अगर उन्हें अदालत में जलील होने का शौक है, तो मुझ पर दावा करें, मैं तैयार हूँ। मैं जिसके साथ नहीं रहना चाहती, उसके साथ रहने के लिए ईश्वर भी मुझे मजबूर नहीं कर

सकता, अदालत क्या कर सकती है ? अगर तुम मुझे आश्रय दे सकते हो, तो मैं तुम्हारी बनकर रहूँगी, जब तक तुम मेरे रहोगे। अगर तुममें इतना आत्म-बल नहीं है, तो मेरे लिए दूसरे द्वार खुल जायँगे। अब साफ-साफ बतलाओ, क्या वह सारी सहानुभूति जबानी थी ?

कावसजी ने कलेजा मजबूत करके कहा—नहीं-नहीं, शीरीं, खुदा जानता है, मुझे तुमसे कितना प्रेम है। तुम्हारे लिए मेरे हृदय में स्थान है।

'मगर गुलशन को क्या करोगे ?'

'उसे तलाक दे दूँगा।'

'हाँ, यही मैं भी चाहती हूँ। तो मैं तुम्हारे साथ चलूँगी, अभी, इसी दम। शापूर से अब मेरा कोई सम्बन्ध नहीं है।'

कावसजी को अपने दिल में कम्पन का अनुभव हुआ। बोले—लेकिन अभी तो वहाँ कोई तैयारी नहीं है।

'मेरे लिए किसी तैयारी की जरूरत नहीं। तुम सब कुछ हो। टैक्सी ले लो। मैं इसी वक्त चलूँगी।'

कावसजी टैक्सी की खोज मे पार्क से निकले। वह एकान्त में विचार करने के लिए थोड़ा-सा समय चाहते थे, इस बहाने से उन्हें समय मिल गया। उन पर अब जवानी का वह नशा न था, जो विवेक की आँखों पर छाकर बहुधा हमें गड्ढे में गिरा देता था। अगर कुछ नशा था, तो अब तक हिरन हो चुका था। वह किस फन्दे में गला डाल रहे हैं, वह खूब समझते थे। शापूरजी उन्हें मिट्टी में मिला देने के लिए पूरा जोर लगायेंगे, यह भी उन्हें मालूम था। गुलशन उन्हें सारी दुनिया में बदनाम कर देगी, यह भी वह जानते थे। ये सब विपत्तियाँ झेलने को वह तैयार थे। शापूर की जबान बन्द करने के लिए उनके पास काफी दलीलें थीं। गुलशन को भी स्त्री-समाज में अपमानित करने का उनके पास काफी मसाला था। डर था, तो यह कि शीरीं का यह प्रेम टिक सकेगा या नहीं। अभी तक शीरीं ने केवल उसके सौजन्य का परिचय पाया है, केवल उनकी न्याय, सत्य और उदारता से भरी बातें सुनी हैं। इस क्षेत्र में शापूरजी से उन्होंने बाजी मारी है, लेकिन उनके सौजन्य और उनकी प्रतिमा का जादू उनके बेसरोसामान घर में कुछ दिन रहेगा, इसमें उन्हें सन्देह

था। हलवे की जगह चुपड़ी रोटियाँ भी मिलें, तो आदमी सब्र कर सकता है। रूखी भी मिल जायँ, तो वह सन्तोष कर लेगा; लेकिन सूखी घास सामने देखकर तो ऋषि-मुनि भी जामे से बाहर हो जायँगे। शीरीं उनसे प्रेम करती है; लेकिन प्रेम के त्याग की भी तो सीमा है। दो-चार दिन भावुकता के उन्माद में वह सब्र कर ले; लेकिन भावुकता कोई टिकाऊ चीज तो नहीं है। वास्तविकता के आघातों के सामने यह भावुकता कै दिन टिकेगी। उस परिस्थिति की कल्पना करके कावसजी काँप उठे। अब तक वह रनिवास में रही है। अब उसे एक खपरैल का कॉटेज मिलेगा, जिसकी फर्श पर कालीन की जगह टाट भी नहीं; कहाँ वरदीपोश नौकरों की पलटन, कहाँ एक बुढ़िया मामा की सन्दिग्ध सेवाएँ जो बात-बात पर भुनभुनाती है, धमकाती है, कोसती है। उनका आधा वेतन तो संगीत सिखाने वाला मास्टर ही खा जायगा और शापूरजी ने कहीं ज्यादा कमीना-पन से काम लिया, तो उनको बदमाशों से पिटवा भी सकते हैं। पिटने से वह नहीं डरते। यह तो उनकी फतह होगी; लेकिन शीरीं की भोग-लालसा पर कैसे विजय पायें ? बुढ़िया मामा जब मुँह लटकाये आकर उसके सामने रोटियाँ और सालन परोस देगी, तब शीरीं के मुख पर कैसी विदग्ध विरक्ति छा जायगी ! कहीं वह खड़ी होकर उनको और अपनी किस्मत को कोसने न लगे। नहीं, अभाव की पूर्ति सौजन्य से नहीं हो सकती। शीरीं का वह रूप कितना विकराल होगा !

सहसा एक कार सामने से आती दिखायी दी। कावसजी ने देखा—शापूरजी बैठे हुए थे। उन्होंने हाथ उठा कर कार को रुकवा लिया और पीछे दौड़ते हुए जाकर शापूरजी से बोले—आप कहाँ जा रहे हैं ?

'यों ही जरा घूमने निकला था।'

'शीरींबानू पार्क में हैं, उन्हें भी लेते जाइए।'

'वह तो मुझसे लड़कर आयी हैं कि अब इस घर में कभी कदम न रखूँगी।'

'और आप सैर करने जा रहे हैं ?'

'तो क्या आप चाहते हैं, बैठ कर रोऊँ ?'

'वह बहुत रो रही हैं।'

'सच !'

'हाँ, बहुत रो रही हैं।'

'तो शायद उसकी बुद्धि जाग रही है।'

'तुम इस समय उन्हें मना लो, तो वह हर्ष से तुम्हारे साथ चली जायँ।'

'मैं परीक्षा करना चाहता हूँ कि वह बिना मनाये मानती है या नहीं।'

'मैं बड़े असमंजस में पड़ा हुआ हूँ। मुझपर दया करो, तुम्हारे पैरों पड़ता हूँ।'

'जीवन में जो थोड़ा सा आनन्द है, उसे मनावन के नाट्य में नहीं छोड़ना चाहता।'

कार चल पड़ी और कावसजी कर्तव्य-भ्रष्ट-से वहीं खड़े रह गये। देर हो रही थी। सोचा—कहीं शीरीं यह न समझ ले कि मैंने भी उसके साथ दगा की; लेकिन जाऊँ भी तो क्योंकर ? अपने सम्पादकीय कुटीर में उस देवी को प्रतिष्ठित करने की कल्पना ही उन्हें हास्यास्पद लगी। वहाँ के लिए तो गुलशन ही उपयुक्त है। कुढ़ती है, कठोर बातें कहती है, रोती है; लेकिन वक्त से भोजन तो देती है। फटे हुए कपड़ों को रफू तो कर देती है, कोई मेहमान आ जाता है, तो कितने प्रसन्न-मुख से उसका आदर-सत्कार करती है, मानो उसके मन में आनन्द-ही-आनन्द है। कोई छोटी सी चीज भी दे दी, तो कितना फूल उठती है। थोड़ी-सी तारीफ करके चाहे उससे गुलामी करवा लो। अब उन्हें अपनी जरी-जरी-सी बात पर झुँझला पड़ना, उसकी सीधी-सी बातों का टेढ़ा जवाब देना, विकल करने लगा। उस दिन उसने यही तो कहा था कि उसकी छोटी बहन के साल-गिरह पर कोई उपहार भेजना चाहिए। इसमें बरस पड़ने की कौन-सी बात थी। माना वह अपना सम्पादकीय नोट लिख रहे थे; लेकिन उनके लिए सम्पादकीय नोट जितना महत्व रखता है, क्या गुलशन के लिए उपहार भेजना उतना ही या उससे ज्यादा महत्व नहीं रखता ? बेशक, उनके पास उस समय रुपये न थे, तो क्या वह मीठे शब्दों में यह नहीं कह सकते थे कि डार्लिंग ! मुझे खेद है, अभी हाथ खाली है, दो-चार रोज में मैं कोई प्रबन्ध कर दूँगा। यह जवाब सुनकर वह चुप हो जाती। और अगर

कुछ भुनभुना ही लेती, तो उनका क्या बिगड़ा जाता था ? अपनी टिप्पणियों में वह कितनी शिष्टता का व्यवहार करते हैं। कलम जरा भी गर्म पड़ जाय, तो गर्दन नापी जाय। गुलशन पर वह क्यों बिगड़ जाते हैं ? इसीलिए कि वह उनके अधीन है और उन्हें रूठ जाने के सिवा कोई दण्ड नहीं दे सकती। कितनी नीच कायरता है कि हम सबलों के सामने दुम हिलायें और जो हमारे लिए अपने जीवन का बलिदान कर रही है, उसे काटने दौड़ें।

सहसा एक ताँगा आता हुआ दिखायी दिया और सामने आते ही उस पर से एक स्त्री उतर कर उनकी ओर चली। अरे ! यह तो गुलशन है। उन्होंने आतुरता से आगे बढ़कर उसे गले लगा लिया और बोले—तुम इस वक्त यहाँ कैसे आयी ? मैं अभी-अभी तुम्हारा ही खयाल कर रहा था।

गुलशन ने गद्गद् कण्ठ से कहा—तुम्हारे ही पास जा रही थी। शाम को बरामदे में बैठी तुम्हारा लेख पढ़ रही थी। न-जाने कब झपकी आ गयी और मैंने एक बुरा सपना देखा। मारे डर के मेरी नींद खुल गयी और तुमसे मिलने चल पड़ी। इस वक्त यहाँ कैसे खड़े हो ? कोई दुर्घटना तो नहीं हो गयी ? रास्ते भर मेरा कलेजा धड़क रहा था।

कावसजी ने आश्वासन देते हुए कहा—मैं तो बहुत अच्छी तरह हूँ। तुमने क्या स्वप्न देखा ?

'मैंने देखा—जैसे तुमने एक रमणी को कुछ कहा है और वह तुम्हें बाँधकर घसीटे लिये जा रही है।'

'कितना बेहूदा स्वप्न है; और तुम्हें इसपर विश्वास भी आ गया ? मैं तुमसे कितनी बार कह चुका कि स्वप्न केवल चिन्तित मन की क्रीड़ा है।'

'तुम मुझसे छिपा रहे हो। कोई-न-कोई बात हुई है जरूर। तुम्हारा चेहरा बोल रहा है। अच्छा, तुम इस वक्त यहाँ क्यों खड़े हो ? यह तो तुम्हारे पढ़ने का समय है।'

'यों ही, जरा घूमने चला आया था।'

'झूठ बोलते हो। खा जाओ मेरे सिर की कसम।'

'अब तुम्हें एतबार ही न आये तो क्या करूँ ?'

'कसम क्यों नहीं खाते ?'

'कसम को मैं झूठ का अनुमोदन समझता हूँ ।'

गुलशन ने फिर उनके मुख पर तीव्र दृष्टि डाली । फिर एक क्षण के बाद बोली—अच्छी बात है । चलो, घर चलें ।

कावसजी ने मुसकराकर कहा—तुम फिर मुझसे लड़ाई करोगी ।

'सरकार से लड़कर भी तुम सरकार की अमलदारी में रहते हो कि नहीं ? मैं भी तुमसे लड़ूँगी; मगर तुम्हारे साथ रहूँगी ।'

'हम इसे कब मानते हैं कि यह सरकार की अमलदारी है ।'

'यह तो मुँह से कहते हो । तुम्हारा रोआँ रोआँ इसे स्वीकार करता है । नहीं तो तुम इस वक्त जेल में होते ।'

'अच्छा, चलो, मैं थोड़ी देर में आता हूँ ।'

'मैं अकेली नहीं जाने की । आखिर सुनूँ, तुम यहाँ क्या कर रहे हो ?'

कावसजी ने बहुत कोशिश की कि गुलशन वहाँ से किसी तरह चली जाय; लेकिन वह जितना ही इस पर जोर देते थे, उतना ही गुलशन का आग्रह भी बढ़ता जाता था । आखिर मजबूर होकर कावसजी को शीरीं और शापूर के झगड़े का वृत्तान्त कहना ही पड़ा; यद्यपि इस नाटक में उनका अपना जो भाग था, उसे उन्होंने बड़ी होशियारी से छिपा देने की चेष्टा की ।

गुलशन ने विचार करके कहा—तो तुम्हें भी यह सनक सवार हुई !

कावसजी ने तुरन्त प्रतिवाद किया—कैसी सनक ! मैंने क्या किया ? अब यह तो इंसानियत नहीं है कि एक मित्र की स्त्री मेरी सहायता माँगे और मैं बगलें झाँकने लगूँ !

'झूठ बोलने के लिए बड़ी अक्ल की जरूरत होती है प्यारे, और वह तुममें नहीं है; समझे ? चुपके से जाकर शीरींबानू को सलाम करो और कहो कि आराम से अपने घर में बैठें । सुख कभी सम्पूर्ण नहीं मिलता । विधि इतना घोर पक्षपात नहीं कर सकता । गुलाब में काँटे होते ही हैं । अगर सुख भोगना है तो उसे उसके दोषों के साथ भोगना पड़ेगा । अभी विज्ञान ने कोई ऐसा उपाय नहीं निकाला कि हम सुख के काँटों को अलग कर सकें । मुफ्त का माल उड़ानेवालों को ऐयाशी के सिवा और सूझेगी क्या ? धन अगर सारी दुनिया का विलास न मोल लेना चाहे तो वह धन ही कैसा । शीरीं के लिए भी क्या वे द्वार नहीं खुले हैं, जो शापूरजी के लिए खुले हैं ? उससे कहो—शापूर के घर में रहे, उनके धन को भोगे और भूल जाय कि वह शापूर की स्त्री है, उसी तरह जैसे शापूर भूल गया है कि वह शीरीं का पति है । जलना और कुढ़ना छोड़कर विलास का आनन्द लूटे । उसका धन एक-से-एक रूपवान्, विद्वान् नवयुवकों को खींच लायेगा । तुमने ही एक बार मुझसे कहा था कि एक जमाने में फ्रान्स में धनवान् विलासिनी महिलाओं का समाज पर आधिपत्य था । उनके पति सब कुछ देखते थे और मुँह खोलने का साहस न करते थे । और मुँह क्या खोलते ? वे खुद इसी धुन में मस्त थे । यही धन का प्रसाद है । तुमसे न बने, तो चलो, मैं शीरीं को समझा दूँ । ऐयाश मर्द की स्त्री अगर ऐयाश न हो तो यह उसकी कायरता है—लतखोरपन है !'

कावसजी ने चकित होकर कहा—लेकिन तुम भी तो धन की उपासक हो ?

गुलशन ने शर्मिन्दा होकर कहा—यही तो जीवन का शाप है । हम उसी चीज पर लपकते हैं, जिसमें हमारा अमंगल है, सत्यानाश है । मैं बहुत दिन पापा के इलाके में रही हूँ । चारों तरफ किसान और मजदूर रहते थे । बेचारे दिन-भर पसीना बहाते थे, शाम को घर जाते थे । ऐयाशी और बदमाशी का कहीं नाम न था । और यहाँ शहर में देखती हूँ कि सभी बड़े घरों में यही रोना है । सब-के-सब हथकंडों से पैसे कमाते हैं और अस्वाभाविक जीवन बिताते हैं । आज तुम्हें कहीं से धन मिल जाय, तो तुम भी शापूर बन जाओगे, निश्चय ।

'तब शायद तुम भी अपने बताये हुए मार्ग पर चलोगी, क्यों ?'

'शायद नहीं, अवश्य ।'

———

डामुल का कैदी

दस बजे रात का समय, एक विशाल भवन में एक सजा हुआ कमरा, बिजली की अँगीठी, बिजली का प्रकाश। बड़ा दिन आ गया है।

सेठ खूबचन्दजी अफसरों को डालियाँ भेजने का सामान कर रहे हैं। फलों, मिठाइयों, मेवों, खिलौनों की छोटी-छोटी पहाड़ियाँ सामने खड़ी हैं। मुनीमजी अफसरों के नाम बोलते जाते हैं और सेठजी अपने हाथों यथा सम्मान डालियाँ लगाते जाते हैं।

खूबचन्दजी एक मिल के मालिक हैं, बम्बई के बड़े ठीकेदार। एक बार नगर के मेयर भी रह चुके हैं। इस वक्त भी कई व्यापारी-सभाओं के मन्त्री और व्यापार-मंडल के सभापति हैं। इस धन, यश, मान की प्राप्ति में डालियों का कितना भाग है, यह कौन कह सकता है; पर इस अवसर पर सेठजी के दस-पाँच हजार बिगड़ जाते थे। अगर कुछ लोग उन्हें खुशामदी, टोड़ी, जी हजूर कहते हैं, तो कहा करें। इससे सेठजी का क्या बिगड़ता है? सेठजी उन लोगों में नहीं हैं, जो नेकी करके दरिया में डाल दें।

पुजारीजी ने आकर कहा—सरकार, बड़ा विलम्ब हो गया। ठाकुरजी का भोग तैयार है।

अन्य धनिकों की भाँति सेठजी ने भी एक मन्दिर बनवाया था। ठाकुरजी की पूजा करने के लिए एक पुजारी नौकर रख लिया था।

पुजारी को रोष-भरी आँखों से देखकर कहा—देखते नहीं हो, क्या कर रहा हूँ? यह भी एक काम है, खेल नहीं। तुम्हारे ठाकुरजी ही सब कुछ न दे देंगे। पेट भरने पर ही पूजा सूझती है। घंटे-आध घंटे की देर हो जाने से ठाकुरजी भूखों न मर जायँगे।

पुजारीजी अपना-सा मुँह लेकर चले गये और सेठजी फिर डालियाँ सजाने में मसरूफ हो गये।

सेठजी के जीवन का मुख्य काम धन कमाना था, और उसके साधनों की रक्षा करना उनका मुख्य कर्त्तव्य। उनके सारे व्यवहार इसी सिद्धान्त के अधीन थे। मित्रों से इसलिए मिलते थे कि उनसे धनोपार्जन में मदद मिलेगी। मनोरंजन भी करते थे, तो व्यापार की दृष्टि से; दान बहुत देते थे, पर उसमें

भी यही लक्ष्य सामने रहता था। सन्ध्या और वन्दना उनके लिए पुरानी लकीर थीं, जिसे पीटते रहने में स्वार्थ सिद्ध होता था, मानो कोई बेगार हो। सब कामों से छुट्टी मिली, तो जाकर ठाकुरद्वारे में खड़े हो गये, चरणामृत लिया और चले आये।

एक घंटे के बाद पुजारीजी फिर सिर पर सवार हो गये। खूबचन्द उनका मुँह देखते ही झुँझला उठे। जिस पूजा में तत्काल फायदा होता था, उसमें कोई बार-बार विघ्न डाले तो क्यों न बुरा लगे? बोले—कह दिया, अभी मुझे फुरसत नहीं है। खोपड़ी पर सवार हो गये! मैं पूजा का गुलाम नहीं हूँ। जब घर में पैसे होते हैं, तभी ठाकुरजी की भी पूजा होती है। घर में पैसे न होंगे, तो ठाकुरजी भी पूछने न आयेंगे।

पुजारी हताश होकर चला गया और सेठजी फिर अपने काम में लगे।

सहसा उनके मित्र केशवरामजी पधारे। सेठजी उठकर उनके गले से लिपट गये और बोले—किधर से? मैं तो अभी तुम्हें बुलानेवाला था।

केशवराम ने मुसकराकर कहा—इतनी रात गये तक डालियाँ ही लग रही हैं? अब तो समेटो। कल का सारा दिन पड़ा है, लगा लेना। तुम कैसे इतना काम करते हो, मुझे तो यही आश्चर्य होता है। आज क्या प्रोग्राम था, याद है?

सेठजी ने गर्दन उठाकर स्मरण करने की चेष्टा करके कहा—क्या कोई विशेष प्रोग्राम था? मुझे तो याद नहीं आता (एकाएक स्मृति जाग उठती है) अच्छा, वह बात! हाँ, याद आ गया। अभी देर तो नहीं हुई। इस झमेले में ऐसा भूला कि जरा भी याद न रही।

'तो चलो फिर। मैंने तो समझा था, तुम वहाँ पहुँच गये होगे।'

'मेरे न जाने से लैला नाराज तो नहीं हुई?'

'यह तो वहाँ चलने पर मालूम होगा।'

'तुम मेरी ओर से क्षमा माँग लेना।'

'मुझे क्या गरज पड़ी है, जो आपकी ओर से क्षमा माँगूँ! वह तो त्योरियाँ चढ़ाये बैठी थी। कहने लगी—उन्हें मेरी परवाह नहीं तो मुझे भी

उनकी परवाह नहीं। मुझे आने ही न देती थी। मैंने शांत तो कर दिया है; लेकिन कुछ बहाना करना पड़ेगा।'

खूबचन्द ने आँखें मारकर कहा—मैं कह दूँगा, गवर्नर साहब ने जरूरी काम से बुला भेजा था।

'जी नहीं, यह बहाना वहाँ न चलेगा। कहेंगी—तुम मुझसे पूछकर क्यों नहीं गये। वह अपने सामने गवर्नर को समझती ही क्या है। रूप और यौवन बड़ी चीज है भाई साहब! आप नहीं जानते।'

'तो फिर तुम्हीं बताओ, कौन-सा बहाना करूँ?'

'अजी, बीस बहाने हैं। कहना, दोपहर से १०६ डिग्री का ज्वर था। अभी-अभी उठा हूँ।'

दोनों मित्र हँसे और लैला का मुजरा सुनने चले।

(२)

सेठ खूबचन्द का स्वदेशी मिल देश के बहुत बड़े मिलों में है। जब से स्वदेशी-आन्दोलन चला है, मिल के माल की खपत दूनी हो गयी है। सेठजी ने कपड़े की दर में दो आने रुपया बढ़ा दिये हैं। फिर भी बिक्री में कोई कमी नहीं है; लेकिन इधर अनाज कुछ सस्ता हो गया है, इसलिए सेठजी ने मजूरी घटाने की सूचना दे दी है। कई दिन से मजूरों के प्रतिनिधियों और सेठजी में बहस होती रही। सेठजी जौ-भर भी न दबना चाहते थे। जब उन्हें आधी मजूरी पर नये आदमी मिल सकते हैं, तब वह क्यों पुराने आदमियों को रखें। वास्तव में यह चाल पुराने आदमियों को भगाने ही के लिए चली गयी थी।

अंत में मजूरों ने यही निश्चय किया कि हड़ताल कर दी जाय।

प्रातःकाल का समय है। मिल के हाते में मजूरों की भीड़ लगी हुई है। कुछ लोग चारदीवारी पर बैठे हैं, कुछ जमीन पर; कुछ इधर-उधर मटरगश्त कर रहे हैं। मिल के द्वार पर कांस्टेबलों का पहरा है। मिल में पूरी हड़ताल है।

एक युवक को बाहर से आते देखकर सैकड़ों मजूर इधर-उधर से दौड़कर उसके चारों ओर जमा हो गये। हरेक पूछ रहा था—सेठजी ने क्या कहा?

यह लम्बा, दुबला साँवला युवक मजूरों का प्रतिनिधि था। उसकी आकृति में कुछ ऐसी दृढ़ता, कुछ ऐसी निष्ठा, कुछ ऐसी गंभीरता थी कि सभी मजूरों ने उसे नेता मान लिया था।

युवक के स्वर में निराशा थी, क्रोध था, आहत सम्मान का रुदन था।

'कुछ नहीं हुआ। सेठजी कुछ नहीं सुनते।'

चारों ओर से आवाजें आयीं—तो हम भी उनकी खुशामद नहीं करते।

युवक ने फिर कहा—वह मजूरी घटाने पर तुले हुए हैं, चाहे कोई काम करे या न करे। इस मिल से इस साल दस लाख का फायदा हुआ है। यह हम लोगों ही की मेहनत का फल है; लेकिन फिर भी हमारी मजूरी काटी जा रही है। धनवानों का पेट कभी नहीं भरता। हम निर्बल हैं, निस्सहाय हैं, हमारी कौन सुनेगा? व्यापार-मण्डल उनकी ओर है, सरकार उनकी ओर है, मिल के हिस्सेदार उनकी ओर हैं, हमारा कौन है? हमारा उद्धार तो भगवान् ही करेंगे।

एक मजूर बोला—सेठजी भी तो भगवान् के बड़े भगत हैं।

युवक ने मुसकराकर कहा—हाँ, बहुत बड़े भक्त हैं। यहाँ किसी ठाकुरद्वारे में उनके ठाकुरद्वारे की-सी सजावट नहीं है, कहीं इतना विधिपूर्वक भोग नहीं लगता, कहीं इतने उत्सव नहीं होते, कहीं ऐसी झाँकी नहीं बनती। उसी भक्ति का प्रताप है कि आज नगर में इनका इतना सम्मान है। औरों का माल पड़ा सड़ता है, इनका माल गोदाम में नहीं जाने पाता। वही भक्तराज हमारी मजूरी घटा रहे हैं। मिल में अगर घाटा हो तो हम आधी मजूरी पर काम करेंगे, लेकिन जब लाखों का लाभ हो रहा है तो किस नीति से हमारी मजूरी घटायी जा रही है? हम अन्याय नहीं सह सकते। प्रण कर लो कि किसी बाहरी आदमी को मिल में घुसने न देंगे; चाहे वह अपने साथ फौज लेकर ही क्यों न आवे। कुछ परवाह नहीं, हमारे ऊपर लाठियाँ बरसें, गोलियाँ चलें⋯

एक तरफ से आवाज आयी—सेठजी!

सभी पीछे फिर-फिरकर सेठजी की तरफ देखने लगे। सभी के चेहरों पर हवाइयाँ उड़ने लगीं। कितने ही तो डरकर कांस्टेबलों से मिल के अन्दर जाने के लिए चिरौरी करने लगे, कुछ लोग रुई की गाँठों की आड़ में जा छिपे। थोड़े-से आदमी कुछ सहमे हुए—पर जैसे जान हथेली पर लिए—युवक के साथ खड़े रहे।

सेठजी ने मोटर से उतरते हुए कांस्टेबलों को बुलाकर कहा—इन आदमियों को मारकर बाहर निकाल दो, इसी दम।

मजूरों पर डण्डे पड़ने लगे। दस-पाँच तो गिर पड़े। बाकी अपनी-अपनी जान लेकर भागे। वह युवक दो आदमियों के साथ अभी तक डटा खड़ा था।

प्रभुता असहिष्णु होती है। सेठजी खुद आ जायँ, फिर भी ये लोग सामने खड़े रहें, यह तो खुला हुआ विद्रोह है। यह बेअदबी कौन सह सकता है। जरा इस लौंडे को देखो। देह पर साबित कपड़े भी नहीं हैं; मगर जमा खड़ा है, मानो मैं कुछ हूँ ही नहीं। समझता होगा, यह मेरा कर ही क्या सकते हैं।

सेठजी ने रिवाल्वर निकाल लिया और इस समूह के निकट आकर उसे निकल जाने का हुक्म दिया; पर वह समूह अचल खड़ा था। सेठजी उन्मत्त हो गये। यह हेकड़ी! तुरन्त हेड कांस्टेबल को बुलाकर हुक्म दिया—इन आदमियों को गिरफ़ार कर लो।

कांस्टेबलों ने इन तीनों आदमियों को रस्सियों से जकड़ दिया और उन्हें फाटक की ओर ले चले। इनका गिरफ़ार होना था कि एक हजार आदमियों का दल रेला मारकर मिल से निकल आया और कैदियों की तरफ लपका। कांस्टेबलों ने देखा, बंदूक चलाने पर भी जान न बचेगी, तो मुलजिमों को छोड़ दिया और भाग खड़े हुए। सेठजी को ऐसा क्रोध आ रहा था कि इन सारे आदमियों को तोप पर उड़वा दें। क्रोध में आत्म-रक्षा की भी उन्हें परवाह न थी। कैदियों को सिपाहियों से छुड़ाकर वह जन-समूह सेठजी की ओर आ रहा था। सेठजी ने समझा—सब-के-सब मेरी जान लेने आ रहे हैं। अच्छा! वह लौंडा गोपी सभों के आगे है! यही यहाँ भी इनका नेता बना हुआ है। मेरे सामने कैसा भीगी बिल्ली बना हुआ था; पर यहाँ सबके आगे आगे आ रहा है।

सेठजी अब भी समझौता कर सकते थे; पर यों दबकर विद्रोहियों से दान माँगना उन्हें असह्य था।

इतने में क्या देखते हैं कि वह बढ़ता हुआ समूह बीच ही में रुक गया। युवक ने उन आदमियों से कुछ सलाह की और तब अकेला सेठजी की तरफ

चला। सेठजी ने मन में कहा—शायद मुझसे प्राण-दान की शर्तें तय करने आ रहा है। सभों ने आपस में यही सलाह की है। जरा देखो, कितने निश्शंक भाव से चला आता है, जैसे कोई विजयी सेनापति हो। ये कांस्टेबल कैसे दुम दबाकर भाग खड़े हुए; लेकिन तुम्हें तो नहीं छोड़ता बचा, जो कुछ हो, देखा जायगा। जब तक मेरे पास यह रिवाल्वर है, तुम मेरा क्या कर सकते हो। तुम्हारे सामने तो घुटना न टेकूँगा?

युवक समीप आ गया और कुछ बोला ही चाहता था कि सेठजी ने रिवाल्वर निकालकर फायर कर दिया। युवक भूमि पर गिर पड़ा और हाथ-पाँव फेकने लगा।

उसके गिरते ही मजूरों में उत्तेजना फैल गयी। अभी तक उनमें हिंसा-भाव न था। वे केवल सेठजी को यह दिखा देना चाहते थे कि तुम हमारी मजूरी काट कर शान्त नहीं बैठ सकते; किन्तु हिंसा ने हिंसा को उद्दीप्त कर दिया। सेठजी ने देखा, प्राण संकट में है और समतल भूमि पर वह रिवाल्वर से भी देर तक प्राण-रक्षा नहीं कर सकते; पर भागने का कहीं स्थान न था! जब कुछ न सूझा, तो वह रूई के गाँठ पर चढ़ गये और रिवाल्वर दिखा-दिखा कर नीचे वालों को ऊपर चढ़ने से रोकने लगे। नीचे पाँच-छः सौ आदमियों का घेरा था। ऊपर सेठजी अकेले रिवाल्वर लिए खड़े थे। कहीं से कोई मदद नहीं आ रही है और प्रतिक्षण प्राणों की आशा क्षीण होती जा रही है। कांस्टेबलों ने भी अफसरों को यहाँ की परिस्थिति नहीं बतलायी; नहीं तो क्या अब तक कोई न आता? केवल पाँच गोलियों से कब तक जान बचेगी? एक क्षण में ये सब समाप्त हो जायँगी। भूल हुई, मुझे बन्दूक और कारतूस लेकर आना चाहिए था। फिर देखता इनकी बहादुरी। एक-एक को भूनकर रख देता; मगर क्या जानता था कि यहाँ इतनी भयंकर परिस्थिति आ खड़ी होगी।

नीचे के एक आदमी ने कहा—लगा दो गाँठों में आग। निकालो तो एक माचिस। रूई से धन कमाया है, रूई की चिता पर जले।

तुरन्त एक आदमी ने जेब से दियासलाई निकाली और आग लगाना ही चाहता था कि सहसा वही जख्मी युवक पीछे से आकर सामने हो गया।

उसके पाँव में पट्टी बँधी हुई थी, फिर भी रक्त बह रहा था। उसका मुख पीला पड़ गया था और उसके तनाव से मालूम होता था कि युवक को असह्य वेदना हो रही है। उसे देखते ही लोगों ने चारों तरफ से आकर घेर लिया। उस हिंसा के उन्माद में भी अपने नेता को जीता-जागता देखकर उनके हर्ष की सीमा न रही। जयघोष से आकाश गूँज उठा—'गोपीनाथ की जय।'

जख्मी गोपीनाथ ने हाथ उठाकर समूह को शान्त हो जाने का संकेत करके कहा—भाइयो, मैं तुमसे एक शब्द कहने आया हूँ। कह नहीं सकता, बचूँगा या नहीं। सम्भव है, तुमसे यह मेरा अन्तिम निवेदन हो। तुम क्या करने जा रहे हो? दरिद्र में नारायण का निवास है, क्या इसे मिथ्या करना चाहते हो? धनी को अपने धन का मद हो सकता है। तुम्हें किस बात का अभिमान है? तुम्हारे झोपड़ों में क्रोध और अहंकार के लिए कहाँ स्थान है? मैं तुमसे हाथ जोड़कर कहता हूँ, सब लोग यहाँ से हट जाओ। अगर तुम्हें मुझसे कुछ स्नेह है, अगर मैंने तुम्हारी कुछ सेवा की है, तो अपने घर जाओ और सेठजी को घर जाने दो।

चारों तरफ से आपत्तिजनक आवाजें आने लगीं, लेकिन गोपीनाथ का विरोध करने का साहस किसी में न हुआ। धीरे-धीरे लोग यहाँ से हट गये। मैदान साफ हो गया, तो गोपीनाथ ने विनम्र भाव से सेठजी से कहा—सरकार, अब आप चले जायँ। मैं जानता हूँ, आपने मुझे धोखे से मारा। मैं केवल यही कहने आपके पास जा रहा था, जो अब कह रहा हूँ। मेरा दुर्भाग्य था कि आपको भ्रम हुआ। ईश्वर की यही इच्छा थी।

सेठजी को गोपीनाथ पर कुछ श्रद्धा होने लगी है। नीचे उतरने में कुछ शंका अवश्य है; पर ऊपर भी तो प्राण बचने की कोई आशा नहीं है। वह इधर-उधर सशंक नेत्रों से ताकते हुए उतरते हैं। जन-समूह कुल दस गज के अन्तर पर खड़ा है। प्रत्येक मनुष्य की आँखों में विद्रोह और हिंसा भरी हुई है। कुछ लोग दबी जबान से—पर सेठजी को सुनाकर—अशिष्ट आलोचनाएँ कर रहे हैं, पर किसी में इतना साहस नहीं है कि उनके सामने आ सके। उस मरते हुए युवक के आदेश में इतनी शक्ति है।

सेठजी मोटर पर बैठकर चले ही थे कि गोपी जमीन पर गिर पड़ा।

(३)

सेठजी की मोटर जितनी तेजी से जा रही थी, उतनी ही तेजी से उनकी आँखों के सामने आहत गोपी का छायाचित्र भी दौड़ रहा था। भाँति-भाँति की कल्पनाएँ मन में आने लगीं। अपराधी भावनाएँ चित्त को आन्दोलित करने लगीं। अगर गोपी उनका शत्रु था, तो उसने क्यों उनकी जान बचायी—ऐसी दशा में, जब वह स्वयं मृत्यु के पंजे में था? इसका उनके पास कोई जवाब न था। निरपराध गोपी, जैसे हाथ बाँधे उनके सामने खड़ा कह रहा था—आपने मुझ बेगुनाह को क्यों मारा?

भोग-लिप्सा आदमी को स्वार्थान्ध बना देती है। फिर भी सेठजी की आत्मा अभी इतनी अभ्यस्त और कठोर न हुई थी कि एक निरपराध की हत्या करके उन्हें ग्लानि न होती। वह सौ-सौ युक्तियों से मन को समझाते थे; लेकिन न्याय बुद्धि किसी युक्ति को स्वीकार न करती थी। जैसे यह धारणा उनके न्याय-द्वार पर बैठी सत्याग्रह कर रही थी और वरदान लेकर ही टलेगी। वह घर पहुँचे तो इतने दुखी और हताश थे, मानो हाथों में हथकड़ियाँ पड़ी हों!

प्रमीला ने घबरायी हुई आवाज में पूछा—हड़ताल का क्या हुआ? अभी हो रही है या बन्द हो गयी? मजूरों ने दंगा-फसाद तो नहीं किया? मैं तो बहुत डर रही थी।

खूबचन्द ने आरामकुर्सी पर लेटकर एक लम्बी साँस ली और बोले—कुछ न पूछो, किसी तरह जान बच गयी, बस यही समझ लो। पुलिस के आदमी तो भाग खड़े हुए, मुझे लोगों ने घेर लिया। बारे किसी तरह जान लेकर भागा। जब मैं चारों तरफ से घिर गया, तो क्या करता, मैंने भी रिवाल्वर छोड़ दिया।

प्रमीला भयभीत होकर बोली—कोई जख्मी तो नहीं हुआ?

'वही गोपीनाथ जख्मी हुआ, जो मजूरों की तरफ से मेरे पास आया करता था। उसका गिरना था कि एक हजार आदमियों ने मुझे घेर लिया। मैं दौड़कर रूई की गाँठों पर चढ़ गया। जान बचने की कोई आशा न थी। मजूर गाठों में आग लगाने जा रहे थे।'

प्रमीला काँप उठी।

'सहसा वही जख्मी आदमी उठकर मजूरों के सामने आया और उन्हें

समझाकर मेरी प्राण-रक्षा की। वह न आ जाता, तो मैं किसी तरह जीता न बचता।'

'ईश्वर ने बड़ी कुशल की ! इसलिए मैं मना कर रही थी कि अकेले न जाओ। उस आदमी को लोग अस्पताल ले गये होंगे ?'

सेठजी ने शोक-भरे स्वर में कहा—मुझे भय है कि वह मर गया होगा। जब मैं मोटर पर बैठा, तो मैंने देखा, वह गिर पड़ा और बहुत-से आदमी उसे घेरकर खड़े हो गये। न-जाने उसकी क्या दशा हुई।

प्रमीला उन देवियों में थी जिनकी नसों में रक्त की जगह श्रद्धा बहती है। स्नान-पूजा, तप और व्रत यही उसके जीवन के आधार थे। सुख में, दुःख में, बीमारी में आराम में, उपासना ही उसका कवच थी। इस समय भी उस पर संकट आ पड़ा। ईश्वर के सिवा कौन उसका उद्धार करेगा ! वह वहीं खड़ी द्वार की ओर ताक रही थी और उसका धर्म-निष्ठ मन ईश्वर के चरणों में गिरकर क्षमा की भिक्षा माँग रहा था।

सेठजी बोले—यह मजूर उस जन्म का कोई महान् पुरुष था। नहीं तो जिस आदमी ने उसे मारा, उसी की प्राण-रक्षा के लिए क्यों इतनी तपस्या करता!

प्रमीला श्रद्धा-भाव से बोली—भगवान् की प्रेरणा, और क्या ! भगवान् की दया होती है, तभी हमारे मन में सद्विचार भी आते हैं।

सेठजी ने जिज्ञासा की—तो फिर बुरे विचार भी ईश्वर की प्रेरणा ही से आते होंगे ?

प्रमीला तत्परता के साथ बोली—ईश्वर आनन्द-स्वरूप हैं। दीपक से कभी अन्धकार नहीं निकल सकता।

सेठजी कोई जवाब सोच ही रहे थे कि बाहर शोर सुनकर चौंक पड़े। दोनों ने सड़क की तरफ की खिड़की खोलकर देखा, तो हजारों आदमी काली झण्डियाँ लिये दाहिनी तरफ से आते दिखाई दिये। झण्डियों के बाद एक अर्थी थी, जिस पर फूलों की वर्षा हो रही थी। अर्थी के पीछे जहाँ तक निगाह जाती थी, सिर-ही-सिर दिखाई देते थे। यह गोपीनाथ के जनाजे का जुलूस था। सेठजी तो मोटर पर बैठकर मिल से घर की ओर चले, उधर मजूरों ने दूसरी मिलों में इस हत्याकाण्ड की सूचना भेज दी। दम-के-दम में सारे शहर में यह खबर बिजली की तरह दौड़ गयी और कई मिलों में हड़ताल हो गयी। नगर में सनसनी फैल गयी। किसी भीषण उपद्रव के भय से लोगों ने दूकानें बन्द कर दीं। यह जुलूस नगर के मुख्य स्थानों का चक्कर लगाता हुआ सेठ खूबचन्द के द्वार पर आया है और गोपीनाथ के खून का बदला लेने पर तुला हुआ है। उधर पुलिस-अधिकारियों ने सेठजी की रक्षा करने का निश्चय कर लिया है, चाहे खून की नदी ही क्यों न बह जाय। जुलूस के पीछे सशस्त्र पुलिस के दो सौ जवान डबल मार्च से उपद्रवकारियों का दमन करने चले आ रहे हैं।

सेठजी अभी अपने कर्तव्य का निश्चय न कर पाये थे कि विद्रोहियों ने कोठी के दफ्तर में घुसकर लेन-देन के बही खातों को जलाना और तिजोरियों को तोड़ना शुरू कर दिया। मुनीम और अन्य कर्मचारी तथा चौकीदार सब-के-सब अपनी-अपनी जान लेकर भागे। उसी वक्त बायीं ओर से पुलिस की दौड़ आ धमकी और पुलिस-कमिश्नर ने विद्रोहियों को पाँच मिनट के अन्दर यहाँ से भाग जाने का हुक्म दे दिया।

समूह ने एक स्वर से पुकारा—गोपीनाथ की जय !

एक घण्टा पहले अगर ऐसी परिस्थिति उत्पन्न हुई होती, तो सेठजी ने बड़ी निश्चिन्तता से उपद्रवकारियों को पुलिस की गोलियों का निशाना बनने दिया होता; लेकिन गोपीनाथ के उस देवोपम सौजन्य और आत्म-समर्पण ने जैसे उनके मनःस्थित विकारों का शमन कर दिया था और अब साधारण औषधि भी उन पर रामबाण का-सा चमत्कार दिखाती थी।

उन्होंने प्रमीला से कहा—मैं जाकर सबके सामने अपना अपराध स्वीकार किये लेता हूँ ! नहीं तो मेरे पीछे न-जाने कितने घर मिट जायँगे।

प्रमीला ने काँपते हुए स्वर में कहा—यहीं खिड़की से आदमियों को क्यों नहीं समझा देते ? वे जितनी मजूरी बढ़ाने को कहते हों, बढ़ा दो।

'इस समय तो उन्हें मेरे रक्त की प्यास है मजूरी बढ़ाने का उनपर कोई असर न होगा।'

सजल नेत्रों से देखकर प्रमीला बोली—तब तो तुम्हारे ऊपर हत्या का अभियोग चल जायगा।

सेठजी ने धीरता से कहा—भगवान् की यही इच्छा है, तो हम क्या कर सकते हैं ? एक आदमी का जीवन इतना मूल्यवान् नहीं है, कि उसके लिए असंख्य जानें ली जायँ।

प्रमीला को मालूम हुआ, साक्षात् भगवान् सामने खड़े हैं। वह पति के गले से लिपट कर बोली—मुझे क्या कहे जाते हो?

सेठजी ने उसे गले लगाते हुए कहा—भगवान् तुम्हारी रक्षा करेंगे। उनके मुख से और कोई शब्द न निकला। प्रमीला की हिचकियाँ बँधी हुई थीं। उसे रोता छोड़कर सेठजी नीचे उतरे।

वह सारी सम्पत्ति, जिसके लिए उन्होंने जो कुछ करना चाहिए, वह भी किया, जो कुछ न करना चाहिए वह भी किया, जिसके लिए खुशामद की, छल किया, अन्याय किये, जिसे वह अपने जीवन-तप का वरदान समझते थे, आज कदाचित् सदा के लिए उनके हाथ से निकली जाती थी; पर उन्हें जरा भी मोह न था, जरा भी खेद न था। वह जानते थे, उन्हें डामुल की सजा होगी, यह सारा कारोबार चौपट हो जायगा, यह सम्पत्ति धूल में मिल जायगी, कौन जाने प्रमीला से फिर भेंट होगी या नहीं, कौन मरेगा, कौन जियेगा, कौन जानता है, मानो वह स्वेच्छा से यमदूतों का आवाहन कर रहे हों। और वही वेदनामय विवशता, जो हमें मृत्यु के समय दबा लेती है, उन्हें भी दबाये हुए थी।

प्रमीला उनके साथ-ही-साथ नीचे तक आयी। वह उनके साथ उस समय तक रहना चाहती थी, जब तक जनता उसे पृथक् न कर दे; लेकिन सेठजी उसे छोड़कर जल्दी से बाहर निकल गये और वह खड़ी रोती रह गयी।

(४)

बलि पाते ही विद्रोह का पिशाच शान्त हो गया। सेठजी एक सप्ताह हवालात में रहे। फिर उनपर अभियोग चलने लगा। बम्बई के सबसे नामी बैरिस्टर गोपी की तरफ से पैरवी कर रहे थे। मजूरों ने चन्दे से अपार धन एकत्र किया था और यहाँ तक तुले हुए थे कि अगर अदालत से सेठजी बरी भी हो जायँ, तो उनकी हत्या कर दी जाय। नित्य इजलास में कई हजार कुली जमा रहते। अभियोग सिद्ध ही था। मुलजिम ने अपना अपराध स्वीकार कर लिया था। उसके वकीलों ने उसके अपराध को हलका करने की दलीलें पेश की। फैसला यह हुआ कि चौदह साल का कालापानी हो गया।

सेठजी के जाते ही मानो लक्ष्मी रूठ गयीं, जैसे उस विशालकाय वैभव की आत्मा निकल गयी हो। साल-भर के अन्दर उस वैभव का कंकाल-मात्र रह गया। मिल तो पहले ही बन्द हो चुकी थी। लेना-देना चुकाने पर कुछ न बचा। यहाँ तक कि रहने का घर भी हाथ से निकल गया। प्रमीला के पास लाखों के आभूषण थे। वह चाहती, तो उन्हें सुरक्षित रख सकती थी; पर त्याग की धुन में उन्हें भी निकाल फेंका। सातवें महीने में जब उसके पुत्र का जन्म हुआ, तो वह छोटे-से किराये के घर में थी। पुत्र-रत्न पाकर अपनी सारी विपत्ति भूल गयी। कुछ दुःख था तो यही कि पतिदेव होते, तो इस समय कितने आनंदित होते।

प्रमीला ने किन कष्टों को झेलते हुए पुत्र का पालन किया, इसकी कथा लम्बी है। सब कुछ सहा; पर किसी के सामने हाथ नहीं फैलाया। जिस तत्परता से उसने देने चुकाये थे, उससे लोगों की उसपर भक्ति हो गयी थी। कई सज्जन तो उसे कुछ मासिक सहायता देने पर तैयार थे; लेकिन प्रमीला ने किसी का एहसान न लिया। भले घरों की महिलाओं से उसका परिचय था ही। वह घरों में स्वदेशी वस्तुओं का प्रचार करके गुजर-भर को कमा लेती थी। जब तक बच्चा दूध पीता था, उसे अपने काम में बड़ी कठिनाई पड़ी; लेकिन दूध छुड़ा देने के बाद वह बच्चे को दाई को सौंपकर आप काम करने चली जाती थी। दिन-भर के कठिन परिश्रम के बाद जब वह सन्ध्या-समय घर आ कर बालक को गोद में उठा लेती, तो उसका मन हर्ष से उन्मत्त होकर पति के पास उड़ जाता जो न-जाने किस दशा में काले कोसों पड़ा था। उसे अपनी सम्पति के लुट जाने का लेशमात्र भी दुःख नहीं है। उसे केवल इतनी ही लालसा है कि स्वामी कुशल से लौट आवें और बालक को देखकर अपनी आँखें शीतल करें। फिर तो वह इस दरिद्रता में भी सुखी और संतुष्ट रहेगी। वह नित्य ईश्वर के चरणों में सिर झुकाकर स्वामी के लिए प्रार्थना करती है। उसे विश्वास है, ईश्वर जो कुछ करेंगे, उससे उसका कल्याण ही होगा। ईश्वर-वन्दना में वह अलौकिक धैर्य, साहस और जीवन का आभास पाती है। प्रार्थना ही अब उसकी आशाओं का आधार है।

(५)

पन्द्रह साल की विपत्ति के दिन आशा की छाँह में कट गये।

सन्ध्या का समय है। किशोर कृष्णचन्द्र अपनी माता के पास मन-मारे बैठा हुआ है। वह माँ-बाप दोनों में से एक को भी नहीं पड़ा।

प्रमीला ने पूछा—क्यों बेटा, तम्हारी परीक्षा तो समाप्त हो गयी ?

बालक ने गिरे हुए मन से जवाब दिया—हाँ अम्माँ, हो गयी; लेकिन मेरे परचे अच्छे नहीं हुए। मेरा मन पढ़ने में नहीं लगता है।

यह कहते-कहते उसकी आँखें डबडबा आयीं। प्रमीला ने स्नेह-भरे स्वर में कहा—यह तो अच्छी बात नहीं है बेटा, तुम्हें पढ़ने में मन लगाना चाहिए।

बालक सजल नेत्रों से माता को देखता हुआ बोला—मुझे बार-बार पिताजी की याद आती रहती है। वह तो अब बहुत बूढ़े हो गये होंगे। मैं सोचा करता हूँ कि वह आयेंगे, तो तन-मन से उनकी सेवा करूँगा। इतना बड़ा उत्सर्ग किसने किया होगा अम्माँ ? उसपर लोग उन्हें निर्दय कहते हैं। मैंने गोपीनाथ के बाल-बच्चों का पता लगा लिया अम्माँ ! उनकी घरवाली है, माता है और एक लड़की है, जो मुझसे दो साल बड़ी है। माँ-बेटी दोनों उसी मिल में काम करती हैं। दादी बहुत बूढ़ी हो गयी हैं।

प्रमीला ने विस्मित होकर कहा—तुझे उनका पता कैसे चला बेटा ?

कृष्णचन्द्र प्रसन्नचित होकर बोला—मैं आज उस मिल में चला गया था। मैं उस स्थान को देखना चाहता था, जहाँ मजूरों ने पिताजी को घेरा था और वह स्थान भी, जहाँ गोपीनाथ गोली खा कर गिरा था; पर उन दोनों में एक स्थान भी न रहा। वहाँ इमारतें बन गयी हैं। मिल का काम बड़े जोर से चल रहा है। मुझे देखते ही बहुत से आदमियों ने मुझे घेर लिया। सब यही कहते थे कि तुम तो भैया गोपीनाथ का रूप धर कर आये हो। मजूरों ने वहाँ गोपीनाथ की एक तस्वीर लटका रखी है। उसे देखकर चकित हो गया अम्माँ, जैसे मेरी ही तस्वीर हो, केवल मूँछों का अन्तर है। जब मैंने गोपी की स्त्री के बारे में पूछा, तो एक आदमी दौड़कर उसकी स्त्री को बुला लाया। वह मुझे देखते ही रोने लगी। और न-जाने क्यों मुझे भी रोना आ गया। बेचारी स्त्रियाँ बड़े कष्ट में हैं। मुझे तो उनके ऊपर ऐसी दया आती है कि उनकी कुछ मदद करूँ।

प्रमीला को शंका हुई, लड़का इन झगड़ों में पड़कर पढ़ना न छोड़ बैठे। बोली—अभी तुम उनकी क्या मदद कर सकते हो बेटा ? धन होता तो कहती, दस-पाँच रुपये महीना दे दिया करो, लेकिन घर का हाल तो तुम जानते ही

हो। अभी मन लगाकर पढ़ो। जब तुम्हारे पिता जी आ जायँ, तो जो इच्छा हो वह करना।

कृष्णचन्द्र ने उस समय कोई जवाब न दिया; लेकिन आज से उसका नियम हो गया कि स्कूल से लौटकर एक बार गोपी के परिवार को देखने अवश्य जाता। प्रमीला उसे जेब-खर्च के लिए जो पैसे देती, उसे उन अनाथों ही पर खर्च करता। कभी कुछ फल ले लिए, कभी शाक-भाजी ले ली।

एक दिन कृष्णचन्द्र को घर आने में देर हुई, तो प्रमीला बहुत घबरायी। पता लगाती हुई विधवा के घर पहुँची, तो देखा—एक तंग गली में, एक सीले, सड़े हुए मकान में गोपी की स्त्री एक खाट पर पड़ी है और कृष्णचन्द्र खड़ा उसे पंखा झल रहा है। माता को देखते ही बोला—मैं अभी घर न जाऊँगा अम्माँ, देखो, काकी कितनी बीमार हैं। दादी को कुछ सूझता नहीं, बिन्नी खाना पका रही है। इनके पास कौन बैठे ?

प्रमीला ने खिन्न होकर कहा—अब तो अँधेरा हो गया, तुम यहाँ कब तक बैठे रहोगे ? अकेला घर मुझे भी तो अच्छा नहीं लगता। इस वक्त चलो। सबेरे फिर आ जाना।

रोगिणी ने प्रमीला की आवाज सुनकर आँखें खोल दीं और मन्द स्वर में बोली—आओ माताजी, बैठो। मैं तो भैया से कह रही थी, देर हो रही है, अब घर जाओ; पर यह गये ही नहीं। मुझ अभागिनी पर इन्हें न-जाने क्यों इतनी दया आती है। अपना लड़का भी इससे अधिक मेरी सेवा न कर सकता।

चारों तरफ से दुर्गन्ध आ रही थी। उमस ऐसी थी कि दम घुटा जाता था। उस बिल में हवा किधर से आती ? पर कृष्णचन्द्र ऐसा प्रसन्न था, मानो कोई परदेशी चारों ओर से ठोकरें खाकर अपने घर में आ गया हो।

प्रमीला ने इधर-उधर निगाह दौड़ाई तो एक दीवार पर उसे एक तस्वीर दिखायी दी। उसने समीप जाकर उसे देखा, तो उसकी छाती धक्-से हो गयी। बेटे की ओर देखकर बोली—तूने यह चित्र कब खिंचवाया बेटा ?

कृष्णचन्द्र मुस्कराकर बोला—यह मेरा चित्र नहीं है अम्माँ, गोपीनाथ का चित्र है।

प्रमीला ने अविश्वास से कहा—चल, झूठा कहीं का।

रोगिणी ने कातर भाव से कहा—नहीं अम्माँजी, यह मेरे आदमी ही का चित्र है। भगवान् की लीला कोई नहीं जानता; पर भैया की सूरत इतनी मिलती है कि मुझे अचरज़ होता है। जब मेरा ब्याह हुआ था, तब उनकी यही उम्र थी, और सूरत भी बिल्कुल यही। यही हँसी थी, यही बातचीत और यही स्वभाव। क्या रहस्य है, मेरी समझ में नहीं आता। माताजी, जबसे यह आने लगे हैं, कह नहीं सकती, मेरा जीवन कितना सुखी हो गया है। इस मुहल्ले में सब हमारे ही जैसे मजूर रहते हैं। उन सभों के साथ यह लड़कों की तरह रहते हैं। सब इन्हें देखकर निहाल हो जाते हैं।

प्रमीला ने कोई जवाब न दिया। उसके मन पर एक अव्यक्त शंका छायी हुई थी, मानो उसने कोई बुरा सपना देखा हो। उसके मन में बार-बार एक प्रश्न उठ रहा था, जिसकी कल्पना ही से उसके रोयें खड़े हो जाते थे।

सहसा उसने कृष्णचन्द्र का हाथ पकड़ लिया और बलपूर्वक खींचती हुई द्वार की ओर चली, मानो कोई उसे उसके हाथों से छीने लिये जाता हो।

रोगिणी ने केवल इतना कहा—माताजी, कभी-कभी भैया को मेरे पास आने दिया करना, नहीं तो मैं मर जाऊँगी।

(६)

पन्द्रह साल के बाद भूतपूर्व सेठ खूबचन्द अपने नगर के स्टेशन पर पहुँचे। हरा-भरा वृक्ष ठूँठ होकर रह गया था। चेहरे पर झुर्रियाँ पड़ी हुई, सिर के बाल सन, दाढ़ी जंगल की तरह बढ़ी हुई, दाँतों का कहीं नाम नहीं, कमर झुकी हुई। ठूँठ को देखकर कौन पहचान सकता है कि यह वही वृक्ष है, जो फल फूल और पत्तियों से लदा रहता था, जिसपर पक्षी कलरव करते रहते थे।

स्टेशन के बाहर निकलकर वह सोचने लगे—कहाँ जायँ? अपना नाम लेते लज्जा आती थी। किससे पूछें, प्रमीला जीती है या मर गयी? अगर है तो कहाँ है? उन्हें देख वह प्रसन्न होगी, या उनकी उपेक्षा करेगी?

प्रमीला का पता लगाने में ज्यादा देर न लगी। खूबचन्द की कोठी अभी तक खूबचन्द की कोठी कहलाती थी। दुनिया कानून के उलट-फेर क्या जाने? अपनी कोठी के सामने पहुँचकर उन्होंने एक तम्बोली से पूछा—क्यों भैया, यही तो सेठ खूबचन्द की कोठी है?

तम्बोली ने उनकी ओर कुतूहल से देखकर कहा—खूबचन्द की जब थी तब थी, अब तो लाला देशराज की है।

'अच्छा! मुझे यहाँ आये बहुत दिन हो गये। सेठजी के यहाँ नौकर था। सुना, सेठजी को कालापानी हो गया था।'

'हाँ, बेचारे भलमनसी में मारे गये। चाहते तो बेदाग बच जाते। सारा घर मिट्टी में मिल गया।'

'सेठानी तो होंगी?'

'हाँ, सेठानी क्यों नहीं हैं। उनका लड़का भी है।'

सेठजी के चेहरे पर जैसे जवानी की झलक आ गयी। जीवन का वह आनन्द और उत्साह, जो आज पन्द्रह साल से कुम्भकरण की भाँति पड़ा सो रहा था, मानो नयी स्फूर्ति पाकर उठ बैठा और अब उस दुर्बल काया में समा नहीं रहा है।

उन्होंने इस तरह तम्बोली का हाथ पकड़ लिया, जैसे घनिष्ठ परिचय हो और बोले—अच्छा, उनके लड़का भी है! कहाँ रहती है भाई, बता दो, तो जाकर सलाम कर आऊँ। बहुत दिनों तक उनका नमक खाया है।

तम्बोली ने प्रमीला के घर का पता बता दिया। प्रमीला इसी महल्ले में रहती थी। सेठजी जैसे आकाश में उड़ते हुए यहाँ से आगे चले।

वह थोड़ी दूर गये थे कि ठाकुरजी का एक मन्दिर दिखायी दिया। सेठजी ने मन्दिर में जाकर प्रतिमा के चरणों पर सिर झुका दिया। उनके रोम-रोम से आस्था का स्रोत-सा बह रहा था। इस पन्द्रह वर्ष के कठिन प्रायश्चित में उनकी सन्तप्त आत्मा को अगर कहीं आश्रय मिला था, तो वह अशरण-शरण भगवान के चरण थे। उन पावन चरणों के ध्यान में ही उन्हे शान्ति मिलती थी। दिन-भर ऊख के कोल्हू में जुते रहने या फावड़े चलाने के बाद जब वह रात को पृथ्वी की गोद में लेटते, तो पूर्व स्मृतियाँ अपना अभिनय करने लगतीं। वह अपना विलासमय जीवन, जैसे रुदन करता हुआ उनकी आँखों के सामने आ जाता और उनके अन्तःकरण से वेदना में डूबी हुई ध्वनि निकलती—ईश्वर! मुझ पर दया करो। इस दया याचना में उन्हें एक ऐसी अलौकिक शान्ति और स्थिरता प्राप्त होती थी, मानो बालक माता की गोद में लेटा हो।

जब उनके पास सम्पत्ति थी, विलास के साधन थे, यौवन था, स्वास्थ्य था, अधिकार था, उन्हें आत्म-चिन्तन का अवकाश न मिलता था। मन प्रवृत्ति ही की ओर दौड़ता था, अब इन स्मृतियों को खोकर इस दीनावस्था में उनका मन ईश्वर की ओर झुका। पानी पर जब तक कोई आवरण है, उसमें सूर्य का प्रकाश कहाँ?

वह मन्दिर से निकलते ही थे कि एक स्त्री ने उसमें प्रवेश किया। खूबचन्द का हृदय उछल पड़ा। वह कुछ कर्तव्य-भ्रम से होकर एक स्तम्भ की आड़ में हो गये। यह प्रमीला थी।

इन पन्द्रह वर्षों में एक दिन भी ऐसा नहीं नया, जब उन्हें प्रमीला की याद न आयी हो। वह छाया उनकी आँखों में बसी हुई थी। आज उन्हें उस छाया और इस सत्य में कितना अन्तर दिखायी दिया। छाया पर समय का क्या असर हो सकता है। उस पर सुख-दुःख का बस नहीं चलता। सत्य तो इतना अभेद्य नहीं। उस छाया में वह सदैव प्रमोद का रूप देखा करते थे—आभूषण, मुसकान और लज्जा से रंजित। इस सत्य में उन्होंने साधक का तेजस्वी रूप देखा, और अनुराग में डूबे हुए स्वर की भाँति उनका हृदय थरथरा उठा। मन में ऐसा उद्गार उठा कि इसके चरणों पर गिर पड़ूँ और कहूँ—देवी! इस पतित का उद्धार करो, किन्तु तुरन्त विचार आया—कहीं यह देवी मेरी उपेक्षा न करे। इस दशा में उसके सामने जाते उन्हें लज्जा आयी।

कुछ दूर चलने के बाद प्रमीला एक गली में मुड़ी। सेठजी भी उसके पीछे-पीछे चले जाते थे। आगे एक कई मंजिल की हवेली थी। सेठजी ने प्रमीला को उस चाल में घुसते देखा; पर यह न देख सके कि वह किधर गयी। द्वार पर खड़े-खड़े सोचने लगे—किससे पूछूँ?

सहसा एक किशोर को भीतर से निकलते देखकर उन्होंने उसे पुकारा। युवक ने उनकी ओर चुभती हुई आँखों से देखा और तुरन्त उनके चरणों पर गिर पड़ा। सेठजी का कलेजा धक्-से हो उठा। यह तो गोपी था, केवल उम्र में उससे कम। वही रूप था, वही डील था, मानो वह कोई नया जन्म लेकर आ गया हो। उनका सारा शरीर एक विचित्र भय से सिहर उठा।

कृष्णचन्द्र ने एक क्षण में उठकर कहा—हम तो आज आपकी प्रतीक्षा कर रहे थे। बन्दर पर जाने के लिए एक गाड़ी लेने जा रहा था। आपको तो यहाँ आने में बड़ा कष्ट हुआ होगा। आइए, अन्दर आइए। मैं आपको देखते ही पहचान गया। कहीं भी देखकर पहचान जाता।

खूबचन्द उसके साथ भीतर चले तो, मगर उनका मन जैसे अतीत के काँटों में उलझ रहा था। गोपी की सूरत क्या वह कभी भूल सकते थे? इस चेहरे को उन्होंने कितनी ही बार स्वप्न में देखा था। वह कांड उनके जीवन की सबसे महत्वपूर्ण घटना थी, और आज एक युग बीत जाने पर भी, वह उनके पथ में उसी भाँति अटल खड़ा था।

एकाएक कृष्णचन्द जीने के पास रुककर बोला—जाकर अम्माँ से कह आऊँ, दादा आ गये! आपके लिए नये-नये कपड़े बने रखे हैं।

खूबचन्द ने पुत्र के मुख का इस तरह चुम्बन किया, जैसे वह शिशु हो और उसे गोद में उठा लिया। वह उसे लिये जीने पर चढ़े चले जाते थे। यह मनोल्लास की शक्ति थी।

(७)

तीस साल से व्याकुल पुत्र-लालसा, यह पदार्थ पाकर, जैसे उसपर न्योछावर हो जाना चाहती है। जीवन नयी-नयी अभिलाषाओं को लेकर उन्हें सम्मोहित कर रहा है। इस रत्न के लिए वह ऐसी ऐसी कितनी ही यातनाएँ सहर्ष झेल सकते थे। अपने जीवन में उन्होंने जो कुछ अनुभव के रूप में कमाया था, उसका तत्व वह अब कृष्णचन्द के मस्तिष्क में भर देना चाहते हैं। उन्हें यह अरमान नहीं है कि कृष्णचन्द्र धन का स्वामी हो, चतुर हो, यशस्वी हो; बल्कि दयावान् हो, सेवाशील हो, नम्र हो, श्रद्धालु हो। ईश्वर की दया में अब उन्हें असीम विश्वास है, नहीं तो उन-जैसा अधम व्यक्ति क्या इस योग्य था कि इस कृपा का पात्र बनता? और प्रमीला तो साक्षात लक्ष्मी है।

कृष्णचन्द्र भी पिता को पाकर निहाल हो गया है। अपनी सेवाओं से मानो उनके अतीत को भुला देना चाहता है। मानो पिता की सेवा ही के लिए उसका जन्म हुआ। मानो वह पूर्वजन्म का कोई ऋण चुकाने के लिए ही संसार में आया है।

आज सेठजी को आये सातवाँ दिन है। सन्ध्या का समय है। सेठजी

सन्ध्या करने जा रहे हैं कि गोपीनाथ की लड़की बिन्नी ने आकर प्रमीला से कहा—माताजी, अम्माँ का जी अच्छा नहीं है। भैया को बुला रही हैं।

प्रमीला ने कहा—आज तो वह न जा सकेगा। उसके पिता आ गये हैं, उनसे बातें कर रहा है।

कृष्णचन्द्र ने दूसरे कमरे में से उसकी बातें सुन लीं। तुरन्तु आकर बोला—नहीं अम्माँ, मैं दादा से पूछकर जरा देर के लिए चला जाऊँगा।

प्रमीला ने बिगड़कर कहा—तू कहीं जाता है तो तुझे घर की सुधि ही नहीं रहती। न जाने उन सभों ने तुझे क्या बूटी सुँघा दी है।

'मैं बहुत जल्द चला आऊँगा अम्माँ, तुम्हारे पैरों पड़ता हूँ।'

'तू भी कैसा लड़का है! वह बेचारे अकेले बैठे हुए हैं और तुझे वहाँ जाने की पड़ी हुई।

सेठजी ने भी ये बातें सुनीं। आकर बोले—क्या हरज है, जल्दी आने को कह रहे हैं तो जाने दो।

कृष्णचन्द्र प्रसन्नचित्त बिन्नी के साथ चला गया। एक क्षण के बाद प्रमीला ने कहा—जबसे मैंने गोपी की तस्वीर देखी है, मुझे नित्य शंका बनी रहती है, कि न-जाने भगवान् क्या करने वाले हैं। बस यही मालूम होता है।

सेठजी ने गम्भीर स्वर में कहा—मैं भी तो पहली बार इसे देखकर चकित रह गया था। जान पड़ा, गोपीनाथ ही खड़ा है।

'गोपी की घरवाली कहती है कि इसका स्वभाव भी गोपी ही का-सा है।'

सेठजी गूढ़ मुसकान के साथ बोले—भगवान् की लीला है कि जिसकी मैंने हत्या की, वह मेरा पुत्र हो। मुझे तो विश्वास है, गोपीनाथ ने ही इसमें अवतार लिया है।

प्रमीला ने माथे पर हाथ रखकर कहा—यही सोचकर तो कभी-कभी मुझे न-जाने कैसी-कैसी शंका होने लगती है।

सेठजी ने श्रद्धा-भरी आँखों से देखकर कहा—भगवान् हमारे परम सुहृद् हैं। वह जो कुछ करते हैं, प्राणियों के कल्याण के लिए करते हैं। हम समझते हैं, हमारे साथ विधि ने अन्याय किया; पर यह हमारी मूर्खता है। विधि अबोध बालक नहीं है, जो अपने ही सिरजे हुए खिलौनों को तोड़-फोड़ कर आनन्दित होता है।

न वह हमारा शत्रु है, जो हमारा अहित करने में सुख मानता है। वह परम दयालु है, मंगल-रूप है। यही अवलम्ब था, जिसने निर्वासन-काल में मुझे सर्वनाश से बचाया। इस आधार के बिना कह नहीं सकता, मेरी नौका कहाँ-कहाँ भटकती और उसका क्या अन्त होता।

(८)

बिन्नी ने कई कदम चलने के बाद कहा, मैंने तुमसे झूठ-मूठ कहा कि अम्माँ बीमार हैं। अम्माँ तो अब बिलकुल अच्छी हैं। तुम कई दिन से गये नहीं; इसीलिए उन्होंने मुझसे कहा—इस बहाने से बुला लाना। तुमसे वह एक सलाह करेंगी।

कृष्णचन्द्र ने कुतूहल-भरी आँखों से देखा।

'मुझसे सलाह करेंगी? मैं भला क्या सलाह दूँगा? मेरे दादा आ गये; इसीलिए नहीं आ सका।'

'तुम्हारे दादा आ गये! उन्होंने पूछा होगा, यह कौन लड़की है?'

'नहीं, कुछ नहीं पूछा।'

'दिल में तो कहते होंगे, कैसी बेशरम लड़की है!'

'दादा ऐसे आदमी नहीं हैं। मालूम हो जाता कि यह कौन है, तो बड़े प्रेम से बाते करते। मैं तो कभी-कभी डरा करता था कि न-जाने उनका मिजाज कैसा हो। सुनता था, कैदी बड़े कठोर-हृदय हुआ करते हैं, लेकिन दादा तो दया के देवता हैं।'

दोनों कुछ दूर फिर चुपचाप चले गये। तब कृष्णचन्द्र ने पूछा—तुम्हारी अम्माँ मुझसे कैसी सलाह करेंगी?

बिन्नी का ध्यान जैसे टूट गया।

'मैं क्या जानूँ, कैसी सलाह करेंगी। मैं जानती कि तुम्हारे दादा आये हैं, तो न जाती। मन में कहते होंगे, इतनी बड़ी लड़की अकेली मारी-मारी फिरती है।'

कृष्णचन्द्र कहकहा मारकर बोला—हाँ, कहते तो होंगे। मैं जाकर और जड़ दूँगा।

बिन्नी बिगड़ गयी।

'तुम क्या जड़ दोगे ? बताओ, मैं कहाँ घूमती हूँ ? तुम्हारे घर के सिवा मैं और कहाँ जाती हूँ ?'

'मेरे जी में जो आयेगा, सो कहूँगा ; नहीं तो मुझे बता दो, कैसी सलाह है ?'

'तो मैंने कब कहा था कि मैं नहीं बताऊँगी। कल हमारे मिल में फिर हड़ताल होनेवाली है। हमारा मनीजर इतना निर्दयी है कि किसी को पाँच मिनिट की भी देर हो जाय, तो आधे दिन की तलब काट लेता है और दस मिनिट देर हो जाय, तो दिन-भर की मजूरी गायब। कई बार सभों ने जाकर उससे कहा सुना ; मगर मानता ही नहीं। तुम हो तो जरा-से; पर अम्माँ को न-जाने तुम्हारे ऊपर क्यों इतना विश्वास है, और मजूर लोग भी तुम्हारे ऊपर बड़ा भरोसा रखते हैं। सबकी सलाह है कि तुम एक बार मनीजर के पास जाकर दो टूक बातें कर लो। हाँ या नहीं ; अगर वह अपनी बात पर अड़ा रहे, तो फिर हम भी हड़ताल करेंगे।'

कृष्णचन्द्र विचारों में मग्न था। कुछ न बोला।

बिन्नी ने फिर उद्दण्ड-भाव से कहा—यह कड़ाई इसीलिए तो है कि मनीजर जानता है, हम बेबस हैं और हमारे लिए और कहीं ठिकाना नहीं है। तो हमें भी दिखा देना है कि हम चाहे भूखों मरेंगे, मगर अन्याय न सहेंगे।

कृष्णचन्द्र ने कहा—उपद्रव हो गया, तो गोलियाँ चलेंगी।

'तो चलने दो। हमारे दादा मर गये, तो क्या हम लोग जिये नहीं ?'

दोनों घर पहुँचे, तो वहाँ द्वार पर बहुत-से-मजदूर जमा थे और इसी विषय पर बातें हो रही थीं।

कृष्णचन्द्र को देखते ही सभों ने चिल्लाकर कहा—लो, भैया आ गये।

(६)

वही मिल है, जहाँ सेठ खूबचन्द ने गोलियाँ चलायी थीं। आज उन्हीं का पुत्र मजदूरों का नेता बना हुआ गोलियों के सामने खड़ा है।

कृष्णचन्द्र और मैनेजर में बातें हो चुकीं। मैनेजर ने नियमों को नर्म करना स्वीकार न किया। हड़ताल की घोषणा कर दी गयी। आज हड़ताल है। मजदूर मिल के हाते में जमा हैं, और मैनेजर ने मिल की रक्षा के लिए फौजी गारद

बुला लिया है। मिल के मजदूर उपद्रव नहीं करना चाहते थे। हड़ताल केवल उनके असन्तोष का प्रदर्शन थी; लेकिन फौजी गारद देखकर मजदूरों को भी जोश आ गया। दोनों तरफ से तैयारी हो गयी है। एक ओर गोलियाँ है, दूसरी ओर ईंट-पत्थर के टुकड़े।

युवक कृष्णचन्द्र ने कहा—आप लोग तैयार हैं ? हमें मिल के अन्दर जाना है, चाहे सब मार डाले जायँ।

बहुत-सी आवाजें आयीं—सब तैयार हैं।

'जिनके बाल-बच्चे हों, वह अपने घर चले जायँ।'

बिन्नी पीछे खड़ी-खड़ी बोली—बाल-बच्चे, सबकी रक्षा भगवान् करता है।

कई मजदूर घर लौटने का विचार कर रहे थे। इस वाक्य ने उन्हें स्थिर कर दिया। जय-जयकार हुई और एक हजार मजदूरों का दल मिल द्वार की ओर चला। फौजी गारद ने गोलियाँ चलायीं। सबसे पहले कृष्णचन्द्र गिरा, फिर और कई आदमी गिर पड़े। लोगों के पाँव उखड़ने लगे।

उसी वक्त सेठ खूबचन्द नंगे सिर, नंगे पाँव हाते में पहुँचे और कृष्णचन्द्र को गिरते देखा। परिस्थिति उन्हें घर ही पर मालूम हो गयी थी। उन्होंने उन्मत्त होकर कहा—कृष्णचन्द्र की जय ! और दौड़कर आहत युवक को कंठ से लगा लिया। मजदूरों में एक अद्भुत साहस और धैर्य का संचार हुआ।

'खूबचन्द।'—इस नाम ने जादू का काम किया। इस १५ साल में 'खूबचन्द' ने शहीद का ऊँचा पद प्राप्त कर लिया था। उन्हीं का पुत्र आज मजदूरों का नेता है। धन्य है भगवान् की लीला ! सेठजी ने पुत्र की लाश जमीन पर लिटा दी और अविचलित भाव से बोले—भाइयो, यह लड़का मेरा पुत्र था। मैं पन्द्रह साल डामुल काट कर लौटा, तो भगवान् की कृपा से मुझे इसके दर्शन हुए। आज आठवाँ दिन है। आज फिर भगवान् ने उसे अपनी शरण में ले लिया। वह भी उन्हीं की कृपा थी। यह भी उन्हीं की कृपा है। मैं जो मूर्ख, अज्ञानी तब था, वही अब भी हूँ। हाँ, इस बात का मुझे गर्व है कि भगवान् ने मुझे ऐसा वीर बालक दिया। अब आप लोग मुझे बधाइयाँ दें। किसे ऐसी वीर-गति मिलती है ? अन्याय के सामने जो छाती खोलकर खड़ा हो जाय, वही तो सच्चा वीर है, इसलिए बोलिए—कृष्णचन्द्र की जय !

एक हजार गलों से जय-ध्वनि निकली और उसी के साथ सब-के-सब हल्ला मारकर दफ्तर के अन्दर घुस गये। गारद के जवानों ने एक बन्दूक भी न चलाई। इस विलक्षण कांड ने इन्हें स्तम्भित कर दिया था।

मैनेजर ने पिस्तौल उठा लिया और खड़ा हो गया। देखा, तो सामने सेठ खूबचन्द!

लज्जित होकर बोला—मुझे बड़ा दुःख है कि आज दैवगति से ऐसी दुर्घटना हो गयी, पर आप खुद समझ सकते हैं, मैं क्या कर सकता था।

सेठजी ने शान्त स्वर में कहा—ईश्वर जो कुछ करता है, हमारे कल्याण के लिए ही करता है। अगर इस बलिदान से मजदूरों का कुछ हित हो, तो मुझे इसका जरा भी खेद न होगा।

मैनेजर सम्मान-भरे स्वर में बोला—लेकिन इस धारणा से तो आदमी को सन्तोष नहीं होता। ज्ञानियों का भी मन चञ्चल हो ही जाता है।

सेठजी ने इस प्रसंग का अन्त कर देने के इरादे से कहा—तो अब आप क्या निश्चय कर रहे हैं?

मैनेजर सकुचाता हुआ बोला—मैं इस विषय में स्वतन्त्र नहीं हूँ। स्वामियों की जो आज्ञा थी, उसका मैं पालन कर रहा था।

सेठजी कठोर स्वर में बोले—अगर आप समझते हैं कि मजदूरों के साथ अन्याय हो रहा है, तो आपका धर्म है कि उनका पक्ष लीजिए। अन्याय में सहयोग करना अन्याय करने ही के समान है।

एक तरफ तो मजदूर लोग कृष्णचन्द्र के दाह संस्कार का आयोजन कर रहे थे, दूसरी तरफ दफ्तर में मिल के डाइरेक्टर और मैनेजर सेठ खूबचन्द के साथ बैठे कोई ऐसी व्यवस्था सोच रहे थे कि मजदूरों के प्रति इस अन्याय का अन्त हो जाय।

दस बजे सेठजी ने बाहर निकलकर मजदूरों को सूचना दी—मित्रो, ईश्वर को धन्यवाद दो, कि उसने तुम्हारी विनय स्वीकार कर ली। तुम्हारी हाजिरी के लिए अब नये नियम बनाये जायँगे और जुरमाने की वर्तमान प्रथा उठा दी जायगी।

मजदूरों ने सुना; पर उन्हें वह आनन्द न हुआ, जो एक घंटा पहले होता। कृष्णचन्द की बलि देकर बड़ी-से-बड़ी रिआयत भी उनके निगाहों में हेच थी।

अभी अर्थी न उठने पायी थी कि प्रमीला लाल आँखें किये उन्मत्त-सी दौड़ी आयी और उस देह से चिमट गयी, जिसे उसने अपने उदर से जन्म दिया और अपने रक्त से पाला था। चारों तरफ हाहाकार मच गया। मजदूर और मालिक ऐसा कोई नहीं था, जिसकी आँखों से आँसुओं की धारा न निकल रही हो।

सेठजी ने समीप जाकर प्रमीला के कन्धे पर हाथ रखा और बोले—क्या करती हो प्रमीला, जिसकी मृत्यु पर हँसना और ईश्वर को धन्यवाद देना चाहिए, उसकी मृत्यु पर रोती हो।

प्रमीला उसी तरह शव को हृदय से लगाये पड़ी रही। जिस निधि को पाकर उसने विपत्ति को सम्पत्ति समझा था, पति-वियोग के अन्धकारमय जीवन में जिस दीपक से आशा, धैर्य और अवलम्ब पा रही थी, वह दीपक बुझ गया था। जिस विभूति को पाकर ईश्वर की निष्ठा और भक्ति उसके रोम-रोम में व्याप्त हो गयी थी, वह विभूति उससे छीन ली गयी थी।

सहसा उसने पति को अस्थिर नेत्रों से देखकर कहा—तुम समझते होगे, ईश्वर जो कुछ करता है, हमारे कल्याण के लिए ही करता है। मैं ऐसा नहीं समझती। समझ ही नहीं सकती। कैसे समझूँ? हाय मेरे लाल! मेरे लाड़ले! मेरे राजा, मेरे सूर्य, मेरे चन्द्र, मेरे जीवन के आधार! मेरे सर्वस्व! तुझे खोकर कैसे चित्त को शान्ति रखूँ? जिसे गोद में देखकर मैंने अपने भाग्य को धन्य माना था, उसे आज धरती पर पड़ा देखकर हृदय को कैसे सँभालूँ! नहीं मानता! हाय नहीं मानता!!

यह कहते हुए उसने जोर से छाती पीट ली।

उसी रात को शोकातुर माता संसार से प्रस्थान कर गयी। पक्षी अपने बच्चे की खोज में पिंजरे से निकल गया।

(१०)

तीन साल बीत गये।

श्रमजीवियों के मुहल्ले में आज कृष्णाष्मी मी का उत्सव है। उन्होंने आपस में चन्दा करके एक मन्दिर बनवाया है। मन्दिर आकार में तो बहुत सुन्दर और विशाल नहीं; पर जितनी भक्ति से यहाँ सिर झुकते हैं, वह बात इससे

कहीं विशाल मन्दिरों को प्राप्त नहीं। यहाँ लोग अपनी सम्पत्ति का प्रदर्शन करने नहीं, बल्कि अपनी श्रद्धा की भेंट देने आते हैं।

मजदूर स्त्रियाँ गा रही हैं, बालक दौड़-दौड़कर छोटे-मोटे काम कर रहे हैं, और पुरुष झाँकी के बनाव-शृङ्गार में लगे हुए हैं।

उसी वक्त सेठ खूबचन्द आये। स्त्रियाँ और बालक उन्हें देखते ही चारों ओर से दौड़कर जमा हो गये। यह मन्दिर उन्हीं के सतत उद्योग का फल है। मजदूर परिवारों की सेवा ही अब उनके जीवन का उद्देश्य है। उनका छोटा-सा परिवार अब विराट रूप हो गया है। उनके सुख को वह अपना सुख और उनके दुख को अपना दुख मानते हैं। मजदूरों में शराब, जुए और दुराचरण की वह कसरत नहीं रही। सेठजी की सहायता, सत्संग और सद्व्यवहार पशुओं को मनुष्य बना रहा है।

सेठजी ने बाल-रूप भगवान के सामने जाकर सिर झुकाया और उनका मन अलौकिक आनन्द से खिल उठा। उस झाँकी में उन्हें कृष्णचन्द्र की झलक दिखायी दी। एक ही क्षण में उसने जैसे गोपीनाथ का रूप धारण किया। हिदानी ओर से देखते थे, तो कृष्णचन्द्र; बायीं ओर से देखते थे, तो गोपीनाथ।

सेठजी का रोम-रोम पुलकित हो उठा। भगवान् की व्यापक का, दया का रूप आज जीवन में पहली बार उन्हें दिखायी दिया। अब तक, भगवान् की दया को वह सिद्धान्त-रूप से मानते थे। आज उन्होंने उनका प्रत्यक्ष रूप देखा। एक पथ-भ्रष्ट, पतनोन्मुखी आत्मा के उद्धार के लिए इतना दैवी विधान! इतनी अनवरत ईश्वरीय प्रेरणा! सेठजी के मानस-पट पर अपना सम्पूर्ण जीवन सिनेमा-चित्रों की भाँति दौड़ गया। उन्हें जान पड़ा, जैसे आज बीस वर्ष से ईश्वर की कृपा उन पर छाया किये हुए है। गोपीनाथ का बलिदान क्या था? विद्रोही मजदूरों ने जिस समय उनका मकान घेर लिया था, उस समय उनका आत्म-समर्पण ईश्वर की दया के सिवा और क्या था, पन्द्रह साल के निर्वासित जीवन में, फिर कृष्णचन्द्र के रूप में, कौन उनकी आत्मा की रक्षा कर रहा था?

सेठजी के अन्तःकरण से भक्ति की विह्वलता में डूबी हुई जय-ध्वनि निकली—कृष्ण भगवान् की जय! और जैसे सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड दया के प्रकाश से जगमगा उठा।

नेउर

आकाश में चाँदी के पहाड़ भाग रहे थे, टकरा रहे थे, गले मिल रहे थे; जैसे सूर्य-मेघ संग्राम छिड़ा हुआ हो। कभी छाया हो जाती थी, कभी तेज धूप चमक उठती थी। बरसात के दिन थे, उमस हो रही थी। हवा बन्द हो गयी थी।

गाँव के बाहर कई मजूर एक खेत की मेंड़ बाँध रहे थे। नंगे बदन, पसीने में तर, कछनी कसे हुए, सब-के-सब फावड़े से मिट्टी खोदकर मेंड़ पर रखते जाते थे। पानी से मिट्टी नरम हो गयी थी।

गोबर ने अपनी कानी आँख मटकाकर कहा—अब तो हाथ नहीं चलता भाई! गोला भी छूट गया होगा, चबेना कर लें।

नेउर ने हँसकर कहा—यह मेंड़ तो पूरी कर लो, फिर चबेना कर लेना। मैं तो तुमसे पहले आया।

दोनों ने सिर पर झौवा उठाते हुए कहा—तुमने अपनी जवानी में जितना घी खाया होगा नेउर दादा, उतना तो अब हमें पानी भी नहीं मिलता।

नेउर छोटे डील का, गठीला, काला, फुर्तीला आदमी था। उम्र पचास से ऊपर थी; मगर अच्छे-अच्छे नौजवान उसके बराबर मेहनत न कर सकते थे। अभी दो-तीन साल पहले तक कुश्ती लड़ता था। जब से गाय मर गयी, कुश्ती लड़ना छोड़ दिया था।

गोबर—तुमसे तमाखू पिये बिना कैसे रहा जाता है नेउर दादा? यहाँ तो चाहे रोटी न मिले; लेकिन तमाखू के बिना नहीं रहा जाता।

दीना—तो यहाँ से जाकर रोटी बनाओगे दादा? बुढ़िया कुछ नहीं करती? हमसे तो दादा ऐसी मेहरिया से एक दिन न पटे।

नेउर के पिचके, खिचड़ी मूँछों से ढके मुख पर हास्य की स्मित रेखा चमक उठी, जिसने उसकी कुरूपता को भी सुन्दर बना दिया। बोला—जवानी तो उसी के साथ कटी है बेटा, अब उससे कोई काम नहीं होता, तो क्या करूँ!

गोबर—तुमने उसे सिर चढ़ा रखा है, नहीं तो काम क्यों न करती।

मजे से खाट पर बैठी चिलम पीती रहती है और सारे गाँव से लड़ा करती है। तुम बूढ़े हो गये; लेकिन वह तो अब भी जवान बनी है।

दीना—जवान औरत उसकी क्या बराबरी करेगी। सेंदुर, टिकली, काजल, मेंहदी में तो उसका मन बसता है। बिना किनारदार रंगीन धोती के उसे कभी देखा ही नहीं, उसपर गहनों से भी जी नहीं भरता। तुम गऊ हो, इससे निबाह हो जाता है, नहीं तो अब तक गली-गली ठोकरें खाती होती।

गोबर—मुझे तो उसके बनाव-सिंगार पर गुस्सा आता है। काम कुछ न करेगी; पर खाने-पहनने को अच्छा ही चाहिए।

नेउर—तुम क्या जानो बेटा, जब वह आयी थी, तो मेरे घर में सात हल की खेती होती थी। रानी बनी बैठी रहती थी। जमाना बदल गया, तो क्या हुआ, उसका मन तो वही है। घड़ी भर चूल्हे के सामने बैठ जाती है, तो आँखें लाल हो जाती हैं और मूड़ थामकर पड़ जाती है। मुझसे तो यह नहीं देखा जाता। इसी दिन-रात के लिए तो आदमी शादी-ब्याह करता है, और इसमें क्या रखा है। यहाँ से जाकर रोटी बनाऊँगा, पानी लाऊँगा, तब दो कौर खायेगी, नहीं तो मुझे क्या था, तुम्हारी तरह चार फंकी मारकर एक लोटा पानी पी लेता। जब से बिटिया मर गयी, तब से तो वह और भी लस्त हो गयी। यह बड़ा भारी धक्का लगा। माँ की ममता हम-तुम क्या समझेंगे बेटा! पहले तो कभी-कभी डाट भी देता था। अब किस मुँह से डाटूँ?

दीना—तुम कल पेड़ पर काहे को चढ़े थे, अभी गूलर कौन पकी है?

नेउर—उस बकरी के लिए थोड़ी पत्ती तोड़ रहा था। बिटिया को दूध पिलाने को बकरी ली थी। अब बुढ़िया हो गयी है; लेकिन थोड़ा दूध दे देती है। उसी का दूध और रोटी बुढ़िया का आधार है।

घर पहुँचकर नेउर ने लोटा और डोर उठाया और नहाने चला, कि स्त्री ने खाट पर लेटे-लेटे कहा—इतनी देर क्यों कर दिया करते हो? आदमी काम के पीछे परान थोड़े ही देता है? जब मजूरी सब के बराबर मिलती है, तो क्यों काम के पीछे मरते हो?

नेउर का अन्तःकरण एक माधुर्य से सराबोर हो गया। उसके आत्म-समर्पण से भरे हुए प्रेम में 'मैं' की गन्ध भी तो नहीं थी। कितना स्नेह है! और किसे उसके आराम की, उसके मरने-जीने की चिन्ता है? फिर वह क्यों न अपनी बुढ़िया के लिये मरे? बोला—तू उस जनम में कोई देवी रही होगी बुधिया, सच।

'अच्छा रहने दो यह चापलूसी। हमारे आगे अब कौन बैठा हुआ है, जिसके लिए इतना हाय-हाय करते हो?'

नेउर गज-भर की छाती किये स्नान करने चला गया। लौटकर उसने मोटी-मोटी रोटियाँ बनायीं। आलू चूल्हे में डाल दिये थे। उनका भुरता बनाया; फिर बुधिया और वह दोनों साथ खाने बैठे।

बुधिया—मेरी जात से तुम्हें कोई सुख न मिला। पड़े-पड़े खाती हूँ और तुम्हें तंग करती हूँ। इससे तो कहीं अच्छा था कि भगवान् मुझे उठा लेते!

'भगवान् आयेंगे तो मैं कहूँगा, पहले मुझे ले चलो। तब इस सूनी झोपड़ी में कौन रहेगा?'

'तुम न रहोगे, तो मेरी क्या दसा होगी, यह सोचकर मेरी आँखों में अंधेरा आ जाता है। मैंने कोई बड़ा पुन किया था कि तुम्हें पाया। किसी और के साथ मेरा भला क्या निबाह होता?'

ऐसे मीठे संतोष के लिए नेउर क्या नहीं कर डालना चाहता था। आलसिन, लोभिन, स्वार्थिन बुधिया अपनी जीभ पर केवल मिठास रखकर नेउर को नचाती रहती थी, जैसे कोई शिकारी कँटिये में चारा लगाकर मछली को खिलाता है।

पहले कौन मरे, इस विषय पर आज यह पहली ही बार बातचीत न हुई थी। इसके पहले भी कितनी ही बार यह प्रश्न उठा था और यों ही छोड़ दिया गया था; लेकिन न-जाने क्यों नेउर ने अपनी डिग्री कर ली थी और उसे निश्चय था कि पहले मैं जाऊँगा। उसके पीछे भी बुधिया जब तक रहे, आराम से रहे, किसी के सामने हाथ न फैलाये, इसीलिए वह मरता रहता था, जिसमें हाथ में चार पैसे जमा हो जायँ। कठिन-से-कठिन काम, जिसे कोई न कर सके, नेउर करता। दिन-भर फावड़े-कुदाल का काम करने के बाद रात को वह ऊख के दिनों में किसी की ऊख पेरता, या खेतों की रखवाली करता; लेकिन दिन निकलते जाते थे और जो कुछ कमाता था, वह भी निकलता

जाता था। बुधिया के बगैर वह जीवन........नहीं, इसकी वह कल्पना ही न कर सकता था।

लेकिन आज की बातों ने नेउर को सशंक कर दिया। जल में एक बूँद रंग की भाँति यह शंका उसके मन में समा कर अतिरंजित होने लगी।

(२)

गाँव में नेउर को काम की कमी न थी; पर मजूरी तो वही मिलती थी, जो अब तक मिलती आयी थी। इस मन्दी में वह मजूरी भी नहीं रह गयी थी। एकाएक गाँव में एक साधु कहीं से घूमते-फिरते आ निकले और नेउर के घर के सामने ही पीपल की छाँह में उनकी धूनी जल गयी। गाँववालों ने अपना धन्य भाग्य समझा। बाबाजी का सेवा-सत्कार करने के लिए सभी जमा हो गये। कहीं से लकड़ी आ गयी, कहीं से बिछाने को कम्बल, कहीं से आटा-दाल। नेउर के पास क्या था? बाबाजी के लिए भोजन बनाने की सेवा उसने ली। चरस आ गयी, दम लगने लगा।

दो-तीन दिन में ही बाबाजी की कीर्ति फैलने लगी। वह आत्मदर्शी हैं, भूत-भविष्य सब बता देते हैं। लोभ तो छू नहीं गया। पैसा हाथ से नहीं छूते, और भोजन भी क्या करते हैं! आठ पहर में एक-दो बाटियाँ खा लीं; लेकिन मुख दीपक की तरह दमक रहा है। कितनी मीठी बानी है! सरलहृदय नेउर बाबाजी का सबसे बड़ा भक्त था। उस पर कहीं बाबाजी की दया हो गयी, तो पारस ही हो जायगा। सारा दुख-दलिद्दर मिट जायगा।

भक्तजन एक-एक करके चले गये थे। खूब कड़ाके की ठंढ पड़ रही थी। केवल नेउर बैठा बाबाजी के पाँव दबा रहा था।

बाबाजी ने कहा—बच्चा! संसार माया है, इसमें क्यों फँसे हो!

नेउर ने नत-मस्तक होकर कहा—अज्ञानी हूँ महाराज, क्या करूँ? स्त्री है, उसे किसपर छोड़ूँ?

'तू समझता है, तू स्त्री का पालन करता है?'

'और कौन सहारा है उसे बाबाजी?'

'ईश्वर कुछ नहीं है, तू ही सब कुछ है?'

नेउर के मन में जैसे ज्ञान उदय हो गया। तू इतना अभिमानी हो गया है! तेरा इतना दिमाग! मजदूरी करते-करते जान जाती है और तू समझता है, मैं ही बुधिया का सब कुछ हूँ। प्रभु, जो सारे संसार का पालन करते हैं, तू उनके काम में दखल देने का दावा करता है उसके सरल, ग्रामीण हृदय में आस्था की एक ध्वनि सी उठकर उसे धिक्कारने लगी। बोला—अज्ञानी हूँ महाराज!

इससे ज्यादा वह और कुछ न कह सका। आँखों से दीन विषाद के आँसू गिरने लगे।

बाबाजी ने तेजस्विता से कहा—देखना चाहता है ईश्वर का चमत्कार! वह चाहे तो क्षण-भर में तुझे लखपती कर दे। क्षण-भर में तेरी सारी चिन्ताएँ हर ले! मैं उसका एक तुच्छ भक्त हूँ काकविष्टा; लेकिन मुझमें भी इतनी शक्ति है कि तुझे पारस बना दूँ। तू साफ दिल का, सच्चा, ईमानदार आदमी है। मुझे तुझपर दया आती है। मैंने इस गाँव में सब को ध्यान से देखा। किसी में भक्ति नहीं, विश्वास नहीं। तुझमें मैंने भक्त का हृदय पाया। तेरे पास कुछ चाँदी है?

नेउर को जान पड़ रहा था कि सामने स्वर्ग का द्वार है।

'दस-पाँच रुपये होंगे महाराज!'

'कुछ चाँदी के टूटे-फूटे गहने नहीं हैं?'

'घरवाली के पास कुछ गहने हैं।'

'कल रात को जितनी चाँदी मिल सके, यहाँ ला और ईश्वर की प्रभुता देख। तेरे सामने मैं चाँदी को हाँड़ी में रखकर इसी धूनी में रख दूँगा। प्रातःकाल आकर हाँड़ी निकाल लेना; मगर इतना याद रखना कि उन अशर्फियों को अगर शराब पीने में, जुआ खेलने में या किसी दूसरे बुरे काम में खर्च किया, तो कोढ़ी हो जायगा। अब जा, सो रह। हाँ, इतना और सुन ले; इसकी चर्चा किसी से मत करना। घरवाली से भी नहीं।'

नेउर घर चला, तो ऐसा प्रसन्न था, मानो ईश्वर का हाथ उसके सिर पर है। रात-भर उसे नींद नहीं आयी। सबेरे उसने कई आदमियों से दो-दो, चार-चार रुपये उधार लेकर पचास रुपये जोड़े। लोग उसका विश्वास करते थे। कभी किसी का एक पैसा भी न दबाता था। वादे का पक्का, नीयत का साफ। रुपये मिलने में दिक्कत न हुई। पचीस रुपये उसके पास थे। बुधिया

से गहने कैसे ले ? चाल चली। तेरे गहने बहुत मैले हो गये हैं। खटाई से साफ कर ले। रात-भर खटाई में रहने से नये हो जायँगे। बुधिया चकमे में आ गयी। हाँड़ी में खटाई डालकर गहने भिगो दिये। जब रात को वह सो गयी, तो नेउर ने रुपये भी उसी हाँड़ी में डाल दिये और बाबाजी के पास पहुँचा। बाबाजी ने कुछ मन्त्र पढ़ा। हाँड़ी को धूनी की राख में रखा और नेउर को आशीर्वाद देकर बिदा किया।

रात-भर करवटें बदलने के बाद नेउर मुँह अँधेरे बाबा के दर्शन करने गया; मगर बाबाजी का वहाँ पता न था। अधीर होकर उसने धूनी की जलती हुई राख टटोली। हाँड़ी गायब थी। छाती धक्-धक् करने लगी। बदहवास होकर बाबा को खोजने लगा। हार की तरफ गया। तालाब की ओर पहुँचा। दस मिनट, बीस मिनट, आधा घंटा! बाबा का कहीं निशान नहीं। भक्त आने लगे। बाबा कहाँ गये? कम्बल भी नहीं, बरतन भी नहीं!

भक्त ने कहा—रमते साधुओं का क्या ठिकाना! आज यहाँ, कल वहाँ; एक जगह रहें, तो साधु कैसे? लोगों से हेल मेल हो जाय, बन्धन में पड़ जायँ।

'सिद्ध थे।'

'लोभ तो छू नहीं गया था।'

'नेउर कहाँ है? उसपर बड़ी दया करते थे। उससे कह गये होंगे।'

नेउर की तलाश होने लगी, कहीं पता नहीं। इतने में बुधिया नेउर को पुकारती हुई घर में से निकली। फिर कोलाहल मच गया। बुधिया रोती थी और नेउर को गालियाँ देती थी।

नेउर खेतों की मेड़ों से बेतहाशा भागता चला जाता था, मानो इस पापी संसार से निकल जायगा।

एक आदमी ने कहा—नेउर ने कल मुझसे पाँच रुपये लिये थे।

आज साँझ को देने कहा था।

दूसरा—हमसे भी दो रुपये आज ही के वादे पर लिये थे।

बुधिया रोयी—दाढ़ीजार मेरे सारे गहने ले गया। पचीस रुपये रखे थे, वह भी उठा ले गया।

लोग समझ गये, बाबा कोई धूर्त्त था। नेउर को झाँसा दे गया। ऐसे-ऐसे

ठग पड़े हैं संसार में! नेउर के बारे में किसी को ऐसा सन्देह नहीं था। बेचारा सीधा आदमी, आ गया पट्टी में। मारे लाज के कहीं छिपा बैठा होगा।

(३)

तीन महीने गुजर गये।

झाँसी जिले में धसान नदी के किनारे एक छोटा-सा गाँव है। काशीपुर। नदी के किनारे एक पहाड़ी टीला है। उसी पर कई दिन से एक साधु ने अपना आसन जमाया है। नाटे कद का आदमी है, काले तवे का-सा रंग, देह गठी हुई। यह नेउर है, जो साधु-वेश में दुनिया को धोखा दे रहा है—वही सरल, निष्कपट नेउर, जिसने कभी पराये माल की ओर आँख नहीं उठायी, जो पसीना की रोटी खाकर मगन था। घर की, गाँव की और बुधिया की याद एक क्षण भी उसे नहीं भूलती, इस जीवन में फिर कोई दिन आयेगा, कि वह अपने घर पहुँचेगा और फिर उस संसार में हँसता-खेलता अपनी छोटी-छोटी चिन्ताओं और छोटी-छोटी आशाओं के बीच आनन्द से रहेगा! वह जीवन कितना सुखमय था! जितने थे सब अपने थे, सभी आदर करते थे, सहानुभूति रखते थे। दिन-भर की मजूरी, थोड़ा-सा अनाज या थोड़े-से पैसे लेकर घर आता था, तो बुधिया कितने मीठे स्नेह से उसका स्वागत करती थी। वह सारी मेहनत, सारी थकावट जैसे उस मिठास में सनकर और मीठी हो जाती थी। हाय वे दिन फिर कब आयेंगे? न-जाने बुधिया कैसे रहती होगी। कौन उसे पान की तरह फेरेगा? कौन उसे पकाकर खिलायेगा? घर में पैसा भी तो नहीं छोड़ा, गहने तक डुबा दिये। तब उसे क्रोध आता कि उस बाबा को पा जाय, तो कच्चा ही खा जाय। हाय लोभ! लोभ!!

उसके अनन्य भक्तों से एक सुन्दरी युवती भी थी, जिसके पति ने उसे त्याग दिया था। उसका बाप फौजी पेंशनर था। एक पढ़े-लिखे आदमी से लड़की का विवाह किया; लेकिन लड़का माँ के कहने में था और युवती की अपनी सास से न पटती थी। वह चाहती थी, शौहर के साथ सास से अलग रहे; शौहर अपनी माँ से अलग होने पर राजी न हुआ। बहू रूठकर मैके चली आयी। तब से तीन साल हो गये थे और ससुराल से एक बार भी बुलावा न आया, न पतिदेव ही आये। युवती किसी तरह पति को अपने वश में कर लेना

चाहती थी। महात्माओं के लिए किसी का दिल फेर देना ऐसा क्या मुश्किल है ! हाँ, उनकी दया चाहिए ।

एक दिन उसने एकान्त में बाबाजी से अपनी विपत्ति कह सुनायी। नेउर को जिस शिकार की टोह थी, वह आज मिलता हुआ जान पड़ा। गंभीर भाव से बोला—बेटी, मैं न सिद्ध हूँ, न महात्मा, न मैं संसार के झमेलों में पड़ता हूँ, पर तेरी सरधा और परेम देखकर तुझपर दया आती है। भगवान् ने चाहा, तो तेरा मनोरथ पूरा हो जायगा।

'आप समर्थ हैं और मुझे आपके ऊपर विश्वास है।'

'भगवान् की जो इच्छा होगी, वही होगा।'

'इस अभागिनी का डोंगा आप ही पार लगा सकते हैं।'

'भगवान पर भरोसा रखो।'

'मेरे भगवान तो आप ही हो।'

नेउर ने मानो धर्म-संकट में पड़कर कहा—लेकिन बेटी, उस काम में बड़ा अनुष्ठान करना पड़ेगा, और अनुष्ठान में सैकड़ों-हजारों का खर्च है। उसपर भी तेरा काज सिद्ध होगा या नहीं, यह मैं कहीं कह सकता। हाँ, मुझसे जो कुछ हो सकेगा, वह मैं कर दूँगा; पर सब कुछ भगवान् के हाथ में है। मैं माया को हाथ से नहीं छूता; लेकिन तेरा दुःख नहीं देखा जाता।

उसी रात को युवती ने अपने सोने के गहनों की पेटारी लाकर बाबाजी के चरणों पर रख दी। बाबाजी ने काँपते हुए हाथों से पेटारी खोली और चन्द्रमा के उज्वल प्रकाश में आभूषणों को देखा। उनकी आँखें झपक गयीं। यह सारी माया उनकी है। वह उनके सामने हाथ बाँधे खड़ी कह रही है—मुझे अंगीकार कीजिए। कुछ भी तो करना नहीं है; केवल पेटारी लेकर अपने सिरहाने रख लेना है और युवती को आशीर्वाद देकर बिदा कर देना है। प्रातःकाल वह आयेगी। उस वक्त वह उतनी दूर होंगे, जहाँ तक उनकी टाँगें ले जायँगी। ऐसा आशातीत सौभाग्य ! जब वह रुपयों से भरी थैलियाँ लिये गाँव में पहुँचेंगे और बुधिया के सामने रख देंगे ! ओह ! इससे बड़े आनन्द की तो वह कल्पना भी नहीं कर सकते।

लेकिन न-जाने क्यों इतना जरा-सा काम भी उससे नहीं हो सकता था।

वह पेटारी को उठाकर अपने सिरहाने, कंबल के नीचे दबाकर नहीं रख सकता। है कुछ नहीं; पर उसके लिए असूझ है, असाध्य है। वह उस पेटारी की ओर हाथ भी नहीं बढ़ा सकता। हाथों पर उसका कोई बस नहीं। जाने दो हाथ, जबान से तो कह सकता है। इतना कहने में कौन-सी दुनिया उलटी जाती है, कि बेटी, इसे उठाकर इस कम्बल के नीचे रख दे। जबान कट तो न जायगी; मगर अब उसे मालूम होता है कि जबान पर भी उसका काबू नहीं है। आँखों के इशारे से भी यह काम हो सकता है; लेकिन इस समय आँखें भी बगावत कर रही हैं। मन का राजा इतने मन्त्रियों और सामन्तों के होते हुए भी अशक्त है, निरीह है। लाख रुपये की थैली सामने रखी हो, नंगी तलवार हाथ में हो; गाय मजबूत रस्सी से सामने बँधी हो; क्या उस गाय की गरदन पर उसके हाथ उठेंगे ? कभी नहीं। कोई उसकी गरदन भले ही काट ले। वह गऊ की हत्या नहीं कर सकता। वह परित्यक्ता उसे उसी गऊ की तरह लग रही थी। जिस अवसर को वह तीन महीने से खोज रहा है, उसे पाकर आज उसकी आत्मा काँप रही है। तृष्णा किसी वन्य जन्तु की भाँति अपने संस्कारों से आखेटप्रिय है; लेकिन जंजीरों से बँधे-बँधे उसके नख गिर गये हैं और दाँत कमजोर हो गये हैं।

उसने रोते हुए कहा—बेटी, पेटारी को उठा ले जाओ। मैं तुम्हारी परीक्षा कर रहा था। तुम्हारा मनोरथ पूरा हो जायगा।

चाँद नदी के उस पार वृक्षों की गोद में विश्राम कर चुका था। नेउर धीरे से उठा और धसान में स्नान करके एक ओर चल दिया। भभूत और तिलक से उसे घृणा हो रही थी। उसे आश्चर्य हो रहा था कि वह घर से निकला ही कैसे ? थोड़े-से उपहास के भय से ! उसे अपने अन्दर एक विचित्र उल्लास का अनुभव हो रहा था, मानो वह बेड़ियों से मुक्त हो गया हो, कोई बहुत बड़ी विजय प्राप्त की हो !

(४)

आठवें दिन नेउर अपने गाँव पहुँच गया। लड़कों ने दौड़कर, उछल-कूद-कर, उसकी लकड़ी उसके हाथ से छीनकर, उसका स्वागत किया।

एक लड़के ने कहा—काकी तो मर गयी दादा !

नेउर के पाँव जैसे बँध गये। मुँह के दोनों कोने नीचे झुक गये। दीन विषाद आखों में चमक उठा। कुछ बोला नहीं, कुछ पूछा भी नहीं। पल-भर जैसे निस्संज्ञ खड़ा रहा, फिर बड़ी तेजी से अपनी झोपड़ी की ओर चला। बालक-वृन्द भी उसके पीछे दौड़े; मगर उनकी शरारत और चंचलता भाग गयी थी।

झोपड़ी खुली पड़ी थी। बुधिया की चारपाई जहाँ-की-तहाँ थी। उसकी चिलम और नारियल ज्यों-के-त्यों धरे हुए थे। एक कोने में दो-चार मिट्टी और पीतल के बरतन पड़े हुए थे। लड़के बाहर ही खड़े रह गये। झोपड़ी के अन्दर कैसे जायँ, वहाँ बुधिया बैठी है।

गाँव में भगदड़ मच गयी। नेउर दादा आ गये। झोपड़ी के द्वार पर भीड़ लग गयी, प्रश्नों का ताँता बँध गया—तुम इतने दिन कहाँ थे दादा? तुम्हारे जाने के बाद तीसरे ही दिन काकी चल बसीं। रात दिन तुम्हें गालियाँ देती थीं। मरते-मरते तुम्हें गरियाती ही रहीं। तीसरे दिन आये, तो मरी पड़ी थीं। तुम इतने दिन कहाँ रहे?

नेउर ने कोई जवाब न दिया। केवल शून्य, निराश, करुण, आहत नेत्रों से लोगों की ओर देखता रहा, मानो उसकी वाणी हर ली गयी है। उस दिन से किसी ने उसे बोलते, रोते या हँसते नहीं देखा।

गाँव से आध मील पर पक्की सड़क है। अच्छी आमद-रफ्त है। नेउर बड़े सबेरे जाकर सड़क के किनारे एक पेड़ के नीचे बैठ जाता है। किसी से कुछ माँगता नहीं; पर राहगीर कुछ-न-कुछ दे ही देते हैं—चबेना, अनाज, पैसे! सन्ध्या-समय वह अपनी झोपड़ी में आ जाता है, चिराग जलाता है, भोजन बनाता है, खाता है, और उसी खाट पर पड़ रहता है। उसके जीवन में जो एक संचालक-शक्ति थी, वह लुप्त हो गयी है। वह अब केवल जीवधारी है। कितनी गहरी मनोव्यथा है! गाँव में प्लेग आया। लोग घर छोड़-छोड़-कर भागने लगे। नेउर को अब किसी की परवाह न थी। न किसी को उससे भय था, न प्रेम। सारा गाँव भाग गया, नेउर ने अपनी झोपड़ी न छोड़ी; तब होली आयी। सब ने खुशियाँ मनायीं, नेउर अपनी झोपड़ी से न निकला; और आज भी वह उसी पेड़ के नीचे, सड़क के किनारे, उसी तरह मौन बैठा हुआ नजर आता है—निश्चेष्ट, निर्जीव!

गृह-नीति

जब माँ, बेटे से बहू की शिकायतों का दफ्तर खोल देती है और यह सिल-सिला किसी तरह खत्म होते नजर नहीं आता, तो बेटा उकता जाता है और दिन-भर की थकन के कारण कुछ झुँझलाकर माँ से कहता है—तो आखिर तुम मुझसे क्या करने को कहती हो अम्माँ? मेरा काम स्त्री को शिक्षा देना तो नहीं है। यह तो तुम्हारा काम है! तुम उसे डाँटो, मारो, जो सजा चाहे दो। मेरे लिए इससे ज्यादा खुशी की और क्या बात हो सकती है कि तुम्हारे प्रयत्न से वह आदमी बन जाय? मुझसे मत कहो कि उसे सलीका नहीं है, तमीज नहीं है, बे-अदब है। उसे डाँटकर सिखाओ।

माँ—वाह, मुँह से बात निकालने नहीं देती, डाटूँ तो मुझे ही नोच खाय। उसके सामने अपनी आबरू बचाती फिरती हूँ, कि किसी के मुँह पर मुझे कोई अनुचित शब्द न कह बैठे।

बेटा—तो फिर इसमें मेरी क्या खता है? मैं तो उसे सिखा नहीं देता कि तुमसे बे-अदबी करे!

माँ—तो और कौन सिखाता है?

बेटा—तुम तो अन्धेर करती हो अम्माँ!

माँ—अन्धेर नहीं करती, सत्य कहती हूँ। तुम्हारी ही शह पाकर उसका दिमाग बढ़ गया है। जब वह तुम्हारे पास जाकर टिसवे बहाने लगती है, तो कभी तुमने उसे डाँटा, कभी समझाया कि तुझे अम्माँ का अदब करना चाहिए? तुम तो खुद उसके गुलाम हो गये हो। वह भी समझती है, मेरा पति कमाता है, फिर मैं क्यों न रानी बनूँ, क्यों किसी से दबूँ? मर्द जब तक शह न दे, औरत का इतना गुर्दा हो ही नहीं सकता।

बेटा—तो क्या मैं उससे कह दूँ कि मैं कुछ नहीं कमाता, बिलकुल निखट्टू हूँ? क्या तुम समझती हो, तब वह मुझे जलील न समझेगी? हर एक पुरुष चाहता है कि उसकी स्त्री उसे कमाऊ, योग्य, तेजस्वी समझे और सामान्यतः वह जितना है, उससे बढ़कर अपने को दिखाता है। मैंने कभी

नादानी नहीं की, कभी स्त्री के सामने डींग नहीं मारी; लेकिन स्त्री की दृष्टि में अपना सम्मान खोना तो कोई भी न चाहेगा।

माँ—तुम कान लगाकर, ध्यान देकर और मीठी मुसकराहट के साथ उसकी बातें सुनोगे, तो वह क्यों न शेर होगी ? तुम खुद चाहते हो कि स्त्री के हाथों मेरा अपमान कराओ। मालूम नहीं, मेरे किन पापों का तुम मुझे यह दंड दे रहे हो। किन अरमानों से, कैसे-कैसे कष्ट झेलकर, मैंने तुम्हें पाला। खुद नहीं पहना, तुम्हें पहनाया; खुद नहीं खाया, तुम्हें खिलाया। मेरे लिए तुम उस मरनेवाले की निशानी थे और मेरी सारी अभिलाषाओं के केन्द्र। तुम्हारी शिक्षा पर मैंने अपने हजारों के आभूषण होम कर दिये। विधवा के पास दूसरी कौन सी निधि थी ? इसका तुम मुझे यह पुरस्कार कर रहे हो!

बेटा—मेरी समझ में नहीं आता कि आप मुझसे चाहती क्या हैं? आपके उपकारों को मैं कब मेट सकता हूँ ? आपने मुझे केवल शिक्षा ही नहीं दिलायी, मुझे जीवन-दान दिया, मेरी सृष्टि की। अपने गहने ही नहीं होम किये, अपना रक्त तक पिलाया। अगर मैं सौ बार अवतार लूँ, तो भी इसका बदला नहीं चुका सकता। मैं अपनी जान में आपकी इच्छा के विरुद्ध कोई काम नहीं करता, यथासाध्य आपकी सेवा में कोई बात उठा नहीं रखता; जो कुछ पाता हूँ, लाकर आपके हाथों पर रख देता हूँ; और मुझसे क्या चाहती हैं ? और मैं कर ही क्या सकता हूँ ? ईश्वर ने हमें तथा आपको और सारे संसार को पैदा किया। उसका हम उसे क्या बदला देते हैं ? क्या बदला दे सकते हैं ? उसका नाम भी तो नहीं लेते। उसका यश भी तो नहीं गाते। इससे क्या उसके उपकारों का भार कुछ कम हो जाता है ? माँ के बलिदानों का प्रतिशोध कोई बेटा नहीं कर सकता, चाहे वह भू-मण्डल का स्वामी ही क्यों न हो। ज्यादा-से-ज्यदा मैं आपकी दिलजोई ही तो कर सकता हूँ, और मुझे याद नहीं आता कि मैंने कभी आपको असन्तुष्ट किया हो।

माँ—तुम मेरी दिलजोई करते हो! तुम्हारे घर में मैं इस तरह रहती हूँ जैसे कोई लौंडी। तुम्हारी बीबी कभी मेरी बात भी नहीं पूछती। मैं भी कभी बहू थी। रात को घंटे-भर सास की देह दबाकर, उनके सिर में तेल डालकर उन्हें दूध पिलाकर तब बिस्तर पर जाती थी। तुम्हारी स्त्री नौ बजे

अपनी किताबें लेकर अपनी सहनची में जा बैठती है, दोनों खिड़कियाँ खोल लेती है और मजे से हवा खाती है। मैं मरूँ या जीऊँ, उससे मतलब नहीं; इसीलिए मैंने तुम्हें पाला था ?

बेटा—तुमने मुझे पाला था, तो यह सारी सेवा मुझसे लेनी चाहिए थी; मगर तुमने मुझसे कभी नहीं कहा। मेरे अन्य मित्र भी हैं। उनमें भी मैं किसी को माँ की देह में मुक्कियाँ लगाते नहीं देखता। आप मेरे कर्तव्य का भार मेरी स्त्री पर क्यों डालती हैं ? यों अगर वह आपकी सेवा करे, तो मुझसे ज्यादा प्रसन्न और कोई न होगा। मेरी आँखों में उसकी इज्जत दूनी हो जायगी। शायद उससे और ज्यादा प्रेम करने लगूँ। लेकिन अगर वह आपकी सेवा नहीं करती, तो आपको उससे अप्रसन्न होने का कोई कारण नहीं है। शायद उसकी जगह मैं होता, तो मैं भी ऐसा ही करता। सास मुझे अपनी लड़की की तरह प्यार करती, तो मैं उसके तलुए सहलता; इसलिए नहीं कि वह मेरे पति की माँ होती; बल्कि इसलिए कि वह मुझसे मातृवत् स्नेह करती; मगर मुझे खुद यह बुरा लगता है कि बहू सास के पाँव दबाये। कुछ दिन पहले स्त्रियाँ पति के पाँव दबाती थीं। आज भी उस प्रथा का लोप नहीं हुआ है; लेकिन मेरी पत्नी मेरे पाँव दबाये, तो मुझे ग्लानि होगी। मैं उससे कोई ऐसी खिदमत नहीं लेना चाहता, जो मैं उसकी भी न कर सकूँ। यह रस्म उस जमाने की यादगार है, जब स्त्री पति की लौंडी समझी जाती थी! अब पत्नी और पति दोनों बराबर हैं। कम-से-कम मैं ऐसा ही समझता हूँ।

माँ—तो मैं कहती हूँ कि तुम्हीं ने उसे ऐसी-ऐसी बातें पढ़ाकर शेर कर दिया है। तुम्हीं मुझसे बैर साध रहे हो। ऐसी निर्लज्ज, ऐसी बदजबान, ऐसी टर्री, फूहड़ छोकरी संसार में न होगी। घर में अक्सर महल्ले की बहनें मिलने आती रहती हैं। यह राजा की बेटी न जाने किन गँवारों में पली है कि किसी का भी आदर-सत्कार नहीं करती। कमरे से निकलती तक नहीं। कभी-कभी जब वे खुद उसके कमरे में चली जाती हैं, तो भी यह गधी चारपाई से नहीं उठती। प्रणाम तक नहीं करती, चरण छूना तो दूर की बात है।

बेटा—वह देवियाँ तुमसे मिलने आती होंगी। तुम्हारे और उनके बीच

में न-जाने क्या बातें होती हों; अगर तुम्हारी बहू बीच में आ कूदे तो मैं उसे बदतमीज कहूँगा। कम-से-कम मैं तो कभी पसन्द न करूँगा कि जब मैं अपने मित्रों से बातें कर रहा हूँ, तो तुम या तुम्हारी बहू वहाँ जाकर खड़ी हो जाय। स्त्री भी अपनी सहेलियों के साथ बैठी हो, तो मैं वहाँ बिना बुलाये न जाऊँगा। यह तो आज कल का शिष्टाचार है।

माँ—तुम तो हर बात में उसी का पक्ष करते हो बेटा, न-जाने उसने कौन-सी जड़ी सुँघा दी है तुम्हें। यह कौन कहता है कि वह हम लोगों के बीच में आ कूदे; लेकिन बड़ों का उसे कुछ तो आदर-सत्कार करना ही चाहिए।

बेटा—किस तरह?

माँ—जाकर अञ्चल से उनके चरण छुए, प्रणाम करे, पान खिलाये पंखा झले। इन्हीं बातों से बहू का आदर होता है। लोग उसकी प्रशंसा करते हैं। नहीं तो सब-की-सब यही कहती होंगी कि बहू को घमण्ड हो गया है, किसी से सीधे मुँह बात नहीं करती!

बेटा—(विचार करके)हाँ यह अवश्य उसका दोष है। मैं उसे समझा दूँगा।

माँ—(प्रसन्न होकर) तुमसे सच कहती हूँ बेटा, चारपाई से उठती तक नहीं, सब औरतें थुड़ी-थुड़ी करती हैं; मगर उसे तो शर्म जैसे छू ही नहीं गयी और मैं हूँ, कि मारे शर्म के मरी जाती हूँ।

बेटा—यही मेरी समझ में नहीं आता कि तुम हर बात में अपने को उसके कामों का जिम्मेदार क्यों समझ लेती हो? मुझपर दफ्तर में न-जाने कितनी घुड़कियाँ पड़ती हैं, रोज ही तो जवाब-तलब होता है; लेकिन तुम्हें उलटे मेरे साथ सहानुभूति होती है। क्या तुम समझती हो, अफसरों को मुझसे कोई बैर है; जो अनायास ही मेरे पीछे पड़े रहते हैं; या उन्हें उन्माद हो गया है, जो अकारण ही मुझे काटने दौड़ते हैं? नहीं, इसका कारण यही है कि मैं अपने काम में चौकस नहीं हूँ। गल्तियाँ करता हूँ, सुस्ती करता हूँ, लापरवाही करता हूँ। जहाँ अफसर सामने से हटा कि लगे समाचार-पत्र पढ़ने या ताश खेलने। क्या उस वक्त हमें यह खयाल नहीं रहता कि काम पड़ा हुआ है और यह ताश खेलने का अवसर नहीं है; लेकिन कौन परवाह करता है। सोचते हैं, साहब डाँट ही तो बतायेंगे, सिर झुकाकर सुन लेंगे, बाधा टाल जायगी। पर

तुम मुझे दोषी समझकर भी मेरा पक्ष लेती हो और तुम्हारा बस चले, तो हमारे बड़े बाबू को मुझसे जवाब-तलब करने के अभियोग में कालेपानी भेज दो।

माँ—(खिलकर) मेरे लड़के को कोई सजा देगा, तो क्या मैं पान-फूल से उसकी पूजा करूँगी?

बेटा—हरेक बेटा अपनी माता से इसी तरह की कृपा की आशा रखता है, और सभी माताएँ अपने लड़कों के ऐबों पर पर्दा डालती हैं। फिर बहुओं की ओर से क्यों उनका हृदय इतना कठोर हो जाता है, यह मेरी समझ में नहीं आता। तुम्हारी बहू पर जब दूसरी स्त्रियाँ चोट करें, तो तुम्हारे मातृ-स्नेह का यह धर्म है कि तुम उसकी तरफ से क्षमा माँगो, कोई बहाना कर दो, उनकी नजरों में उसे उठाने की चेष्टा करो। इस तिरस्कार में तुम क्यों उनसे सहयोग करती हो? तुम्हें क्यों उसके अपमान में मजा आता है? मैं भी तो हरेक ब्राह्मण या बड़े-बूढ़े का आदर-सत्कार नहीं करता। मैं किसी ऐसे व्यक्ति के सामने सिर झुका ही नहीं सकता, जिससे मुझे हार्दिक श्रद्धा न हो। केवल सफेद बाल, सिकुड़ी हुई खाल, पोपला मुँह और झुकी हुई कमर किसी को आदर का पात्र नहीं बना देती, और न जनेऊ या तिलक या पण्डित और शर्मा की उपाधि ही भक्ति की वस्तु है। मैं लकीर-पीटू सम्मान को नैतिक अपराध समझता हूँ। मैं तो उसीका सम्मान करूँगा जो मनसा-वाचा-कर्मणा हर पहलू से सम्मान के योग्य है। जिसे मैं जानता हूँ कि मक्कारी; स्वार्थ-साधन और निन्दा के सिवा और कुछ नहीं करता, जिसे मैं जानता हूँ कि रिश्वत और सूद तथा खुशामद की कमाई खाता है, वह अगर ब्रह्मा की आयु लेकर भी मेरे सामने आये, तो भी मैं उसे सलाम न करूँ। इसे तुम मेरा अहङ्कार कह सकती हो। लेकिन मैं मजबूर हूँ, जब तक मेरा दिल न झुके, मेरा सिर भी न झुकेगा। मुमकिन है, तुम्हारी बहू के मन में भी उन देवियों की ओर से अश्रद्धा के भाव हों। उनमें से दो-चार को मैं भी जानता हूँ। हैं वे सब बड़े घर की; लेकिन सबके दिल छोटे, विचार छोटे। कोई निन्दा की पुतली है, तो कोई खुशामद में यकता, कोई गाली-गलौज में अनुपम। सभी रूढ़ियों की गुलाम, ईर्ष्या-द्वेष से जलनेवाली। एक भी ऐसी नहीं, जिसने अपने घर को नरक का

नमूना न बना रखा हो। अगर तुम्हारी बहू ऐसी औरतों के आगे सिर नहीं झुकाती, तो मैं उसे दोषी नहीं समझता।

माँ—अच्छा, अब चुप रहो बेटा, देख लेना, तुम्हारी यह रानी एक दिन तुमसे चूल्हा न जलवाये और झाड़ू न लगवाये, तो सही। औरतों को बहुत सिर चढ़ाना अच्छा नहीं होता। इस निर्लज्जता की भी कोई हद है, कि बूढ़ी सास तो खाना पकाये और जवान बहू बैठी उपन्यास पढ़ती रहे।

बेटा—बेशक यह बुरी बात है और मैं हर्गिज नहीं चाहता कि तुम खाना पकाओ और वह उपन्यास पढ़े, चाहे वह उपन्यास प्रेमचन्दजी ही के क्यों न हों; लेकिन यह भी तो देखना होगा कि उसने अपने घर कभी खाना नहीं पकाया। वहाँ रसोइया महाराज है। और जब चूल्हे के सामने जाने से उसके सिर में दर्द होने लगता है, तो उसे खाना पकाने के लिए मजबूर करना उस पर अत्याचार करना है। मैं तो समझता हूँ, ज्यों-ज्यों हमारे घर की दशा का उसे ज्ञान होगा, उसके व्यवहार में आप-ही-आप इसलाह होती जायगी। यह उसके घरवालों की गलती है, कि उन्होंने उसकी शादी किसी धनी घर में नहीं की। हमने भी यह शरारत की कि अपनी असली हालत उनसे छिपायी और यह प्रकट किया कि हम पुराने रईस हैं। अब हम किस मुँह से यह कह सकते हैं कि तू खाना पका, या बरतन माँज अथवा झाड़ू लगा? हमने उन लोगों से छल किया है और उसका फल हमें चखना पड़ेगा। अब तो हमारी कुशल इसी में है कि अपनी दुर्दशा को नम्रता, विनय और सहानुभूति से ढाँकें, और उसे अपने दिल को यह तसल्ली देने का अवसर दें कि बला से धन नहीं मिला, घर के आदमी तो अच्छे मिले। अगर यह तसल्ली भी हमने उससे छीन ली, तो तुम्हीं सोचो, उसको कितनी विदारक वेदना होगी! शायद वह हम लोगों की सूरत से भी घृणा करने लगे।

माँ—उसके घरवालों को सौ दफे गरज थी, तब हमारे यहाँ ब्याह किया। हम कुछ उनसे भीख माँगने गये थे?

बेटा—उनको अगर लड़के की गरज थी, तो हमें धन और कन्या दोनों की गरज थी।

माँ—यहाँ के बड़े-बड़े रईस हमसे नाता करने को मुँह फैलाये हुए थे।

बेटा—इसीलिए कि हमने रईसों का स्वाँग बना रखा है। घर की असली हालत खुल जाय, तो कोई बात भी न पूछे!

माँ—तो तुम्हारे ससुरालवाले ऐसे कहाँ के रईस हैं। इधर जरा वकालत चल गयी, तो रईस हो गये, नहीं तो तुम्हारे ससुर के बाप मेरे सामने चपरास-गीरी करते थे। और लड़की का यह दिमाग कि खाना पकाने से सिर में दर्द होता है। अच्छे-अच्छे घरों की लड़कियाँ गरीबों के घर आती हैं और घर की हालत देखकर वैसा ही बर्ताव करती हैं। यह नहीं कि बैठी अपने भाग्य को कोसा करें। इस छोकरी ने हमारे घर को अपना समझा ही नहीं।

बेटा—जब तुम समझने भी दो। जिस घर में घुड़कियों, गालियों और कटुताओं के सिवा और कुछ न मिले, उसे अपना घर कौन समझे? घर तो वह है, जहाँ स्नेह और प्यार मिले। कोई लड़की डोली से उतरते ही सास को अपनी माँ नहीं समझ सकती। माँ तभी समझेगी, जब सास पहले उसके साथ माँ का-सा बर्ताव करे; बल्कि अपनी लड़की से ज्यादा प्रिय समझे।

माँ—अच्छा, अब चुप रहो। जी न जलाओ। यह जमाना ही ऐसा है कि लड़कों ने स्त्री का मुँह देखा और उसके गुलाम हुए। ये सब न-जाने कौन-सा मंतर सीखकर आती हैं। यह बहू-बेटी के लच्छन हैं कि पहर दिन चढ़े सोकर उठें? ऐसी कुलच्छनी बहू का तो मुँह न देखे।

बेटा—मैं भी तो देर में सोकर उठता हूँ, अम्मां। मुझे तो तुमने कभी नहीं कोसा।

माँ—तुम हर बात में उससे अपनी बराबरी करते हो?

बेटा—जो उसके साथ घोर अन्याय है; क्योंकि जब तक वह इस घर को अपना नहीं समझती, तब तक उसकी हैसियत मेहमान की है, और मेहमान की हम खातिर करते हैं, उसके ऐब नहीं देखते।

माँ—ईश्वर न करे कि किसी की ऐसी बहू मिले!

बेटा—तो वह तुम्हारे घर में रह चुकी।

माँ—क्या संसार में औरतों की कमी है?

बेटा—औरतों की कमी तो नहीं; मगर देवियों की कमी जरूर है।

माँ—नौज ऐसी औरत। सोने लगती है, तो बच्चा चाहे रोते रोते बेदम

हो जाय, मिनकती तक नहीं। फूल-सा बच्चा लेकर मैके गयी थी, तीन महीने में लौटी, तो बच्चा आधा भी नहीं है।

बेटा—तो क्या मैं यह मान लूँ कि तुम्हें उसके लड़के से जितना प्रेम है, उतना उसे नहीं है? यह तो प्रकृति के नियम के विरुद्ध है। और मान लो, वह निरमोहिन ही है, तो यह उसका दोष है। तुम क्यों उसकी जिम्मेदारी अपने सिर लेती हो? उसे पूरी स्वतन्त्रता है, जैसे चाहे अपने बच्चे को पाले, अगर वह तुमसे कोई सलाह पूछे, तो प्रसन्न-मुख से दे दो, न पूछे तो समझ लो, उसे तुम्हारी मदद की जरूरत नहीं है। सभी माताएँ अपने बच्चे को प्यार करती हैं और वह अपवाद नहीं हो सकती।

माँ—तो मैं सब कुछ देखूँ, मुँह न खोलूँ? घर में आग लगते देखूँ और चुपचाप मुँह में कालिख लगाये खड़ी रहूँ!

बेटा—तुम इस घर को जल्द छोड़नेवाली हो, उसे बहुत दिन रहना है। घर की हानि-लाभ की जितनी चिन्ता उसे हो सकती है, तुम्हें नहीं हो सकती। फिर मैं कर ही क्या सकता हूँ? ज्यादा-से-ज्यादा उसे डाँट बता सकता हूँ; लेकिन वह डाँट की परवाह न करे और तुर्की-बतुर्की जवाब दे, तो मेरे पास ऐसा कौन-सा साधन है, जिससे मैं उसे ताड़ना दे सकूँ?

माँ—तुम दो दिन न बोलो, तो देवता सीधे हो जायँ, सामने नाक रगड़े।

बेटा—मुझे इसका विश्वास नहीं है। मैं उससे न बोलूँगा, वह भी मुझसे न बोलेगी। ज्यादा पीछे पड़ूँगा, तो अपने घर चली जायगी।

माँ—ईश्वर वह दिन लाये। मैं तुम्हारे लिए नयी बहू लाऊँ।

बेटा—सम्भव है, वह इसकी भी चची हो।

[सहसा बहू आकर खड़ी हो जाती है। माँ और बेटा दोनों स्तम्भित हो जाते हैं, मानो कोई बम गोला आ गिरा हो। रूपवती, नाजुक-मिजाज, गर्वीली रमणी है, जो मानो शासन करने के लिए ही बनी है। कपोल तमतमाये हुए हैं; पर अधरों पर विष भरी मुसकान है और आँखों में व्यंग्य-मिला परिहास।]

माँ—(अपनी झेंप छिपाकर) तुम्हें कौन बुलाने गया था?

बहू—क्यों यहाँ जो तमाशा हो रहा है, उसका आनन्द मैं न उठाऊँ!

बेटा—माँ-बेटे के बीच में तुम्हें दखल देने का कोई हक नहीं।

(बहू की मुद्रा सहसा कठोर हो जाती है।)

बहू—अच्छा, आप जबान बन्द रखिए। जो पति अपनी स्त्री की निन्दा सुनता रहे, वह पति बनने के योग्य नहीं। वह पति-धर्म का क ख ग भी नहीं जानता। मुझसे अगर कोई तुम्हारी बुराई करता, चाहे वह मेरी प्यारी माँ ही क्यों न होती, तो मैं उसकी जबान पकड़ लेती। तुम मेरे घर जाते हो, तो वहाँ तो जिसे देखती हूँ, तुम्हारी प्रशंसा ही करता है। छोटे से बड़े तक गुलामों की तरह दौड़ते फिरते हैं। अगर उनके बस में हो, तो तुम्हारे लिए स्वर्ग के तारे तोड़ लायें और उसका जवाब मुझे यहाँ यह मिलता है कि बात-बात पर ताने-मेहने, तिरस्कार-बहिष्कार। मेरे घर तो तुमसे कोई नहीं कहता कि तुम देर में क्यों उठे, तुमने अमुक महोदय को सलाम क्यों नहीं किया, अमुक के चरणों पर सिर क्यों नहीं पटका? मेरे बाबूजी कभी गवारा न करेंगे कि तुम उनकी देह पर मुक्कियाँ लगाओ, या उनकी धोती धोओ, या उन्हें खाना पका कर खिलाओ। मेरे साथ यहाँ यह बर्ताव क्यों? मैं यहाँ लौंडी बन कर नहीं आयी हूँ। तुम्हारी जीवन-संगिनी बन कर आयी हूँ। मगर जीवन-संगिनी का यह अर्थ तो नहीं कि तुम मेरे ऊपर सवार होकर मुझे चलाओ। यह मेरा काम है कि जिस तरह चाहूँ, तुम्हारे साथ अपने कर्त्तव्य का पालन करूँ। उसकी प्रेरणा मेरी आत्मा से होनी चाहिए, ताड़ना या तिरस्कार से नहीं। अगर कोई मुझे कुछ सिखाना चाहता है, तो माँ की तरह प्रेम से सिखाये, मैं सीखूँगी; लेकिन कोई जबरदस्ती, मेरी छाती पर चढ़ कर, अमृत भी मेरे कण्ठ में ठूँसना चाहे तो मैं ओठ बन्द कर लूँगी। मैं अब कब की इस घर को अपना समझ चुकी होती; अपनी सेवा और कर्तव्य का निश्चय कर चुकी होती; मगर यहाँ तो हर घड़ी, हर पल, मेरी देह में सुई चुभाकर मुझे याद दिलाया जाता है कि तू इस घर की लौंडी है, तेरा इस घर से कोई नाता नहीं, तू सिर्फ गुलामी करने के लिए यहाँ लायी गयी है, और मेरा रक्त खौल कर रह जाता है। अगर यही हाल रहा, तो एक दिन तुम दोनों मेरी जान लेकर रहोगे।

माँ—सुन रहे हो अपनी चहेती रानी की बातें? वह यहाँ लौंडी बन कर

नहीं, रानी बन कर आयी है, हम दोनों उसकी टहल करने के लिए हैं, उसका काम हमारे ऊपर शासन करना है, उसे कोई कुछ काम करने कौन कहे, मैं खुद मरा करूँ। और तुम उसकी बातें कान लगा कर सुनते हो। तुम्हारा मुँह कभी नहीं खुलता कि उसे डाँटो या समझाओ। थरथर काँपते रहते हो।

बेटा—अच्छा अम्माँ, ठंढे दिल से सोचो। मैं इसकी बातें न सुनूँ, तो कौन सुने? क्या तुम इसके साथ इतनी हमदर्दी भी नहीं देखना चाहतीं? आखिर बाबूजी जीवित थे, तब वह तुम्हारी बातें सुनते थे या नहीं? तुम्हें प्यार करते थे या नहीं? फिर मैं अपनी बीबी की बातें सुनता हूँ तो कौन-सी नयी बात करता हूँ, और इसमें तुम्हारे बुरा मानने की कौन बात है?

माँ—हाय बेटा, तुम अपनी स्त्री के सामने मेरा अपमान कर रहे हो! इसी दिन के लिए मैंने तुम्हें पाल-पोस कर बड़ा किया था? क्यों मेरी छाती नहीं फट जाती?

[वह आँसू पोंछती, आपे से बाहर, कमरे से निकल जाती है। स्त्री-पुरुष दोनों कौतुक-भरी आँखों से उसे देखते हैं, जो बहुत जल्द हमदर्दी में बदल जाती है।]

पति—माँ का हृदय............

स्त्री—माँ का हृदय नहीं, स्त्री का हृदय............

पति—अर्थात्?

स्त्री—जो अन्त तक पुरुष का सहारा चाहता है, स्नेह चाहता है और उस पर किसी दूसरी स्त्री का असर देखकर ईर्ष्या से जल उठता है।

पति—क्या पगली की सी बातें करती हो?

स्त्री—यथार्थ कहती हूँ।

पति—तुम्हारा दृष्टिकोण बिलकुल गलत है और इसका तजरबा तुम्हें तब होगा, जब तुम खुद सास होगी।

स्त्री—मुझे सास बनना ही नहीं है। लड़का अपने हाथ-पाँव का हो जाय, ब्याह करे और अपना घर सँभाले। मुझे बहू से क्या सरोकार?

पति—तुम्हें यह अरमान बिलकुल नहीं है कि तुम्हारा लड़का योग्य हो, तुम्हारी बहू लक्ष्मी हो, और दोनों का जीवन सुख से कटे?

स्त्री—क्या मैं माँ नहीं हूँ?

पति—माँ और सास में क्या कोई अन्तर है?

स्त्री—उतना ही जितना जमीन और आसमान में है! माँ प्यार करती है, सास शासन करती है। कितनी ही दयालु, सहनशील सतोगुणी स्त्री हो, सास बनते ही मानो ब्यायी हुई गाय हो जाती है। जिसे पुत्र से जितना ही ज्यादा प्रेम है, वह बहू पर उतनी ही निर्दयता से शासन करती है। मुझे भी अपने ऊपर विश्वास नहीं है। अधिकार पाकर किसे मद नहीं हो जाता? मैंने तय कर लिया है, सास बनूँगी ही नहीं। औरत की गुलामी सासों के बल पर कायम है। जिस दिन सासें न रहेंगी, औरत की गुलामी का अन्त हो जायगा।

पति—मेरा खायल है, तुम जरा भी सहज बुद्धि से काम लो, तो तुम अम्माँ पर भी शासन कर सकती हो। तुमने हमारी बातें कुछ सुनीं?

स्त्री—बिना सुने ही मैंने समझ लिया कि क्या बातें हो रही होंगी। वही बहू का रोना............

पति—नहीं, नहीं। तुमने बिलकुल गलत समझा। अम्माँ के मिजाज में आज मैंने विस्मयकारी अन्तर देखा, बिलकुल अभूतपूर्व। आज वह जैसे अपनी कटुताओं पर लज्जित हो रही थीं। हाँ, प्रत्यक्ष रूप से नहीं, संकेत रूप से। अब तक वह तुमसे इसलिए नाराज रहती थीं कि तुम देर में उठती हो। अब शायद उन्हें यह चिन्ता हो रही है कि कहीं सबेरे उठने से तुम्हें ठण्ढ न लग जाय। तुम्हारे लिए पानी गर्म करने को कह रही थीं।

स्त्री—(प्रसन्न होकर) सच!

पति—हाँ, मुझे तो सुनकर आश्चर्य हुआ।

स्त्री—तो अब मैं मुँह-अँधेरे उठूँगी। ऐसी ठण्ढ क्या लग जायगी; लेकिन तुम मुझे चकमा तो नहीं दे रहे हो?

पति—अब इस बदगुमानी का क्या इलाज। आदमी को कभी-कभी अपने अन्याय पर खेद तो होता ही है।

स्त्री—तुम्हारे मुँह में घी-शक्कर। अब मैं गजरदम उठूँगी। वह बेचारी मेरे लिए क्यों पानी गर्म करेंगी? मैं खुद गर्म कर लूँगी। आदमी करना चाहे तो क्या नहीं कर सकता?

पति—मुझे उनकी बात सुन-सुनकर ऐसा लगता था, जैसे किसी दैवी आदेश ने उनकी आत्मा को जगा दिया हो। तुम्हारे अल्हड़पन और चपलता पर कितना भन्नाती हैं। चाहती थीं कि घर में कोई बड़ी-बूढ़ी आ जाय, तो तुम उसके चरण छुओ; लेकिन शायद अब उन्हें मालूम होने लगा है कि इस उम्र में सभी थोड़े बहुत अल्हड़ होते हैं। शायद उन्हें अपनी जवानी याद आ रही है। कहती थीं, यही तो शौक-सिंगार, पहनने-ओढ़ने, खाने-खेलने के दिन थे। बुढ़ियों का तो दिन-भर ताँता लगा रहता है, कोई कहाँ तक उनके चरण छुए और क्यों छुए? ऐसी कहाँ की बड़ी देवियाँ हैं।

स्त्री—मुझे तो हर्षोन्माद हुआ चाहता है।

पति—मुझे तो विश्वास ही न आता था। स्वप्न देखने का सन्देह हो रहा था।

स्त्री—अब आयी हैं राह पर।

पति—कोई दैवी प्रेरणा समझो।

स्त्री—मैं कल से ठेठ बहू बन जाऊँगी। किसी को खबर भी न होगी कि कब अपना मेक-अप करती हूँ। सिनेमा के लिए भी सप्ताह में एक दिन काफी है। बुढ़ियों के पाँव छू लेने में ही क्या हरज है? वे देवियाँ न सही, चुड़ैलें ही सही; मुझे आशीर्वाद तो देंगी, मेरा गुण तो गायेंगी।

पति—सिनेमा का तो उन्होंने नाम भी नहीं लिया।

स्त्री—तुमको जो इसका शौक है। अब तुम्हें भी न जाने दूँगी।

पति—लेकिन सोचो, तुमने कितनी ऊँची शिक्षा पायी है, किस कुल की हो, इन खूसट बुढ़ियों के पाँव पर सिर रखना तुम्हें बिलकुल शोभा न देगा।

स्त्री—तो क्या ऊँची शिक्षा के यह मानी हैं कि हम दूसरों को नीचा समझें? बुड्ढे कितने ही मूर्ख हों; लेकिन दुनिया का तजरबा तो रखते हैं। कुल की प्रतिष्ठा भी नम्रता और सद्व्यवहार से होती है, हेकड़ी और रुखाई से नहीं।

पति—मुझे तो यही ताज्जुब होता है कि इतनी जल्द इनकी काया-पलट कैसे हो गयी। अब इन्हें बहुओं का सास के पाँव दबाना या उनकी साड़ी धोना, या उनकी देह में मुक्कियाँ लगाना बुरा लगने लगा है। कहती थीं, बहू कोई लौंडी थोड़े ही है कि बैठी सास का पाँव दबाये।

स्त्री—मेरी कसम?

पति—हाँ जी, सच कहता हूँ। और तो और, अब वह तुम्हें खाना भी न पकाने देंगी। कहती थीं, जब बहू के सिर में दर्द होता है, तो क्यों उसे सताया जाय? कोई महाराज रख लो।

स्त्री—(फूली न समाकर) मैं तो आकाश में उड़ी जा रही हूँ। ऐसी सास के तो चरण धो-धोकर पियें; मगर तुमने पूछा नहीं, अब तक तुम क्यों उसे मार-मारकर हकीम बनाने पर तुली रहती थी।

पति—पूछा क्यों नहीं, भला मैं छोड़नेवाला था। बोलीं, मैं अच्छी हो गयी थी, मैंने हमेशा खाना पकाया है, फिर वह क्यों न पकाये। लेकिन अब उनकी समझ में आया है कि वह निर्धन बाप की बेटी थीं, तुम सम्पन्न कुल की कन्या हो।

स्त्री—अम्माँजी दिल की साफ हैं।

स्त्री—इसे मैं क्षमा के योग्य समझती हूँ। जिस जल-वायु में हम पलते हैं, उसे एकबारगी नहीं बदल सकते। जिन रूढ़ियों और परम्पराओं में उनका जीवन बीता है, उन्हें तुरन्त त्याग देना उनके लिए कठिन है। वह क्या, कोई भी नहीं छोड़ सकता। वह तो फिर भी बहुत उदार हैं। तुम अभी महाराज मत रखो। ख्वामख्वाह जेरबार क्यों होगे, जब तरक्की हो जाय, तो महाराज रख लेना। अभी मैं खुद पका लिया करूँगी। तीन-चार प्राणियों का खाना ही क्या। मेरी जात से कुछ अम्माँ को आराम मिले। मैं जानती हूँ सब कुछ; लेकिन कोई रोब जमाना चाहे, तो मुझसे बुरा कोई नहीं।

पति—मगर यह तो मुझे बुरा लगेगा कि तुम रात को अम्माँ के पाँव दबाने बैठो।

स्त्री—बुरा लगने की कौन बात है, जब उन्हें मेरा इतना ख्याल है, तो मुझे भी उनका लिहाज करना ही चाहिए। जिस दिन मैं उनके पाँव दबाने बैठूँगी, वह मुझपर प्राण देने लगेंगी। आखिर बहू बेटे का कुछ सुख उन्हें भी तो हो। बड़ों की सेवा करने में हेठी नहीं होती। बुरा जब लगता है, जब वह शासन करते हैं, और अम्माँ मुझसे पाँव दबवायेंगी थोड़े ही। सेंत का यश मिलेगा।

पति—अब तो अम्माँ को तुम्हारी फजूलखर्ची भी बुरी नहीं लगती। कहती थीं, रुपये-पैसे बहू के हाथ में दे दिया करो।

स्त्री—चिढ़कर तो नहीं कहती थीं?

पति—नहीं-नहीं, प्रेम से कह रही थीं। उन्हें अब भय हो रहा है, कि उनके हाथ में पैसे रहने से तुम्हें असुविधा होती होगी। तुम बार-बार उनसे माँगते लजाती भी होगी और डरती भी होगी, एवं तुम्हें अपनी जरूरतों को रोकना पड़ता होगा।

स्त्री—ना भैया, मैं यह जंजाल अभी अपने सिर न लूँगी। तुम्हारी थोड़ी-सी तो आमदनी है, कहीं जल्दी से खर्च हो जाय, तो महीना कटना मुश्किल हो जाय। थोड़े में निर्वाह करने की विद्या उन्हीं को आती है। मेरी ऐसी जरूरतें ही क्या हैं? मैं तो केवल अम्माँजी को चिढ़ाने के लिए उनसे बार-बार रुपये माँगती थी। मेरे पास तो खुद सौ-पचास रुपये पड़े रहते हैं। बाबूजी का पत्र आता है, तो उसमें दस-बीस के नोट जरूर होते हैं; लेकिन अब मुझे हाथ रोकना पड़ेगा। आखिर बाबूजी कब तक देते चले जायँगे और यह कौन-सी अच्छी बात है कि मैं हमेशा उन पर टैक्स लगाती रहूँ?

पति—देख लेना, अम्माँ अब तुम्हें कितना प्यार करती हैं।

स्त्री—तुम भी देख लेना, मैं उनकी कितनी सेवा करती हूँ।

पति—मगर शुरू तो उन्होंने किया?

स्त्री—केवल विचार में। व्यवहार में आरम्भ मेरी ही ओर से होगा। भोजन पकाने का समय आ गया, चलती हूँ। आज कोई खास चीज तो नहीं खाओगे?

पति—तुम्हारे हाथों की रूखी रोटियाँ भी पकवान का मजा देंगी।

स्त्री—अब तुम नटखटी करने लगे।

———

कानूनी कुमार

मि० कानूनी कुमार, एम० एल० ए० अपने ऑफिस में समाचार-पत्रों, पत्रिकाओं और रिपोर्टों का एक ढेर लिए बैठे हैं। देश की चिन्ताओं से उनकी देह स्थूल हो गयी है; सदैव देशोद्धार की फिक्र में पड़े रहते हैं। सामने पार्क है। उसमें कई लड़के खेल रहे हैं। कुछ परदेवाली स्त्रियाँ भी हैं, फेंसिंग के सामने बहुत से भिखमंगे बैठे हुए हैं, एक चायवाला एम वृक्ष के नीचे चाय बेच रहा है।

कानूनी कुमार—(आप-ही-आप) देश की दशा कितनी खराब होती चली जाती है। गवर्नमेंट कुछ नहीं करती। बस, दावतें खाना और मौज उड़ाना उसका काम है। (पार्क की ओर देखकर) आह! यह कोमल कुमार सिगरेट पी रहे हैं। शोक! महाशोक!! कोई कुछ नहीं कहता, कोई इसके रोकने की कोशिश भी नहीं करता। तम्बाकू कितनी जहरीली चीज है, बालकों को इससे कितनी हानि होती है, यह कोई नहीं जानता। (तम्बाकू की रिपोर्ट देखकर) ओफ! रोंगटे खड़े हो जाते हैं। जितने बालक अपराधी होते हैं, उनमें ७५ प्रति सैकड़े सिगरेट बाज होते हैं। बड़ी भयंकर दशा है। हम क्या करें! लाख स्पीचें दो, कोई सुनता ही नहीं। इसको कानून से रोकना चाहिए, नहीं तो अनर्थ हो जायगा। (कागज पर नोट करता है) तम्बाकू-बहिष्कार-बिल पेश करूँगा। कौंसिल खुलते ही यह बिल पेश कर देना चाहिए।

(एक क्षण के बाद फिर पार्क की ओर ताकता है, और परदेदार महिलाओं को घास पर बैठे देखकर लम्बी साँस लेता है)

गजब है, गजब है; कितना घोर अन्याय! कितना पाशविक व्यवहार!! यह कोमलांगी सुन्दरियाँ चादर में लिपटी हुई कितनी भद्दी, कितनी फूहड़ मालूम होती हैं। अभी तो देश का यह हाल हो रहा है। (रिपोर्ट देखकर) स्त्रियों की मृत्यु-संख्या बढ़ रही है। तपेदिक उछलता चला आता है, प्रसूत की बीमारी आँधी की तरह चढ़ी आती है, और हम हैं कि आँखें बन्द किये पड़े हैं। बहुत जल्द ऋषियों की यह भूमि, यह वीर-प्रसविनी जननी रसातल को चली जायगी, इसका कहीं निशान भी न रहेगा। गवर्नमेंट को क्या फिक्र! लोग कितने पाषाण हो गये हैं। आँखों के सामने यह अत्याचार देखते हैं, और

जरा भी नहीं चौंकते। यह मृत्यु का शैथिल्य है। यहाँ भी कानून की जरूरत है। एक ऐसा कानून बनना चाहिए, जिससे कोई स्त्री परदे में न रह सके। अब समय आ गया है कि इस विषय में सरकार कदम बढ़ावे। कानून की मदद के बगैर कोई सुधार नहीं हो सकता, और यहाँ कानूनी मदद की जितनी जरूरत है, उतनी और कहाँ हो सकती है। माताओं पर देश का भविष्य अवलम्बित है। परदा-हटाव-बिल पेश होना चाहिए। जानता हूँ बड़ा विरोध होगा; लेकिन गवर्नमेंट को साहस से काम लेना चाहिए, ऐसे नपुंसक विरोध के भय से उद्धार के कार्य में बाधा नहीं पड़नी चाहिए। (कागज पर नोट करता है) यह बिल भी असेंबली के खुलते ही पेश कर देना होगा। बहुत विलम्ब हो चुका, अब विलम्ब की गुञ्जाइश नहीं है। वरना मरीज का अन्त हो जायगा।

(मसौदा बनाने लगता है—हेतु और उद्देश्य—....)

सहसा एक भिक्षुक सामने आकर पुकारता है—जय हो सरकार की, लक्ष्मी फूलें-फलें,....

कानूनी—हट जाओ, यू सुअर, कोई काम क्यों नहीं करता ?

भिक्षुक—बड़ा धर्म होगा सरकार, मारे भूख के आँखों-तले अँधेरा....

कानूनी—चुप रहो सुअर; हट जाओ सामने से, अभी निकल जाओ, बहुत दूर निकल जाओ।

(मसौदा छोड़कर फिर आप-ही-आप)

यह ऋषियों की भूमि आज भिक्षुकों की भूमि हो रही है। जहाँ देखिए, वहाँ रेवड़-के-रेवड़ और दल-के-दल भिखारी ! यह गवर्नमेण्ट की लापरवाही की बरकत है। इंगलैण्ड में कोई भिक्षुक भीख नहीं माँग सकता। पुलिस पकड़कर काल-कोठरी में बन्द कर दे। किसी सभ्य देश में इतने भिखमंगे नहीं हैं। यह पराधीन गुलाम भारत है, जहाँ ऐसी बातें इस बीसवीं सदी भी सम्भव हैं। उफ ! कितना शक्ति का अपव्यय हो रहा है (रिपोर्ट निकालकर) ओह ! ५० लाख ! ५० लाख आदमी केवल भिक्षा माँगकर गुजर करते हैं और क्या ठीक है कि संख्या इसकी दुगुनी न हो। यह पेशा लिखाना कौन पसन्द करता है। एक करोड़ से कम भिखारी इस देश में नहीं हैं। यह तो भिखारियों की बात हुई, जो द्वार-द्वार झोली लिये घूमते हैं। इसके उप-

रांत टीकाधारी, कोपानधारी और जटाधारी समुदाय भी तो हैं, जिनकी संख्या कम से-कम दो करोड़ होगी। जिस देश में इतने हरामखोर, मुफ्त का माल उड़ाने वाले, दूसरों की कमाई पर मोटे होने वाले प्राणी हों, उसकी दशा क्यों न इतनी हीन हो। आश्चर्य यही है कि अब तक यह देश जीवित कैसे है ! (नोट करता है) एक बिल की सख्त जरूरत है, तुरन्त पेश करना चाहिए—नाम हो 'भिखमङ्गा-बहिष्कार-बिल !' खूब जूतियाँ चलेंगी, धर्म के सूत्रधार खूब नाचेंगे, खूब गालियाँ देंगे, गवर्नमेण्ट भी कन्नी काटेगी; मगर सुधार का मार्ग तो कंटकाकीर्ण है ही। तीनों बिल मेरे ही नाम से हों, फिर देखिए, कैसी खलबली मचती है।

(आवाज आती है—चाय गरम ! चाय गरम !! मगर ग्राहकों की संख्या बहुत कम है। कानूनी कुमार का ध्यान चायवाले की ओर आकर्षित हो जाता है।)

कानूनी (आप-ही-आप चायवाले की दूकान पर एक भी ग्राहक नहीं, कैसा मूर्ख देश है ! इतनी बलवर्द्धक वस्तु और ग्राहक कोई नहीं ! सभ्य देशों में पानी की जगह चाय पी जाती है। (रिपोर्ट देखकर) इंग्लैंण्ड में पाँच करोड़ पौण्ड की चाय जाती है। इंग्लैण्ड वाले मूर्ख नहीं हैं। उनका आज संसार पर आधिपत्य है। इसमें चाय का कितना बड़ा भाग है, कौन इसका अनुमान कर सकता है ? यहाँ बेचारा चायवाला खड़ा है, और कोई उसके पास नहीं फटकता। चीनवाले चाय पी-पीकर स्वाधीन हो गये; मगर हम चाय न पियेंगे। क्या अकल है। गवर्नमेण्ट का सारा दोष है। कीटों से भरे हुए दूध के लिए इतना शोर मचता है; मगर चाय को कोई नहीं पूछता; जो कीटों से खाली, उत्तेजक और पुष्टिकारक है ! सारे देश की मति मारी गयी है। (नोट करता है) गवर्नमेण्ट से प्रश्न करना चाहिए। असेंबली खुलते ही प्रश्नों का ताँता बाँध दूँगा।

प्रश्न—क्या गवर्नमेंट बतायेगी कि गत पाँच सालों में भारतवर्ष में चाय की खपत कितनी बढ़ी है; और उसका सर्वसाधारण में प्रचार करने के लिए गवर्नमेंट ने क्या कदम लिए हैं ?

(एक रमणी का प्रवेश। कटे हुए केश; आड़ी माँग, पारसी रेशमी साड़ी,

कलाई पर घड़ी; आँखों पर ऐनक, पाँव में ऊँची एड़ी का लेडी शू, हाथ में एक बटुवा लटकाये हुए साड़ी में ब्रूच है, गले में मोतियों का हार।

कानूनी—(हाथ बढ़ाकर) हल्लो मिसेज़ बोस! आप खूब आयीं, कहिए, किधर की सैर हो रही है? अबकी तो 'आलोक' में आपकी कविता बड़ी सुन्दर थी। मैं तो पढ़कर मस्त हो गया। इस नन्हें-से हृदय में इतने भाव कहाँ से आ जाते हैं, मुझे आश्चर्य होता है। शब्द-विन्यास की तो आप रानी हैं। ऐसे-ऐसे चोट करने वाले भाव आपको कैसे सूझ जाते हैं?

मिसेज़ बोस—दिल जलता है, तो उसमें आप-से-आप धुएँ के बादल निकलते हैं। जब तक स्त्री-समाज पर पुरुषों का यह अत्याचार रहेगा, ऐसे भावों की कमी न रहेगी।

कानूनी—क्या इधर कोई नयी बात हो गयी?

बोस—रोज ही तो होती रहती है। मेरे लिए डॉक्टर बोस की आज्ञा नहीं की किसी से मिलने जाओ, या कहीं सैर करने जाओ। अबकी कैसी गरमी पड़ी है कि सारा रक्त जल गया; पर मैं पहाड़ों पर न जा सकी। मुझसे यह अत्याचार, यह गुलामी नहीं सही जाती।

कानूनी—डॉक्टर बोस खुद भी तो पहाड़ों पर नहीं गये।

बोस—वह न जायँ, उन्हें धन की हाय-हाय पड़ी है। मुझे क्यों अपने साथ लिये मरते हैं? वह क्लब में नहीं जाना चाहते, उनका समय रुपये उगलता है, मुझे क्यों रोकते हैं! वह खद्दर पहनें, मुझे क्यों अपने पसन्द के कपड़े पहनने से रोकते हैं! वह अपनी माता और भाइयों के गुलाम बने रहें, मुझे क्यों उनके साथ रो-रोकर दिन काटने पर मजबूर करते हैं! मुझसे यह बर्दाश्त नहीं हो सकता। अमेरिका में एक कटुवचन कहने पर सम्बन्ध-विच्छेद हो जाता है। पुरुष जरा देर से घर आया और स्त्री ने तलाक दिया। वह स्वाधीनता का देश है, वहाँ लोगों के विचार स्वाधीन हैं। यह गुलामों का देश है, यहाँ हर एक बात में उसी गुलामी की छाप है। मैं अब डॉक्टर बोस के साथ नहीं रह सकती। नाकों दम आ गया। इसका उत्तरदायित्व उन्हीं लोगों पर है जो समाज के नेता और व्यवस्थापक बनते हैं। अगर आप चाहते हैं कि स्त्रियों को गुलाम बनाकर स्वाधीन हो जायँ, तो यह अनहोनी बात है। जब तक तलाक का कानून न जारी होगा, आपका स्वराज्य आकाश-कुसुम ही रहेगा। डॉक्टर बोस को आप जानते हैं, धर्म में उनकी कितनी श्रद्धा है! खब्त कहिए। मुझे धर्म के नाम से घृणा है। इसी धर्म ने स्त्री-जाति को पुरुष की दासी बना दिया है। मेरा बस चले, तो मैं सारे धर्म की पोथियों को उठाकर परनाले में फेंक दूँ।

(मिसेज़ ऐयर का प्रवेश। गोरा रंग, ऊँचा कद, ऊँचा गाउन, गोली हाँड़ी की सी टोपी, आँखों पर ऐनक, चेहरे पर पाउडर, गालों और ओठों पर सुर्ख पेंट, रेशमी जुराबें और ऊँची एड़ी के जूते।)

कानूनी—(हाथ बढ़ाकर) हल्लो मिसेज़ ऐयर! आप खूब आयीं। कहिए, किधर की सैर हो रही है। 'आलोक' में अबकी आपका लेख अत्यन्त सुन्दर था, मैं तो पढ़कर दंग रह गया।

मिसेज़ ऐयर—(मिसेज़ बोस की ओर मुसकराकर) दंग ही तो रह गये, या कुछ किया भी। हम स्त्रियाँ अपना कलेजा निकालकर रख दें; लेकिन पुरुषों का दिल न पसीजेगा।

बोस—सत्य! बिलकुल सत्य।

ऐयर—मगर इस पुरुष-राज का बहुत जल्द अन्त हुआ जाता है। स्त्रियाँ अब कैद में नहीं रह सकतीं। मि० ऐयर की सूरत मैं नहीं देखना चाहती।

(मिसेज़ बोस मुँह फेर लेती हैं)

कानूनी—(मुसकराकर) मि० ऐयर तो खूबसूरत आदमी हैं।

लेडी ऐयर—उनकी सूरत उन्हें मुबारक रहे। मैं खूबसूरत पराधीनता नहीं चाहती, बदसूरत स्वाधीनता चाहती हूँ। वह मुझे अबकी जबरदस्ती पहाड़ पर ले गये। वहाँ की शीत मुझसे नहीं सही जाती, कितना कहा कि मुझे मत ले जाओ; मगर किसी तरह न माना। मैं किसी के पीछे-पीछे कुतिया की तरह नहीं चलना चाहती।

(मिसेज़ बोस उठकर खिड़की के पास चली जाती हैं)

कानूनी—अब मुझे मालूम हो गया कि तलाक का बिल असेम्बली में पेश करना पड़ेगा।

ऐयर—खैर, आपको मालूम तो हुआ; मगर शायद कयामत में।

कानूनी—नहीं मिसेज़ ऐयर, अबकी छुट्टियों के बाद ही यह बिल पेश होगा, और धूमधाम के साथ पेश होगा। बेशक पुरुषों का अत्याचार बढ़ रहा है। जिस प्रथा का विरोध आप दोनों महिलाएँ कर रही हैं, वह अवश्य हिन्दू-समाज के लिए घातक है। अगर हमें सभ्य बनना है, तो सभ्य देशों के पद-चिन्हों पर चलना पड़ेगा। धर्म के ठीकेदार चिल्ल-पों मचायेंगे, कोई परवाह नहीं। उनकी खबर लेना आप दोनों महिलाओं का काम होगा। ऐसा बनाना कि मुँह न दिखा सकें।

लेडी ऐयर—पेशगी धन्यवाद देती हूँ। (हाथ मिलाकर चली जाती है।)

मिसेज़ बोस—(खिड़की के पास से आकर) आज इसके घर में घी का चिराग जलेगा। यहाँ से सीधे बोस के पास गयी होगी। मैं भी जाती हूँ।

(चली जाती है)

कानूनी कुमार एक कानून की किताब उठाकर उसमें तलाक की व्यवस्था देखने लगता है, कि मि० आचार्य आते हैं। मुँह साफ़, एक आँख पर ऐनक, खाकी आधे बाँह का शर्ट, निकर, ऊनी मोजे, लम्बे बूट। पीछे एक टेरियर कुत्ता भी है।

कानूनी—हल्लो मि० आचार्य! आप खूब आये, आज किधर की सैर हो रही है। होटल का क्या हाल है।

आचार्य—कुत्ते की मौत मर रहा है। इतना बढ़िया भोजन, इतना साफ़-सुथरा मकान, ऐसी रोशनी, इतना आराम, फिर भी मेहमानों का दुर्भिक्ष। समझ में नहीं आता, अब कितना निर्ख घटाऊँ। इन दामों अलग घर में मोटा खाना भी नसीब नहीं हो सकता। उसपर सारे जमाने की झंझट, कभी नौकर का रोना, कभी दूधवाले का रोना, कभी धोबी का रोना, कभी मेहतर का रोना; यहाँ सारे जंजाल से मुक्ति हो जाती है। फिर भी आधे कमरे खाली पड़े हैं।

कानूनी—यह तो आपने बुरी खबर सुनायी।

आचार्य—पच्छिम में क्यों इतना सुख और शान्ति है, क्यों इतना प्रकाश और धन है, क्यों इतनी स्वाधीनता और बल है। इन्हीं होटलों के प्रसाद से। होटल पश्चिमी गौरव का मुख अंग है, पश्चिमी सभ्यता का प्राण है। अगर आप भारत को उन्नति के शिखर पर देखना चाहते हैं, तो होटल-जीवन का प्रचार कीजिए। इसके सिवा दूसरा उपाय नहीं है। जबतक छोटी-छोटी

घरेलू चिन्ताओं से मुक्त न हो जायँगे, आप उन्नति कर ही नहीं सकते। राजों, रईसों को अलग घरों में रहने दीजिए, वह एक की जगह दस खर्च कर सकते हैं। मध्यम श्रेणीवालों के लिए होटल के प्रचार में ही सब कुछ है। हम अपने सारे मेहमानों की फिक्र अपने सिर लेने को तैयार है, फिर भी जनता की आँखें नहीं खुलतीं। इन मूर्खों की आँखें उस वक्त तक न खुलेंगी, जब तक कानून न बन जायगा।

कानूनी—(गम्भीर भाव से) हाँ, मैं भी सोच रहा हूँ। जरूर कानून से मदद लेनी चाहिए। एक ऐसा कानून बन जाय, कि जिन लोगों की आय ५००) से कम हो, होटलों में रहें। क्यों?

आचार्या—आप अगर यह कानून बनवा दें, तो आनेवाली संतान आपको अपना मुक्तिदाता समझेगी। आप एक कदम में देश को ५०० वर्ष की मंजिल तय करा देंगे।

कानूनी—तो लो, अबकी यह कानून भी असेंबली खुलते ही पेश कर दूँगा। बड़ा शोर मचेगा। लोग देश-द्रोही और जाने क्या-क्या कहेंगे; पर इसके लिए तैयार हूँ। कितना दुःख होता है, जब लोगों को अहिर के द्वार पर लुटिया लिये खड़ा देखता हूँ। स्त्रियों का जीवन तो नरक-तुल्य हो रहा है। सुबह से दस बारह बजे रात तक घर के धन्धों से फ़ुरसत नहीं। कभी बरतन माँजो, कभी भोजन बनाओ, कभी झाड़ू लगाओ। फिर स्वास्थ्य कैसे बने, जीवन कैसे सुखी हो, सैर कैसे करें, जीवन के आमोद-प्रमोद का आनन्द कैसे उठावें, अध्ययन कैसे करें? आपने खूब कहा, एक कदम में ५०० सालों की मंजिल पूरी हुई जाती है।

आचार्या—तो अबकी बिल पेश कर दीजिएगा?

कानूनी—अवश्य!

(आचार्या हाथ मिलाकर चला जाता है)

कानूनी कुमार खिड़की के सामने खड़ा होकर 'होटल-प्रचार-बिल' का मसविदा सोच रहा है। सहसा पार्क में एक स्त्री सामने से गुजरती है। उसकी गोद में एक बच्चा है, दो बच्चे पीछे-पीछे चल रहे हैं, और उदर के उभार से मालूम होता है कि गर्भवती भी है। उसका कृश शरीर, पीला मुख और मन्द

गति देखकर अनुमान होता है कि उसका स्वास्थ्य बिगड़ा हुआ है, और इस भार का वहन करना उसे कष्टप्रद है।

कानूनी कुमार—(आप-ही-आप) इस समाज का, इस देश का और इस जीवन का सत्यानाश हो, जहाँ रमणियों को केवल बच्चा जनने की मशीन समझा जाता है। इस बेचारी को जीवन का क्या सुख! कितनी ही ऐसी बहनें इसी जंजाल में फँसकर ३०,३५ की अवस्था में, जब कि वास्तव में जीवन को सुखी होना चाहिए, रुग्ण होकर संसार-यात्रा समाप्त कर देती हैं। हा भारत! यह विपत्ति तेरे सिर से कब टलेगी? संसार में ऐसे-ऐसे पाषाण-हृदय मनुष्य पड़े हुए हैं, जिन्हें इन दुखियारियों पर जरा भी दया नहीं आती। ऐसे अन्धे, ऐसे पाषाण, ऐसे पाखंडी समाज को, जो स्त्री को अपनी वासनाओं की वेदी पर बलिदान करता है, कानून के सिवा और किस विधि से सचेत किया जाय? और कोई उपाय ही नहीं है। नर-हत्या का जो दण्ड है, वही दण्ड ऐसे मनुष्यों को मिलना चाहिए। मुबारक होगा वह दिन, जब भारत में इस नाशिनी प्रथा का अन्त हो जायगा—स्त्री का मरण, बच्चों का मरण, और जिस समाज का जीवन ऐसी सन्तानों पर आधारित हो, उसका मरण! ऐसे बद-माशों को क्यों न दण्ड दिया जाय? कितने अन्धे लोग हैं। बेकारी का यह हाल कि भर-पेट किसी को रोटियाँ नहीं मिलती, बच्चों को दूध स्वप्न में भी नहीं मिलता, और ये अन्धे हैं कि बच्चे-पर-बच्चे पैदा करते जाते हैं। 'सन्तान-निग्रह-बिल' की जितनी जरूरत है, इस देश को उतनी और किसी कानून की नहीं। असेंबली खुलते ही यह बिल पेश करूँगा। प्रलय हो जायगा, यह जानता हूँ; पर और उपाय ही क्या है? दो बच्चों से ज्यादा जिसके हों, उसे कम-से-कम पाँच वर्ष की कैद, उसमें पाँच महीने से कम काल-कोठरी न हो। जिसकी आमदनी सौ रुपये से कम हो, उसे संतानोत्पत्ति का अधिकार ही न हो। (मन में बिल के बाद की अवस्था का आनन्द लेकर) कितना सुखमय जीवन हो जायगा। हाँ, एक दफा यह भी रहे कि एक संतान के बाद कम-से-कम सात वर्ष तक दूसरी सन्तान न आने पावे। तब इस देश में सुख और सन्तोष का साम्राज्य होगा, तब स्त्रियों और बच्चों के मुँह पर खून की सुर्खी नजर आयेगी, तब मजबूत हाथ-पाँव और मजबूत दिल और जिगर के पुरुष उत्पन्न होंगे।

(मिसेज़ कानूनी कुमार का प्रवेश)

कानूनी कुमार जल्दी से रिपोर्टों और पत्रों को समेट देता है, और एक उपन्यास खोलकर बैठ जाता है।

मिसेज़—क्या कर रहे हो? वही धुन!

कानूनी—एक उपन्यास पढ़ रहा हूँ।

मिसेज़—तुम सारी दुनिया के लिए कानून बनाते हो, एक कानून मेरे लिए भी बना दो। इससे देश का जितना बड़ा उपकार होगा, उतना और किसी कानून से न होगा। तुम्हारा नाम अमर हो जायगा, और घर-घर तुम्हारी पूजा होगी!

कानूनी—अगर तुम्हारा ख्याल है कि मैं नाम और यश के लिए देश की सेवा कर रहा हूँ, तो मुझे यही कहना पड़ेगा कि तुमने मुझे रत्ती-भर भी नहीं समझा।

मिसेज़—नाम के लिए काम कोई बुरा काम नहीं है, और तुम्हें यश की आकांक्षा हो, तो मैं उसकी निन्दा न करूँगी, भूलकर भी नहीं। मैं तुम्हें एक ही ऐसी तदबीर बता दूँगी, जिससे तुम्हें इतना यश मिलेगा कि तुम ऊब जाओगे। फूलों की इतनी वर्षा होगी कि तुम उसके नीचे दब जाओगे। गले में इतने हार पड़ेंगे कि तुम गरदन सीधी न कर सकोगे।

कानूनी—(उत्सुकता को छिपाकर)—कोइ मजाक की बात होगी। देखो मित्री, काम करनेवाले आदमी के लिए इससे बड़ी दूसरी बाधा नहीं है कि उनके घरवाले उसके काम की निन्दा करते हों। मैं तुम्हारे इस व्यवहार से निराश हो जाता हूँ।

मिसेज़—तलाक का कानून तो बनाने जा रहे हो, अब क्या डर है?

कानून—फिर वही मजाक! मैं चाहता हूँ, तुम इन प्रश्नों पर गम्भीर विचार करो।

मिसेज़—मैं बहुत गम्भीर विचार करती हूँ। सच मानो। मुझे इसका दुःख है कि तुम मेरे भावों को नहीं समझते। मैं इस वक्त तुमसे जो बात कहने जा रही हूँ, उसे मैं देश की उन्नति के लिए आवश्यक ही नहीं, परमा-वश्यक समझती हूँ। मुझे इसका पक्का विश्वास है।

कानूनी—पूछने की हिम्मत तो नहीं पड़ती। (अपनी झेंप मिटाने के लिए हँसता है।)

मिसेज़—मैं तो खुद ही कहने आयी हूँ। हमारा वैवाहिक-जीवन कितना लज्जास्पद है, तुम खूब जानते हो। रात-दिन रगड़ा-झगड़ा मचा रहता है। कहीं पुरुष स्त्री पर हाथ साफ कर लेता है, कहीं स्त्री पुरुष की मूँछों के बाल नोचती है। हमेशा एक-न-एक गुल खिला ही करता है। कहीं एक मुँह फुलाये बैठा है, कहीं दूसरा घर छोड़कर भाग जाने की धमकी दे रहा है। कारण जानते हो क्या है? कभी सोचा है? पुरुषों की रसिकता और कृपणता! यही दोनों ऐब मनुष्यों के जीवन को नरक-तुल्य बनाये हुए हैं। जिधर देखो, अशान्ति है, विद्रोह है, बाधा है। साल में लाखों हत्याएँ इन्हीं बुराइयों के कारण हो जाती हैं, लाखों स्त्रियाँ पतित हो जाती है, पुरुष मद्य-सेवन करने लगते हैं, यह बात है या नहीं?

कानूनी—बहुत सी बुराइयाँ ऐसी हैं, जिन्हें कानून नहीं रोक सकता।

मिसेज़—(कहकहा मारकर) अच्छा, क्या आप भी कानून की अक्षमता स्वीकार करते हैं? मैं यह नहीं समझती थी। मैं तो कानून को ईश्वर से ज्यादा सर्वव्यापी, सर्वशक्तिमान् समझती हूँ।

कानूनी—फिर तुमने मजाक शुरू किया।

मिसेज—अच्छा, लो कान पकड़ती हूँ। अब न हँसूगी। मैंने उन बुराइयों को रोकने का एक कानून सोचा है। उसका नाम होगा—'दम्पती-सुख-शान्ति बिल'। उसकी दो मुख्य धाराएँ होंगी और कानूनी बारीकियाँ तुम ठीक कर लेना। एक धारा होगी कि पुरुष अपनी आमदनी का आधा बिना कान-पूँछ हिलाये स्त्री को दे दे; अगर न दे, तो पाँच साल कठिन कारावास और पाँच महीने काल-कोठरी। दूसरी धारा होगी, पन्द्रह से पचास तक के पुरुष घर से बाहर न निकलने पावें; अगर कोई निकले, तो दस साल कारावास और दस महीने काल-कोठरी। बोलो, मंजूर है?

कानूनी—(गम्भीर होकर) असम्भव, तुम प्रकृति को पलट देना चाहती हो। कोई पुरुष घर में कैदी बनकर रहना स्वीकार न करेगा।

मिसेज़—वह करेगा और उसका बाप करेगा। पुलिस डंडे के जोर से करायेगी। न करेगा; तो चक्की पीसनी पड़ेगी। करेगा कैसे नहीं! अपनी स्त्री को घर

की मुर्गी समझना, और दूसरी स्त्रियों के पीछे दौड़ना, क्या खालाजी का घर है! तुम अभी इस कानून को अस्वाभाविक समझते हो। मत घबड़ाओ। स्त्रियों का अधिकार होने दो। यह पहला कानून न बन जावे, तो कहना कि कोई कहता था। स्त्री एक-एक पैसे के लिए तरसे, और आप गुलछर्रे उड़ायें। दिल्लगी है! आधी आमदनी स्त्री को दे देनी पड़ेगी, जिसका उससे कोई हिसाब न पूछा जा सकेगा।

कानूनी—तुम मानव-समाज को मिट्टी का खिलौना समझती हो।

मिसेज़—कदापि नहीं। मैं यही समझती हूँ कि कानून सब कुछ कर सकता है। मनुष्य का स्वभाव भी बदल सकता है।

कानूनी—कानून यह नहीं कर सकता।

मिसेज़—कर सकता है।

कानूनी—नहीं कर सकता।

मिसेज़—कर सकता है; अगर वह जबरदस्ती लड़कों को स्कूल भेज सकता है; अगर वह जबरदस्ती विवाह की उम्र नियत कर सकता है; अगर वह जबरदस्ती बच्चों को टीका लगवा सकता है, तो वह जबरदस्ती पुरुषों को घर में बन्द भी कर सकता है, उनकी आमदनी का आधा स्त्रियों को भी दिला सकता है। तुम कहोगे, पुरुष को कष्ट होगा। जबरदस्ती जो काम कराया जाता है, उसमें करनेवाले को कष्ट होता है। तुम उस कष्ट का अनुभव नहीं करते; इसीलिए वह तुम्हें नहीं अखरता। मैं यह नहीं कहती कि सुधार जरूरी नहीं है। मैं भी शिक्षा का प्रचार चाहती हूँ, मैं भी बाल-विवाह बन्द करना चाहती हूँ, मैं भी चाहती हूँ कि बीमारियाँ न फैलें; लेकिन कानून बनाकर जबरदस्ती यह सुधार नहीं कराना चाहती। लोगों में शिक्षा और जाग्रति फैलाओ, जिसमें कानूनी भय के बगैर वह सुधार हो जाय। आपसे कुर्सी तो छोड़ी जाती नहीं, घर से निकला जाता नहीं, शहरों की विलासिता को एक दिन के लिए भी नहीं त्याग सकते और सुधार करने चले हैं आप देश का! इस तरह सुधार न होगा। हाँ, पराधीनता की बेड़ी और भी कठोर हो जायगी।

(मिसेज़ कुमार चली जाती हैं, और कानूनी कुमार अव्यवस्थित-चित्त-सा कमरे में टहलने लगता है।)

लॉटर

जल्दी से मालदार हो जाने की हवस किसे नहीं होती? उन दिनों जब लॉटरी के टिकट आये, तो मेरे दोस्त, विक्रम के पिता, चचा, अम्माँ और भाई, सभी ने एक-एक टिकट खरीद लिया। कौन जाने, किसकी तकदीर जोर करे? किसी के नाम आये, रुपया रहेगा तो घर में ही।

मगर विक्रम को सब्र न हुआ। औरों के नाम रुपये आयेंगे, फिर उसे कौन पूछता है? बहुत होगा, दस-पाँच हजार उसे दे देंगे। इतने रुपयों में उसका क्या होगा? उसकी जिन्दगी में बड़े-बड़े मंसूबे थे। पहले तो उसे सम्पूर्ण जगत् की यात्रा करनी थी, एक-एक कोने की। पीरू और ब्राजील और टिम्बकटू और होनोलूलू, ये सब उसके प्रोग्राम में थे। वह आँधी की तरह महीने-दो-महीने उड़कर लौट आनेवालों में न था। वह एक-एक स्थान में कई-कई दिन ठहरकर वहाँ के रहन-सहन, रीति-रिवाज आदि का अध्ययन करना और संसार-यात्रा का एक वृहद् ग्रंथ लिखना चाहता था। फिर उसे एक बहुत बड़ा पुस्तकालय बनवाना था, जिसमें दुनिया-भर की उत्तम रचनाएँ जमा की जायँ। पुस्तकालय के लिए वह दो लाख तक खर्च करने को तैयार था, बँगला, कार और-फर्निचर तो मामूली बातें थीं। पिता या चचा के नाम रुपये आये, तो पाँच हजार से ज्यादा का डौल नहीं, अम्माँ के नाम आये, तो बीस हजार मिल जायँगे; लेकिन भाई साहब के नाम आ गये, तो उसके हाथ धेला भी न लगेगा। वह आत्माभिमानी था। घरवालों से खैरात या पुरस्कार के रूप में कुछ लेने की बात उसे अपमान-सी लगती थी। कहा करता था—भाई, किसी के सामने हाथ फैलाने से तो किसी गड्ढे में डूब मरना अच्छा है। जब आदमी अपने लिए संसार में कोई स्थान न निकाल सके, तो यहाँ से प्रस्थान कर जाय?

वह बहुत बेकरार था। घर में लॉटरी-टिकट के लिए उसे कौन रुपये देगा और वह माँगे भी तो कैसे? उसने बहुत सोच-विचारकर कहा क्यों न हम-तुम साझे में एक टिकट ले लें!

तजवीज मुझे भी पसंद आयी। मैं उन दिनों स्कूल-मास्टर था। बीस रुपये मिलते थे। उसमें बड़ी मुश्किल से गुजर होती थी। दस रुपये का टिकट खरीदना मेरे लिए सुफेद हाथी खरीदना था। हाँ, एक महीना दूध, घी, जलपान और ऊपर के सारे खर्च तोड़कर पाँच रुपये की गुंजाइश निकल सकती थी। फिर भी जी डरता था। कहीं से कोई बालाई रकम मिल जाय, तो कुछ हिम्मत बढ़े।

विक्रम ने कहा—कहो तो अपनी अँगूठी बेच डालूँ? कह दूँगा, उँगली से फिसल पड़ी।

अँगूठी दस रुपये से कम न थी। उसमें पूरा टिकठ आ सकता था; अगर कुछ खर्च किये बिना ही टिकट में आधा-साझा हुआ जाता है, तो क्या बुरा है?

सहसा विक्रम फिर बोला—लेकिन भई, तुम्हें नकद देने पड़ेंगे। मैं पाँच रुपये नकद लिये बगैर साझा न करूँगा।

अब मुझे औचित्य का ध्यान आ गया। बोला—नहीं दोस्त, यह बुरी बात है, चोरी खुल जायगी, तो शर्मिन्दा होना पड़ेगा, और तुम्हारे साथ मुझ पर भी डाँट पड़ेगी।

आखिर यह तय हुआ कि पुरानी किताबें किसी सेकेन्ड हैंड किताबों की दूकान पर बेच डाली जायँ और उस रुपये से टिकट लिया जाय। किताबों से ज्यादा बेजरूरत हमारे पास और कोई चीज़ न थी। हम दोनों साथ ही मैट्रिक पास हुए थे और यह देखकर कि जिन्होंने डिग्रियाँ लीं, अपनी आँखें फोड़ीं, और घर के रुपये बरबाद किये, वह भी जूतियाँ चटका रहे हैं, हमने वहीं हाल्ट कर दिया। मैं स्कूल-मास्टर हो गया और विक्रम मटरगश्त करने लगा। हमारी पुरानी पुस्तकें अब दीमकों के सिवा हमारे किसी काम की न थीं। हमसे जितना चाटते बना, चाटा; उनका सत्त निकाल लिया। अब चूहे चाटें या दीमक, हमें परवाह न थी। आज हम दोनों ने उन्हें कूड़ेखाने से निकाला और झाड़-पोंछ कर एक बड़ा-सा गट्ठर बाँधा। मैं मास्टर था, किसी बुकसेलर की दूकान पर किताब बेचते हुए झेंपता था। मुझे सभी पहचानते थे; इसलिए यह खिदमत विक्रम के सुपुर्द हुई और वह आध घंटे में दस रुपये का एक नोट लिये उछलता-कूदता आ पहुँचा। मैंने उसे इतना प्रसन्न कभी न देखा था। किताबें चालीस

रुपये से कम की न थीं; पर यह दस रुपये उस वक्त हमें जैसे पड़े हुए मिले। अब टिकट में आधा साझा होगा। दस लाख की रकम मिलेगी। पाँच लाख मेरे हिस्से में आयेंगे, पाँच विक्रम के। हम अपने इसी में मगन थे।

मैंने संतोष का भाव दिखाकर कहा—पाँच लाख भी कुछ कम नहीं होते जी!

विक्रम इतना संतोषी न था। बोला—पाँच लाख क्या, हमारे लिए तो इस वक्त पाँच सौ भी बहुत है भाई; मगर जिन्दगी का प्रोग्राम तो बदलना पड़ गया। मेरी यात्रावाली स्कीम तो टल नहीं सकती। हाँ, पुस्तकालय गायब हो गया।

मैंने आपत्ति की—आखिर यात्रा में तुम दो लाख से ज्यादा तो न खर्च करोगे?

'जी नहीं, उसका बजट है साढ़े तीन लाख का। सात वर्ष का प्रोग्राम है। पचास हजार रुपये साल ही तो हुए?'

'चार हजार महीना कहो। मैं समझता हूँ, दो हजार में तुम बड़े आराम से रह सकते हो।'

विक्रम ने गर्म होकर कहा—मैं शान से रहना चाहता हूँ; भिखारियों की तरह नहीं।

'दो हजार में भी तुम शान से रह सकते हो।'

'जब तक आप अपने हिस्से में से दो लाख मुझे न दे देंगे, पुस्तकालय न बन सकेगा।'

'कोई जरूरी नहीं कि तुम्हारा पुस्तकालय शहर में बेजोड़ हो।'

'मैं तो बेजोड़ ही बनवाऊँगा।'

'इसका तुम्हें अख्तियार है; लेकिन मेरे रुपये में से तुम्हें कुछ न मिल सकेगा। मेरी जरूरतें देखो। तुम्हारे घर में काफी जायदाद हैं। तुम्हारे सिर कोई बोझ नहीं, मेरे सिर तो सारी गृहस्थी का बोझ है। दो बहनों का विवाह है, दो भाइयों की शिक्षा है, नया मकान बनवाना है। मैंने तो निश्चय कर लिया है कि सब रुपये सीधे बैंक में जमा कर दूँगा। उनके सूद से काम चलाऊँगा। कुछ ऐसी शर्तें लगा दूँगा, कि मेरे बाद भी कोई इस रकम में हाथ न लगा सके।

विक्रम ने सहानुभूति के भाव से कहा—हाँ, ऐसी दशा में तुमसे कुछ माँगना

अन्याय है। खैर, मैं ही तकलीफ उठा लूँगा; लेकिन बैंक के सूद की दर तो बहुत गिर गयी है।

हमने कई बैंकों के सूद की दर देखी, स्थायी कोष की भी, सेविंग बैंक की भी। बेशक दर बहुत कम थी। दो-ढाई रुपये सैकड़े ब्याज पर जमा करना व्यर्थ है। क्यों न लेन-देन का कारोबार शुरू किया जाय? विक्रम भी अभी यात्रा पर न जायगा। दोनों के साझे में कोठी चलेगी, जब कुछ धन जमा हो जायगा, तब वह यात्रा करेगा। लेन-देन में सूद भी अच्छा मिलेगा और अपना रोब-दाब भी रहेगा। हाँ, जबतक अच्छी जमानत न हो, किसी को रुपया न देना चाहिए, चाहे असामी कितना ही मातबर क्यों न हो। और जमानत पर रुपये दे ही क्यों? जायदाद रेहन लिखाकर रुपये देंगे। फिर तो कोई खटका न रहेगा।

यह मंजिल भी तय हुई। अब यह प्रश्न उठा कि टिकट पर किसका नाम रहे। विक्रम ने अपना नाम रखने के लिए बड़ा आग्रह किया। अगर उसका नाम न रहा, तो वह टिकट ही न लेगा। मैंने कोई उपाय न देखकर मंजूर कर लिया, और बिना किसी लिखा-पढ़ी के, जिससे आगे चलकर मुझे बड़ी परेशानी हुई।

(२)

एक-एक करके इन्तजार के दिन कटने लगे। भोर होते ही हमारी आँखें कैलेंडर पर जातीं। मेरा मकान विक्रम के मकान से मिला हुआ था। स्कूल जाने के पहले और स्कूल से आने के बाद हम दोनों साथ बैठकर अपने-अपने मंसूबे बाँधा करते और इस तरह सायँ-सायँ कि कोई सुन न ले। हम अपने टिकट खरीदने का रहस्य छिपाये रखना चाहते थे। यह रहस्य जब सत्य का रूप धारण कर लेगा, उस वक्त लोगों को कितना विस्मय होगा! उस दृश्य का नाटकीय आनन्द हम नहीं छोड़ना चाहते थे।

एक दिन बातों-बातों में विवाह का जिक्र आ गया। विक्रम ने दार्शनिक गम्भीरता से कहा—भई, शादी-वादी का जंजाल तो मैं नहीं पालना चाहता। व्यर्थ की चिंता और हाय हाय। पत्नी की नाज बरदारी में ही बहुत-से रुपये उड़ जायँगे।

मैंने इसका विरोध किया—हाँ, यह तो ठीक है; लेकिन जबतक जीवन के

सुख-दुःख का कोई साथी न हो, जीवन का आनन्द ही क्या ? मैं तो विवाहित जीवन से इतना विरक्त नहीं हूँ। हाँ, साथी ऐसा चाहता हूँ जो अन्त तक साथ रहे और ऐसा साथी पत्नी के सिवा दूसरा नहीं हो सकता ।

विक्रम जरूरत से ज्यादा तुनुकमिजाजी से बोला—खैर, अपना अपना दृष्टिकोण है। आपको बीबी मुबारक और कुत्तों की तरह उसके पीछे-पीछे चलना तथा बच्चों को संसार की सबसे बड़ी विभूति और ईश्वर की सबसे बड़ी दया समझना मुबारक। बन्दा तो आजाद रहेगा, अपने मजे से चाहा और जब चाहा उड़ गये और जब चाहा घर आ गये। यह नहीं कि हर वक्त एक चौकीदार आपके सिर पर सवार हो। जरा-सी देर हुई घर आने में और फौरन जवाब तलब हुआ—कहाँ थे अब तक ? आप कहीं बाहर निकले और फौरन सवाल हुआ—कहाँ जाते हो ? और जो कहीं दुर्भाग्य से पत्नीजी भी साथ हो गयीं, तब तो डूब मरने के सिवा आपके लिए कोई मार्ग ही नहीं रह जाता। न भैया, मुझे आपसे जरा भी सहानुभूति नहीं। बच्चे को जरा-सा जुकाम हुआ और आप बेतहाशा दौड़े चले जा रहे हैं होमियोपैथिक डाक्टर के पास। जरा उम्र खिसकी और लौंडे मनाने लगे कि कब आप प्रस्थान करें और वह गुलछर्रे उड़ायें। मौका मिला तो आपको जहर खिला दिया और मशहूर किया कि आपको कालरा हो गया था। मैं इस जंजाल में नहीं पड़ता।

कुन्ती आ गयी। वह विक्रम की छोटी बहन थी, कोई ग्यारह साल की। छठे में पढ़ती थी और बराबर फेल होती थी। बड़ी चिबिल्ली, बड़ी शोख। इतने धमाके से द्वार खोला कि हम दोनों चौंककर उठ खड़े हुए।

विक्रम ने बिगड़कर कहा—तू बड़ी शैतान है कुन्ती, किसने तुझे बुलाया यहाँ ?

कुन्ती ने खुफिया पुलिस की तरह कमरे में नजर दौड़ाकर कहा—तुम लोग हरदम यहाँ किवाड़ बन्द किये बैठे क्या बातें किया करते हो ? जब देखो, यहीं बैठे हो। न कहीं घूमने जाते हो, न तमाशा देखने; कोई जादू-मन्तर जगाते होगे !

विक्रम ने उसकी गरदन पकड़कर हिलाते हुए कहा—हाँ, एक मन्तर

जगा रहे हैं, जिसमें तुझे ऐसा दूल्हा मिले, जो रोज गिनकर पाँच हण्टर जमाये सड़ासड़।

कुन्ती उसकी पीठ पर बैठकर बोली—मैं ऐसे दूल्हे से ब्याह करूँगी, जो मेरे सामने खड़ा पूँछ हिलाता रहेगा। मैं मिठाई के दोने फेंक दूँगी और वह चाटेगा। जरा भी चीं-चपड़ करेगा, तो कान गर्म कर दूँगी। अम्माँ के लॉटरी के रुपये मिलेंगे, तो पचास हजार मुझे दे देंगी। बस, चैन करूँगी। मैं दोनों वक्त ठाकुरजी से अम्माँ के लिए प्रार्थना करती हूँ। अम्माँ कहती हैं, कुवाँरी लड़कियों की दुआ कभी निष्फल नहीं होती। मेरा मन तो कहता है, अम्माँ को जरूर रुपये मिलेंगे।

मुझे याद आया, एक बार मैं अपने ननिहाल देहात में गया था, तो सूखा पड़ा हुआ था। भादों का महीना आ गया था; मगर पानी की बूँद नहीं। सब लोगों ने चन्दा करके गाँव की सब क्वाँरी लड़कियों की दावत की थी। और उसके तीसरे ही दिन मूसलाधार वर्षा हुई थी। अवश्य ही क्वारियों की दुआ में असर होता है।

मैंने विक्रम को अर्थपूर्ण आँखों से देखा, विक्रम ने मुझे। आँखों ही में हमने सलाह कर ली और निश्चय भी कर लिया। विक्रम ने कुन्ती से कहा—अच्छा, तुझसे एक बात कहें, किसी से कहेगी तो नहीं ? नहीं, तू तो बड़ी अच्छी लड़की है, किसी से न कहेगी। मैं अबकी तुझे खूब पढ़ाऊँगा और पास करा दूँगा। बात यह है कि हम दोनों ने भी लाटरी का टिकट लिया है। हम लोगों के लिए भी ईश्वर से प्रार्थना किया कर। अगर हमें रुपये मिले, तो तेरे लिए अच्छे-अच्छे गहने बनवा देंगे। सच !

कुन्ती को विश्वास न आया। हमने कसमें खायीं। वह नखरे करने लगी। जब हमने उसे सिर से पाँव तक सोने और हीरे से मढ़ देने की प्रतिज्ञा की, तब वह हमारे लिए दुआ करने पर राजी हुई।

लेकिन उसके पेट में मनों मिठाई पच सकती थी, वह जरा-सी बात न पची। सीधे अन्दर भागी और एक क्षण में सारे घर में वह खबर फैल गयी। अब जिसे देखिए, विक्रम को डाँट रहा है, अम्माँ भी, चचा भी, पिता भी—केवल विक्रम की शुभ-कामना से या और किसी भाव से, कौन जाने—बैठे-

बैठे तुम्हें हिमाकत ही सूझती है। रुपये लेकर पानी में फेंक दिये। घर में इतने आदमियों ने तो टिकट लिया ही था, तुम्हें लेने की क्या जरूरत थी? क्या तुम्हें उसमें से कुछ न मिलते? और तुम भी मास्टर साहब, बिलकुल घोंघा हो। लड़के को अच्छी बातें क्या सिखाओगे, उसे और चौपट किये डालते हो।

विक्रम तो लाड़ला बेटा था। उसे और क्या कहते। कहीं रूठकर एक-दो जून खाना न खाये, तो आफत ही आ जाय। मुझपर सारा गुस्सा उतरा। इसकी सोहबत में लड़का बिगड़ा जाता है।

'पर उपदेश कुशल बहुतेरे' वाली कहावत मेरी आँखों के सामने थी। मुझे अपने बचपन की एक घटना याद आयी। होली का दिन था। शराब की एक बोतल मँगवायी गयी थी। मेरे मामूँ साहब उन दिनों आये हुए थे। मैंने चुपके से कोठरी में जाकर गिलास में एक घूँट शराब ढाली और पी गया। अभी गला जल ही रहा था और आँखें लाल ही थीं, कि मामूँ साहब कोठरी में आ गये और मुझे मानो सेंध में गिरफ्तार कर लिया और इतना बिगड़े—इतना बिगड़े कि मेरा कलेजा सूखकर छुहारा हो गया। अम्माँ ने भी डाँटा, पिताजी ने भी डाँटा, मुझे आँसुओं से उनकी क्रोधाग्नि शान्त करनी पड़ी; और दोपहर ही को मामूँ साहब नशे से पागल होकर गाने लगे, फिर रोये, फिर अम्माँ को गालियाँ दीं, दादा के मना करने पर भी मारने दौड़े और आखिर में कय करके जमीन पर बेसुध पड़े नजर आये।

(३)

विक्रम के पिता बड़े ठाकुर साहब, और ताऊ छोटे ठाकुर साहब दोनों जड़वादी थे, पूजा-पाठ की हँसी उड़ाने वाले, पूरे नास्तिक; मगर अब दोनों बड़े निष्ठावान् और ईश्वर-भक्त हो गये थे। बड़े ठाकुर साहब तो प्रातःकाल गंगा-स्नान करने जाते और मन्दिरों के चक्कर लगाते हुए दोपहर को सारी देह में चन्दन लपेटे घर लौटते। छोटे ठाकुर साहब घर पर ही गर्म पानी से स्नान करते और गठिया से ग्रस्त होने पर भी राम-नाम लिखना शुरू कर देते। धूप निकल आने पर पार्क की ओर निकल जाते और चींटियों को आटा खिलाते। शाम होते ही दोनों भाई अपने ठाकुर-द्वारे में जा बैठते और आधी-

रात तक भागवत की कथा तन्मय होकर सुनते। विक्रम के बड़े भाई प्रकाश को साधु-महात्माओं पर अधिक विश्वास था। वह मठों और साधुओं के अखाड़ों तथा कुटियों की खाक छानते, और माताजी को तो भोर से आधीरात तक स्नान, पूजा और व्रत के सिवा दूसरा काम ही न था। इस उम्र में भी उन्हें सिंगार का शौक था; पर आजकल पूरी तपस्विनी बनी हुई थीं। लोग नाहक लालसा को बुरा कहते हैं। मैं तो समझता हूँ, हममें जो यह भक्ति-निष्ठा और धर्म-प्रेम है, वह केवल हमारी लालसा, हमारी हवस के कारण। हमारा धर्म हमारे स्वार्थ के बल पर टिका हुआ है। हवस मनुष्य के मन और बुद्धि का इतना संस्कार कर सकती है, यह मेरे लिए बिलकुल नया अनुभव था। हम दोनों भी ज्योतिषियों और पण्डितों से प्रश्न करके अपने को कभी दुखी कर लिया करते थे।

ज्यों-ज्यों लाटरी का दिन समीप आता जाता था, हमारे चित्त की शान्ति उड़ती जाती थी। हमेशा उसी ओर मन टँगा रहता। मुझे आप-ही-आप अकारण सन्देह होने लगा कि कहीं विक्रम मुझे हिस्सा देने से इन्कार कर दे, तो मैं क्या करूँगा। साफ इन्कार कर जाय कि तुमने टिकट में साझा किया ही नहीं। न कोई तहरीर है, न कोई दूसरा सबूत। सब कुछ विक्रम की नियत पर है। उसकी नीयत जरा भी डावाँडोल हुई कि मेरा काम-तमाम। कहीं फरियाद नहीं कर सकता, मुँह तक नहीं खोल सकता। अब अगर कुछ कहूँ भी तो कुछ लाभ नहीं। अगर उसकी नीयत में फितूर आ गया है तब तो वह अभी से इन्कार कर देगा; अगर नहीं आया है, तो इस सन्देह से उसे मर्मान्तक वेदना होगी। आदमी ऐसा तो नहीं है; मगर भई, दौलत पाकर ईमान सलामत रखना कठिन है। अभी तो रुपये नहीं मिले हैं। इस वक्त ईमानदार बनने में क्या खर्च होता है? परीक्षा का समय तो तब आयेगा, जब दस लाख रुपये हाथ में होंगे। मैंने अपने अन्तःकरण को टटोला—अगर टिकट मेरे नाम का होता और मुझे दस लाख मिल जाते, तो क्या मैं आधे रुपये बिना कान पूँछ हिलाये विक्रम के हवाले कर देता? कौन कह सकता है; मगर अधिक सम्भव यही था कि मैं हीले-हवाले करता, कहता—

तुमने मुझे पाँच रुपये उधार दिये थे। उसके दस ले लो, सौ ले लो और क्या करोगे; मगर नहीं, मुझसे इतनी बद-दियानती न होती।

दूसरे दिन हम दोनों अखबार देख रहे थे कि सहसा विक्रम ने कहा—कहीं हमारा टिकट निकल आये, तो मुझे अफसोस होगा कि नाहक तुमसे साझा किया!

वह सरल भाव से मुसकराया; मगर यह थी उसके आत्मा की झलक जिसे वह विनोद की आड़ में छिपाना चाहता था।

मैंने चौंककर कहा—सच! लेकिन इसी तरह मुझे भी तो अफसोस हो सकता है?

'लेकिन टिकट तो मेरे नाम का है?

'इससे क्या।'

'अच्छा, मान लो, मैं तुम्हारे साझे से इन्कार कर जाऊँ?'

मेरा खून सर्द हो गया। आँखों के सामने अँधेरा छा गया।

'मैं तुम्हें इतना बदनीयत नहीं समझता था।'

'मगर है बहुत संभव। पाँच लाख! सोचो! दिमाग चकरा जाता है!'

'तो भई, अभी से कुशल है, लिखा पढ़ी कर लो। यह संशय रहे ही क्यों?'

विक्रम ने हँसकर कहा—तुम बड़े शक्की हो यार! मैं तुम्हारी परीक्षा ले रहा था। भला, ऐसा कहीं हो सकता है? पाँच लाख क्या, पाँच करोड़ भी हों, तब भी ईश्वर चाहेगा, तो नीयत में खलल न आने दूँगा।

किन्तु मुझे उसके इन आश्वासनों पर विलकुल विश्वास न आया। मन में एक संशय पैठ गया।

मैंने कहा—यह तो मैं जानता हूँ, तुम्हारी नीयत कभी विचलित नहीं हो सकती; लेकिन लिखा-पढ़ी कर लेने में क्या हरज है?

'फजूल है।'

'फजूल ही सही।'

'तो पक्के कागज पर लिखना पड़ेगा। दस लाख की कोर्ट-फीस ही साढ़े सात हजार हो जायगी। किस भ्रम में हैं आप?

मैंने सोचा, बला से, सादी लिखा पढ़ी के बल पर कोई कानूनी कार-

वाई न कर सकूँगा। पर इन्हें लज्जित करने का, इन्हें जलील करने का, इन्हें सबके सामने बेईमान सिद्ध करने का अवसर तो मेरे हाथ आयेगा; और दुनिया में बदनामी का भय न हो, तो आदमी न-जाने क्या करे। अपमान का भय कानून के भय से किसी तरह कम क्रियाशील नहीं होती। बोला—मुझे सादे कागज पर ही विश्वास आ जायगा।

विक्रम ने लापरवाही से कहा—जिस कागज का कोई कानूनी महत्व नहीं, उसे लिखकर क्यों समय नष्ट करें?

मुझे निश्चय हो गया कि विक्रम की नीयत में अभी से फितूर आ गया। नहीं तो सादा कागज लिखने में क्या बाधा हो सकती है? बिगड़कर कहा—तुम्हारी नीयत तो अभी से खराब हो गयी।

उसने निर्लज्जता से कहा—तो क्या तुम यह साबित करना चाहते हो कि ऐसी दशा में तुम्हारी नीयत न बदलती?

मेरी नीयत इतनी कमजोर नहीं है।'

'रहने भी दो। बड़ी नीयतवाले! अच्छे-अच्छे को देखा है!'

तुम्हें इसी वक्त लेख-बद्ध होना पड़ेगा। मुझे तुम्हारे ऊपर विश्वास नहीं रहा।'

'अगर तुम्हें मेरे ऊपर विश्वास नहीं है, तो मैं भी नहीं लिखता।'

'तो क्या तुम समझते हो, तुम मेरे रुपये हजम कर जाओगे?'

'किसके रुपये और कैसे रुपये?'

'मैं कहे देता हूँ विक्रम, हमारी दोस्ती का ही अन्त न हो जायगा; बल्कि इससे कहीं भयंकर परिणाम होगा।'

हिंसा की एक ज्वाला-सी मेरे अन्दर दहक उठी।

सहसा दीवानखाने में झड़प की आवाज सुन कर मेरा ध्यान उधर चला गया। यहाँ दोनों ठाकुर बैठा करते थे। उनमें ऐसी मैत्री थी, जो आदर्श भाइयों में हो सकती है। राम और लक्ष्मण में भी इतनी ही रही होगी। झड़प की तो बात ही क्या, मैंने उनमें कभी विवाद होते भी न सुना था। बड़े ठाकुर जो कह दें, वह छोटे ठाकुर के लिए कानून था और छोटे ठाकुर की इच्छा देखकर ही बड़े ठाकुर कोई बात कहते थे। हम दोनों को आश्चर्य

हुआ। दीवानखाने के द्वार पर जाकर खड़े हो गये। दोनों भाई अपनी-अपनी कुर्सियों से उठ कर खड़े हो गये थे, एक-एक कदम आगे भी बढ़ आये थे, आँखें लाल, मुख विकृत, त्योरियाँ चढ़ी हुई, मुट्ठियाँ बँधी हुई। मालूम होता था, बस हाथ-पाई हुआ ही चाहता है।

छोटे ठाकुर ने हमें देखकर पीछे हटते हुए कहा—सम्मिलित परिवार में जो कुछ भी और कहीं से भी और किसी के नाम भी आये, वह सबका है, बराबर।

बड़े ठाकुर ने विक्रम को देख कर एक कदम और आगे बढ़ाया—हरगिज नहीं; अगर मैं कोई जुर्म करूँ, तो मैं पकड़ा जाऊँगा, सम्मिलित परिवार नहीं। मुझे सजा मिलेगी, सम्मिलित परिवार को नहीं। यह वैयक्तिक प्रश्न है।

'इसका फैसला अदालत से होगा।'

'शौक से अदालत जाइए। अगर मेरे लड़के, मेरी बीबी या मेरे नाम लॉटरी निकली, तो आपका उससे कोई सम्बन्ध न होगा, उसी तरह जैसे आपके नाम लॉटरी निकले; तो मुझसे, मेरी बीबी से या मेरे लड़के से उससे कोई सम्बन्ध न होगा।'

'अगर मैं जानता कि आपकी ऐसी नीयत है, तो मैं भी बीबी-बच्चों के नाम से टिकट ले सकता था।'

'यह आपकी गलती है।'

'इसीलिए कि मुझे विश्वास था, आप भाई हैं।'

'यह जुआ है, आपको समझ लेना चाहिए था। जुए की हार-जीत का खानदान पर कोई असर नहीं पड़ सकता। अगर आप कल को दस-पाँच हजार रेस में हार आयें, तो खानदान उसका जिम्मेदार न होगा।'

'मगर भाई का हक दबाकर आप सुखी नहीं रह सकते?'

'आप न ब्रह्मा है, न ईश्वर और न कोई महात्मा।'

विक्रम की माता ने सुना कि दोनों भाइयों में ठनी हुई है और मल्लयुद्ध हुआ चाहता है, तो दौड़ी हुई बाहर आयीं और दोनों को समझाने लगीं।

छोटे ठाकुर ने बिगड़कर कहा—आप मुझे क्या समझाती हैं, उन्हें समझाइए, जो चार-चार टिकट लिये हुए बैठे हैं। मेरे पास क्या है, एक टिकट। उसका क्या भरोसा। मेरी अपेक्षा जिन्हें रुपये मिलने का चौगुना चांस है, उनकी नीयत बिगड़ जाय, तो लज्जा और दुःख की बात है।

ठकुराइन ने देवर को दिलासा देते हुए कहा—अच्छा, मेरे रुपये में से आधे तुम्हारे। अब तो खुश हो।

बड़े ठाकुर ने बीबी की जबान पकड़ी—क्यों आधे ले लेंगे? मैं एक धेला भी न दूँगा। हम मुरौवत और सहृदयता से काम लें, फिर भी उन्हें पाँचवें हिस्से से ज्यादा किसी तरह न मिलेगा। आधे का दावा किस नियम से हो सकता है?—न बौद्धिक, न धार्मिक, न नैतिक।

छोटे ठाकुर ने खिसियाकर कहा—सारी दुनिया का कानून आप ही तो जानते हैं।

'जानते ही हैं, तीस साल तक वकालत नहीं की है?'

'यह वकालत निकल जायगी, जब सामने कलकत्ते का बैरिस्टर खड़ा कर दूँगा।'

'बैरिस्टर की ऐसी-तैसी, चाहे वह कलकत्ते का हो या लन्दन का!'

'मैं आधा लूँगा, उसी तरह जैसे घर की जायदाद में मेरा आधा है।'

इतने में विक्रम के बड़े भाई साहब सिर और हाथ में पट्टी बाँधे, लँगड़ाते हुए, कपड़ों पर ताजा खून के दाग लगाये, प्रसन्न-मुख आकर एक आराम कुर्सी पर गिर पड़े। बड़े ठाकुर ने घबड़ाकर पूछा—यह तुम्हारी क्या हालत है जी? ऐं, यह चोट कैसे लगी? किसी से मार-पीट तो नहीं हो गयी?

प्रकाश ने कुर्सी पर लेटकर एक बार कराहा, फिर मुसकराकर बोले—जी, कोई बात नहीं, ऐसी कुछ बहुत चोट नहीं लगी।

कैसे कहते हो कि चोट नहीं लगी? सारा हाथ और सिर सूज गया है। कपड़े खून से तर। यह मुआमला क्या है? कोई मोटर-दुर्घटना तो नहीं हो गयी?'

'बहुत मामूली चोट है साहब, दो-चार दिन में अच्छी हो जायगी। घबराने की कोई बात नहीं।'

प्रकाश के मुख पर आशापूर्ण, शान्त मुसकान थी। क्रोध, लज्जा या प्रतिशोध की भावना का नाम भी न था।

बड़े ठाकुर ने और व्यग्र होकर पूछा—लेकिन हुआ क्या, यह क्यों नहीं बतलाते ? किसी से मार-पीट हुई हो तो थाने में रपट करवा दूँ।

प्रकाश ने हलके मन से कहा—मार-पीट किसी से नहीं हुई साहब। बात यह है कि मैं जरा झक्कड़ बाबा के पास चला गया था। आप तो जानते हैं, वह आदमियों की सूरत से भागते हैं और पत्थर लेकर मारने दौड़ते हैं। जो डरकर भागा, वह गया। जो पत्थर की चोटें खाकर भी उनके पीछे लगा रहा, वह पारस हो गया। वह यही परीक्षा लेते हैं। आज मैं वहाँ पहुँचा, तो कोई पचास आदमी जमा थे, कोई मिठाई लिये, कोई बहुमूल्य भेंट लिये, कोई कपड़ों के थान लिये। झक्कड़ बाबा ध्यानावस्था में बैठे हुए थे। एकाएक उन्होंने आँखें खोलीं और यह जन-समूह देखा, तो कई पत्थर चुनकर उनके पीछे दौड़े। फिर क्या था, भगदड़ मच गयी। लोग गिरते-पड़ते भागे। हुर्र हो गये। एक भी न टिका। अकेला मैं घंटेघर की तरह वहीं डटा रहा। बस उन्होंने पत्थर चला ही तो दिया। पहला निशाना सिर में लगा। उनका निशाना अचूक पड़ता है। खोपड़ी भन्ना गयी, खून की धारा बह चली; लेकिन मैं हिला नहीं। फिर बाबाजी ने दूसरा पत्थर फेंका। वह हाथ में लगा। मैं गिर पड़ा और बेहोश हो गया। जब होश आया, तो वहाँ सन्नाटा था। बाबाजी भी गायब हो गये थे। अन्तर्द्धान हो जाया करते हैं। किसे पुकारूँ, किससे सवारी लाने को कहूँ ? मारे दर्द के हाथ फटा पड़ता था और सिर से अभी तक खून जारी था। किसी तरह उठा और सीधा डॉक्टर के पास गया। उन्होंने देखकर कहा—हड्डी टूट गयी है, और पट्टी बाँध दी; गर्म पानी से सेकने को कहा है। शाम को फिर आयेंगे; मगर चोट लगी तो लगी; अब लॉटरी मेरे नाम आयी धरी है। यह निश्चय है। ऐसा कभी हुआ ही नहीं कि झक्कड़ बाबा की मार खाकर कोई नामुराद रह गया हो। मैं तो सबसे पहले बाबा की कुटी बनवा दूँगा।

बड़े ठाकुर साहब के मुख पर संतोष की झलक दिखायी दी। फौरन पलँग बिछ गया। प्रकाश उस पर लेटे। ठकुराइन पंखा झलने लगीं, उनका भी मुख प्रसन्न था। इतनी चोट खाकर दस लाख पा जाना कोई बुरा सौदा न था।

छोटे ठाकुर साहब के पेट में चूहे दौड़ रहे थे। ज्योंही बड़े ठाकुर भोजन करने गये, और ठकुराइन भी प्रकाश के लिए भोजन का प्रबन्ध करने गयीं,

त्योंही छोटे ठाकुर ने प्रकाश से पूछा—क्या बहुत जोर से पत्थर मारते हैं ? जोर से तो क्या मारते होंगे !

प्रकाश ने उनका आशय समझकर कहा—अरे साहब पत्थर नहीं मारते, बमगोले मारते हैं। देव-सा तो डील-डौल है, और बलवान् इतने हैं कि एक घूँसे में शेरों का काम तमाम कर देते हैं। कोई ऐसा-वैसा आदमी हो, तो एक ही पत्थर में टें हो जाय। कितने ही तो मर गये; मगर आज तक झक्कड़ बाबा पर मुकदमा नहीं चला। और दो-चार पत्थर मारकर ही नहीं रह जाते, जब तक आप गिर न पड़ें और बेहोश न हो जायँ, वह मारते ही जायँगे; मगर रहस्य यही है कि आप जितनी ज्यादा चोटें खायँगे, उतने ही अपने उद्देश्य के निकट पहुँचेंगे।....

प्रकाश ने ऐसा रोएँ खड़े कर देने वाला चित्र खींचा कि छोटे ठाकुर साहब थर्रा उठे। पत्थर खाने की हिम्मत न पड़ी।

(४)

आखिर भाग्य के निपटारे का दिन आया—जुलाई की बीसवीं तारीख कत्ल की रात ! हम प्रातःकाल उठे, तो जैसे एक नशा चढ़ा हुआ था, आशा और भय के द्वन्द्व का। दोनों ठाकुरों ने घड़ी रात रहे गंगा-स्नान किया था और मन्दिर में बैठे पूजन कर रहे थे। आज मेरे मन में श्रद्धा जागी। मन्दिर में जाकर मन-ही-मन ठाकुरजी की स्तुति करने लगा—अनाथों के नाथ, तुम्हारी कृपादृष्टि क्या हमारे ऊपर न होगी ? तुम्हें क्या मालूम नहीं, हमने कितनी मुश्किल से टिकट खरीदे हैं ! तुम तो अन्तर्यामी हो। संसार में हमसे ज्यादा तुम्हारी दया कौन डिज़र्व (deserve) करता है ? विक्रम सूट-बूट पहने मन्दिर के द्वार पर आया, मुझे इशारे से बुलाकर इतना कहा—मैं डाकखाने जाता हूँ, और हवा हो गया। जरा देर में प्रकाश मिठाई के थाल लिये हुए घर में से निकले और मन्दिर के द्वार पर खड़े होकर कंगालों को बाँटने लगे, जिनकी एक भीड़ जमा हो गयी थी। और दोनों ठाकुर भगवान् के चरणों में लौ लगाये बैठे हुए थे, सिर झुकाये, आँखें बन्द किये हुए, अनुराग में डूबे हुए।

बड़े ठाकुर ने सिर उठा कर पुजारी की ओर देखा और बोले—भगवान् तो बड़े भक्त-वत्सल हैं, क्यों पुजारी जी ?

पुजारी ने समर्थन किया—हाँ सरकार, भक्तों की रक्षा के लिए तो भगवान् क्षीरसागर से दौड़े और गज को ग्राह के मुँह से बचाया।

एक क्षण के बाद छोटे ठाकुर साहब ने सिर उठाया और पुजारी जी से बोले—क्यों पुजारीजी, भगवान् तो सर्व-शक्तिमान् हैं, अन्तर्यामी, सबके दिल का हाल जानते हैं।

पुजारी ने समर्थन किया—हाँ सरकार, अन्तर्यामी न होते तो सबके मन की बात कैसे जान जाते ? शबरी का प्रेम देखकर स्वयं उसकी मनोकामना पूरी की।

पूजन समाप्त हुआ। आरती हुई। दोनों भाइयों ने आज ऊँचे स्वर से आरती गायी और बड़े ठाकुर ने दो रुपये थाल में डाले। छोटे ठाकुर ने चार रुपये डाले। बड़े ठाकुर ने एक बार कोप-दृष्टि से देखा और मुँह फेर लिया।

सहसा बड़े ठाकुर ने पुजारी से पूछा—तुम्हारा मन क्या कहता है पुजारी जी ?

पुजारी बोला—सरकार की फते है।

छोटे ठाकुर ने पूछा—और मेरी ?

पुजारी ने उसी मुस्तैदी से कहा—आप की भी फते है !

बड़े ठाकुर श्रद्धा से डूबे भजन गाते हुए मन्दिर से निकले—

'प्रभुजी, मैं तो आयो सरन तिहारे, हाँ प्रभुजी।'

एक मिनट में छोटे ठाकुर साहब भी मन्दिर से गाते हुए निकले—

'अब पत राखो मोरे दयानिधि तोरी गति लखि ना परे !'

मैं भी पीछे निकला और जाकर मिठाई बाँटने में प्रकाश बाबू की मदद करना चाहा; उन्होंने थाल हटा कर कहा—आप रहने दीजिए, मैं अभी बाँटे डालता हूँ। अब रह ही कितनी गयी है ?

मैं खिसियाकर डाकखाने की तरफ चला कि विक्रम मुसकराता हुआ साइकिल पर आ पहुँचा। उसे देखते ही सभी जैसे पागल हो गये। दोनों ठाकुर सामने ही खड़े थे। दोनों बाज की तरह झपटे। प्रकाश के थाल में थोड़ी-सी मिठाई बच रही थी। उसने थाल जमीन पर पटका और दौड़ा। और मैंने तो उस उन्माद में विक्रम को गोद में उठा लिया; मगर कोई उससे कुछ पूछता नहीं, सभी जय-जय कार की हाँक लगा रहे हैं।

बड़े ठाकुर आकाश की ओर देखा—बोलो राजा रामचन्द्र की जय !

छोटे ठाकुर ने छलाँग मारी—बोलो हनुमानजी की जय !

प्रकाश तालियाँ बजाता हुआ चीखा—दुहाई झक्कड़ बाबा की !

विक्रम ने और जोर से कहकहा मारा और फिर अलग खड़ा होकर बोला—जिसका नाम आया है, उससे एक लाख लूँगा। बोलो, है मंजूर ?

बड़े ठाकुर ने उसका हाथ पकड़ा—पहले बता तो !

'ना ! यों नहीं बताता।'

छोटे ठाकुर बिगड़े—महज बताने के लिये एक लाख ? शाबाश !

प्रकाश ने भी त्योरी चढ़ायी—क्या डाकखाना हमने देखा नहीं है ?

'अच्छा, तो अपना-अपना नाम सुनने के लिए तैयार हो जाओ।'

सभी लोग फौजी-अटेंशन की दशा में निश्चल खड़े हो गये।

'होश-हवास ठीक रखना !'

सभी पूर्ण सचेत हो गये।

'अच्छा, तो सुनिए कान खोल कर, इस शहर का सफाया है। इस शहर का ही नहीं, सम्पूर्ण भारत का सफाया है। अमेरिका के एक हब्शी का नाम आ गया।'

बड़े ठाकुर झल्लाये—झूठ-झूठ, बिलकुल झूठ !

छोटे ठाकुर ने पैंतरा बदला—कभी नहीं। तीन महीने की तपस्या योंही रही ? वाह !

प्रकाश ने छाती ठोंक कर कहा—यहाँ सिर फुड़वाये और हाथ तुड़वाये बैठे हैं, दिल्लगी है !

इतने में और पचासों आदमी उधर से रोनी सूरत लिये निकले। ये बेचारे भी डाकखाने से अपनी किस्मत को रोते चले आ रहे थे। मार ले गया, अमेरिका का हब्शी ! अभागा ! पिशाच ! दुष्ट !

अब कैसे किसी को विश्वास न आता ? बड़े ठाकुर झल्लाये हुए मन्दिर

में गये और पुजारी को डिसमिस कर दिया—इसीलिए तुम्हें इतने दिनों से पाल रखा है। हराम का माल खाते हो और चैन करते हो।

छोटे ठाकुर साहब की तो जैसे कमर टूट गयी। दो-तीन बार सिर पीटा और वहीं बैठ गये; मगर प्रकाश के क्रोध का पारावार न था। उसने अपना मोटा सोटा लिया और झक्कड़ बाबा की मरम्मत करने चला।

माताजी ने केवल इतना कहा—सभों ने बेईमानी की है। मैं कभी मानने की नहीं। हमारे देवता क्या करें? किसी के हाथ से थोड़े ही छीन लायेंगे?

रात को किसी ने खाना नहीं खाया। मैं भी उदास बैठा हुआ था कि विक्रम आकर बोला—चलो, होटल से कुछ खा आयें। घर में तो चूल्हा नहीं जला।

मैंने पूछा—तुम डाकखाने से आये, तो बहुत प्रसन्न क्यों थे?

उसने कहा—जब मैंने डाकखाने के सामने हजारों की भीड़ देखी, तो मुझे अपने लोगों के गधेपन पर हँसी आयी। एक शहर में जब इतने आदमी हैं, तो सारे हिन्दुस्तान में इसके हजार गुने से कम न होंगे और दुनिया में तो लाख गुने से भी ज्यादा हो जायँगे। मैंने आशा का जो एक पर्वत सा खड़ा कर रखा था, वह जैसे एकबारगी इतना छोटा हुआ कि राई बन गया, और मुझे हँसी आयी। जैसे कोई दानी पुरुष छटाँक-भर अन्न हाथ में लेकर एक लाख आदमियों को नेवता दे बैठे—और यहाँ हमारे घर का एक-एक आदमी समझ रहा है कि........

मैं भी हँसा—हाँ, बात तो यथार्थ में यही है, और हम दोनों लिखा-पढ़ी के लिए लड़े मरते थे; मगर सच बताना, तुम्हारी नीयत खराब हुई थी कि नहीं!

विक्रम मुसकरा कर बोला—अब क्या करोगे पूछ कर? पर्दा ढका रहने दो।

जादू

नीला—तुमने उसे पत्र क्यों लिखा?

मीना—किसको?

'उसीको?'

'मैं नहीं समझती!'

'खूब समझती हो! जिस आदमी ने मेरा अपमान किया, गली-गली मेरा नाम बेचता फिरा, उसे तुम मुँह लगाती हो, क्या यह उचित है?'

'तुम गलत कहती हो!'

'तुमने उसे खत नहीं लिखा?'

'कभी नहीं।'

'तो मेरी गलती थी क्षमा करो। तुम मेरी बहन न होतीं, तो मैं तुमसे यह सवाल भी न पूछती।'

'मैंने किसीको खत नहीं लिखा।'

'मुझे यह सुनकर खुशी हुई।'

'तुम मुसकराती क्यों हो?'

'मैं!'

'जी हाँ, आप!'

'मैं तो जरा भी नहीं मुसकरायी।'

'क्या मैं अन्धी हूँ?'

'यह तो तुम अपने मुँह से ही कहती हो।'

'तुम क्यों मुसकरायीं?'

'मैं सच कहती हूँ, जरा भी नहीं मुसकरायी।'

'मैंने अपनी आँखों देखा।'

'अब मैं कैसे तुम्हें विश्वास दिलाऊँ?'

'तुम आँखों में धूल झोंकती हो।'

'अच्छा मुसकरायी ! बस, या जान लोगी ?'

'तुम्हें किसी के ऊपर मुसकराने का क्या अधिकार है ?'

'तेरे पैरों पड़ती हूँ नीला, मेरा गला छोड़ दे। मैं बिलकुल नहीं मुसकरायी।

'मैं ऐसी अनीली नहीं हूँ।'

'यह मैं जानती हूँ।'

'तुमने मुझे हमेशा झूठी समझा है।'

'तू आज किसका मुँह देखकर उठी है ?'

'तुम्हारा।'

'तू मुझे थोड़ा संखिया क्यों नहीं दे देती ?'

'हाँ, मैं तो हत्यारिन हूँ ही।'

'मैं तो नहीं कहती।'

'अब और कैसे कहोगी, क्या ढोल बजाकर ? मैं हत्यारिन हूँ, मदमाती हूँ, दीदा-दिलेर हूँ; तुम सर्वगुणागरी हो, सीता हो, सावित्री हो। अब खुश हुई ?'

'लो कहती हूँ, मैंने उन्हें पत्र लिखा फिर तुमसे मतलब ? तुम कौन होती हो, मुझसे जवाब तलब करनेवाली ?'

'अच्छा किया लिखा, सचमुच मेरी बेवकूफी थी कि मैंने तुमसे पूछा।'

'हमारी खुशी, हम जिसको चाहेंगे खत लिखेंगे। जिससे चाहेंगे बोलेंगे। तुम कौन होती हो रोकनेवाली। तुमसे तो मैं नहीं पूछने जाती; हालाँकि रोज तुम्हें पुलिन्दों पत्र लिखते देखती हूँ।'

'जब तुमने शर्म ही भून खायी, तो जो चाहो करो, अख्तियार है।'

'और तुम कब से बड़ी लज्जावती बन गयीं ? सोचती होगी, अम्माँ से कह दूँगी, यहाँ इसकी परवाह नहीं है। मैंने उन्हें पत्र भी लिखा, उनसे पार्क में मिली भी, बात-चीत भी की, जाकर अम्माँ से, दादा से और सारे मुहल्ले से कह दो।'

'जो जैसा करेगा, आप भोगेगा, मैं क्यों किसी से कहने जाऊँ ?'

'ओ हो, बड़ी धैर्यवाली, यह क्यों नहीं कहतीं, अंगूर खट्टे हैं ?'

'जो तुम कहो, वही ठीक है।'

'दिल में जली जाती हो।'

'मेरी बला जले।'

'रो दो जरा।'

'तुम खुद रोओ, मेरा अंगूठा रोये।'

'मुझे उन्होंने एक रिस्टवाच भेंट दी है, दिखाऊँ ?'

'मुबारक हो, मेरी आँखों का सनीचर न दूर होगा ?'

'मैं कहती हूँ, तुम इतनी जलती क्यों हो ?'

'अगर मैं तुमसे जलती हूँ, तो मेरी आँखें पट्टम हो जायँ।'

'तुम जितना ही जलोगी, मैं उतना ही जलाऊँगी।'

'मैं जलूँगी ही नहीं।'

'जल रही हो साफ।'

'कब सन्देशा आयेगा ?'

'जल मरो।'

'पहले तेरी भाँवरें देख लूँ।'

'भाँवरों की चाट तुम्हीं को रहती है।'

'अच्छा ! तो क्या बिना भाँवरों का ब्याह होगा ?'

'यह ढकोसले तुम्हें मुबारक रहें, मेरे लिए प्रेम काफी है।'

'तो क्या तू सचमुच............!'

'मैं किसी से नहीं डरती।'

'यहाँ तक नौबत पहुँच गयी ! और तू कह रही थी, मैंने उसे पत्र नहीं लिखा और कस्में खा रही थी ?'

'क्यों अपने दिल का हाल बतलाऊँ।'

'मैं तो तुमसे पूछती न थी; मगर तू आप-ही-आप बक चली।'

'तुम मुसकरायी क्यों ?'

'इसलिए कि वह शैतान तुम्हारे साथ भी वही दगा करेगा, जो उसने मेरे साथ किया और फिर तुम्हारे विषय में भी वैसी ही बातें कहता फिरेगा। और फिर तुम मेरी तरह उसके नाम को रोओगी।

'तुमसे उन्हें प्रेम नहीं था ?'

'मुझसे ! मेरे पैरों पर सिर रखकर रोता था, और कहता था कि मैं मर जाऊँगा और जहर खा लूँगा।'

'सच कहती हो ?'

'बिलकुल सच।'

'यही तो वह मुझसे भी कहते हैं।'

'सच ?'

'तुम्हारे सिर की कसम।'

'और मैं समझ रही थी, अभी वह दाने बिखेर रहा है।'

'क्या वह सचमुच............।'

'पक्का शिकारी है।'

मीना सिर पर हाथ रखकर चिन्ता में डूब जाती है।

———

नया विवाह

(१)

हमारी देह पुरानी है, लेकिन इसमें सदैव नया रक्त दौड़ता रहता है। नये रक्त के प्रवाह पर ही हमारे जीवन का आधार है। पृथ्वी की इस चिरन्तन व्यवस्था में यह नयापन उसके एक-एक अणु में, एक-एक कण में, तार में बसे हुए स्वरों की भाँति, गूँजता रहता है, और यह सौ साल की बुढ़िया आज भी नवेली दूल्हन बन हुई है।

जब से लाला डंगामल ने नया विवाह किया है, उनका यौवन नये सिरे से जाग उठा है। जब पहली स्त्री जीवित थी, तब वे घर में बहुत कम रहते थे। प्रातः से दस-ग्यारह बजे तक तो पूजा-पाठ ही करते रहते थे। फिर भोजन करके दूकान चले जाते। वहाँ से एक बजे रात को लौटते और थके-माँदे सो जाते यदि लीला कभी कहती, जरा और सबेरे आ जाया करो, तो बिगड़ जाते और कहते—तुम्हारे लिए क्या दूकान छोड़ दूँ, या रोजगार बन्द कर दूँ ? यह वह जमाना नहीं है कि एक लोटा जल चढ़ाकर लक्ष्मी प्रसन्न कर ली जायँ। आज उनकी चौखट पर माथा रगड़ना पड़ता है, तब भी उनका मुँह सीधा नहीं होता। लीला बेचारी चुप हो जाती।

अभी छः महीने की बात है। लीला को ज्वर चढ़ा हुआ था। लालाजी दूकान जाने लगे, तब उसने डरते-डरते कहा था—देखो, मेरा जी अच्छा नहीं है। जरा सबेरे आ जाना।

डंगालल ने पगड़ी उतार कर खूँटी पर लटका दी और बोले—अगर मेरे बैठे रहने से तुम्हारा जी अच्छा हो जाय, तो मैं दूकान न जाऊँगा।

लीला हताश होकर बोली—मैं दूकान जाने को तो नहीं मना करती। केवल जारा सबेरे आने को कहती हूँ।

'तो क्या मैं दूकान पर बैठा मौज किया करता हूँ ?'

लीला इसका क्या जवाब देती ? पति का यह स्नेह-हीन व्यवहार उसके लिए कोई नयी बात न थी। इधर कई साल से उसे इसका कठोर अनुभव हो रहा था कि उसकी इस घर में कद्र नहीं है। वह अक्सर इस समस्या पर

विचार भी किया करती, पर वह अपना कोई अपराध न पाती। वह पति की सेवा अब पहले से कहीं ज्यादा करती, उनके कार्य-भार को हलका करने की बराबर चेष्टा करती रहती, बराबर प्रसन्नचित्त रहती; कभी उनकी इच्छा के विरुद्ध कोई काम नहीं करती। अगर उसकी जवानी ढल चुकी थी, तो इसमें उसका क्या अपराध था? किसकी जवानी सदैव स्थिर रहती है? अगर अब उसका स्वास्थ्य उतना अच्छा न था, तो इसमें उसका क्या दोष? उसे बेकसूर क्यों दण्ड दिया जाता है?

उचित तो यह था कि २५ साल का साहचर्य अब एक गहरी मानसिक और आत्मिक अनुरूपता का रूप धारण कर लेता, जो दोष को भी गुण बना लेता है, जो पके फल की तरह ज्यादा रसीला, ज्यादा मीठा, ज्यादा सुन्दर हो जाता है। लेकिन लाला जी का वणिक-हृदय हर एक पदार्थ को वाणिज्य की तराजू से तौलता था। बूढ़ी गाय जब न दूध दे सकती है न बच्चे, तब उसके लिए गोशाला ही सबसे अच्छी जगह है। उनके विचार में लीला के लिए इतना ही काफी था कि घर की मालकिन बनी रहे, आराम से खाय और पड़ी रहे। उसे अख्तियार है चाहे जितने जेवर बनवाये, चाहे जितना स्नान व पूजा करे, केवल उनसे दूर रहे। मानव-प्रकृति की जटिलता का एक रहस्य यह था कि डंगामल जिस आनन्द से लीला को वञ्चित रखना चाहते थे, जिसकी उसके लिए कोई जरूरत ही न समझते थे, खुद उसी के लिए सदैव प्रयत्न करते रहते थे। लीला ४० वर्ष की होकर बूढ़ी समझ ली गयी थी, किन्तु वे तैंतालीस के होकर अभी जवान ही थे, जवानी के उन्माद और उल्लास से भरे हुए। लीला से अब उन्हें एक तरह की अरुचि होती थी और वह दुखिया जब अपनी त्रुटियों का अनुभव करके प्रकृति के निर्दय आघातों से बचने के लिए रंग व रोगन की आड़ लेती, तब लाला जी उसके बूढ़े नखरों से और भी घृणा करने लगते। वे कहते—वाह री तृष्णा! सात लड़कों की तो माँ हो गयीं, बाल खिचड़ी हो गये, चेहरा धुले हुए फलालैन की तरह सिकुड़ गया, मगर आपको अभी महावर, सेंदुर, मेंहदी और उबटन की हवस बाकी ही है। औरतों का स्वभाव भी कितना विचित्र है! न-जाने क्यों बनाव-सिंगार पर इतना जान देती हैं? पूछो, अब तुम्हें और क्या चाहिए। क्यों नहीं मन

को समझा लेतीं कि जवानी विदा हो गयी और इन उपादानों से वह वापस नहीं बुलायी जा सकती! लेकिन वे खुद जवानी का स्वप्न देखते रहते थे। उनकी जवानी की तृष्णा अभी शान्त न हुई थी। जाड़ों में रसों और पाकों का सेवन करते रहते थे। हफ्ते में दो बार खिजाब लगाते और एक डाक्टर से मंकीग्लैंड के विषय में पत्र-व्यवहार कर रहे थे।

लीला ने उन्हें असमंजस में देखकर कातर-स्वर में पूछा—कुछ बतला सकते हो, कै बजे आओगे?

लाला जी ने शान्त भाव से पूछा—तुम्हारा जी आज कैसा है?

लीला क्या जवाब दे? अगर कहती है कि बहुत खराब है, तो शायद ये महाशय वहीं बैठ जायँ और उसे जली-कटी सुनाकर अपने दिल का बुखार निकालें। अगर कहती है कि अच्छी हूँ, तो शायद निश्चिन्त होकर दो बजे तक कहीं खबर लें। इस दुविधा में डरते-डरते बोली—अब तक तो हलकी थी, लेकिन अब कुछ भारी हो रही है। तुम जाओ, दूकान पर लोग तुम्हारी राह देखते होंगे। हाँ, ईश्वर के लिए एक-दो न बजा देना। लड़के सो जाते हैं, मुझे जरा भी अच्छा नहीं लगता, जी घबराता है।

सेठजी ने अपने स्वर में स्नेह की चाशनी देकर कहा—बारह बजे तक आ जरूर जाऊँगा!

लीला का मुख धूमिल हो गया। उसने कहा—दस बजे तक नहीं आ सकते?

'साढ़े ग्यारह से पहले किसी तरह नहीं।'

'नहीं साढ़े दस।'

'अच्छा ग्यारह बजे।'

लालाजी वादा करके चले गये, लेकिन दस बजे रात का एक मित्र ने मुजरा सुनने के लिए बुला भेजा। इस निमन्त्रण को कैसे इनकार कर देते। जब एक आदमी आपको खातिर से बुलाता है, तब यह कहाँ की भलमनसाहत है कि आप उसका निमन्त्रण अस्वीकार कर दें?

लालाजी मुजरा सुनने चले गये, दो बजे लौटे। चुपके से आकर नौकर को

जागाया और अपने कमरे में जाकर लेट रहे। लीला उनकी राह देखती, प्रति क्षण विकल-वेदना का अनुभव करती हुई न-जाने कब सो गयी थी।

अन्त को इस बीमारी ने अभागिनी लीला की जान ही लेकर छोड़ा। लालाजी को उसके मरने का बड़ा दुःख हुआ। मित्रों ने समवेदना के तार भेजे। एक दैनिक पत्र ने शोक प्रकट करते हुए लीला के मानसिक और धार्मिक सद्गुणों का खूब बढ़ाकर वर्णन किया। लालाजी ने इन सभी मित्रों को हार्दिक धन्यवाद दिया और लीला के नाम से बालिका-विद्यालय में पाँच वजीफे प्रदान किये तथा मृतक-भोज तो जितने समारोह से किया गया, वह नगर के इतिहास में बहुत दिनों तक याद रहेगा।

लेकिन एक महीना भी न गुजरने पाया था कि लालाजी के मित्रों ने चारा डालना शुरू कर दिया और उसका यह असर हुआ कि छः महीने की विधुरता के तप के बाद उन्होंने दूसरा विवाह कर लिया। आखिर बेचारे क्या करते? जीवन में एक सहचरी की आवश्यकता तो थी ही, और इस उम्र में तो एक तरह से वह अनिवार्य्य हो गयी थी।

(२)

जब से नयी पत्नी आयी, लालाजी के जीवन में आश्चर्यजनक परिवर्तन हो गया। दूकान से अब उतना प्रेम नहीं था। लगातार हफ्तों न जाने से भी उनके कारबार में कोई हर्ज नहीं होता था। जीवन के उपभोग की जो शक्ति दिन-दिन क्षीण होती जाती थी, अब वह छींटे पाकर सजीव हो गयी थी, सूखा पेड़ हरा हो गया था, उसमें नयी-नयी कोंपलें फूटने लगी थीं। मोटर नया आ गया था, कमरे नये फर्नीचर से सजा दिये गये थे, नौकरों की भी संख्या बढ़ गयी थी, रेडियो आ पहुँचा था, और प्रतिदिन नये-नये उपहार आते रहते थे। लालाजी की बूढ़ी जवानी जवानों की जवानी से भी प्रखर हो गयी थी, उसी तरह जैसे बिजली का प्रकाश चन्द्रमा के प्रकाश से ज्यादा स्वच्छ और मनोरञ्जक होता है। लालाजी को उनके मित्र इस रूपान्तर पर बधाइयाँ देते, तब वे गर्व के साथ कहते—भई, हम तो हमेशा जवान रहे और हमेशा जवान रहेंगे। बुढ़ापा यहाँ आये तो उसके मुँह में कालिख लगा कर गधे पर उलटा सवार कराके शहर से निकाल दें। जवानी और बुढ़ापे को न-जाने क्यों लोग अवस्था से सम्बद्ध कर देते हैं। जवानी का उम्र से उतना ही सम्बन्ध है, जितना धर्म का आचार से, रुपये का ईमानदारी से, रूप का शृङ्गार से। आजकल के जवानों को आप जवान कहते हैं? उनकी एक हजार जवानियों को अपने एक घंटे से भी न बदलूँगा। मालूम होता है उनकी जिन्दगी में कोई उत्साह ही नहीं, कोई शौक नहीं। जीवन क्या है, गले में पड़ा हुआ एक ढोल है।

यही शब्द घटा-बढ़ाकर वे आशा के हृदय-पटल पर अंकित करते रहते थे। उससे बराबर सिनेमा, थियेटर और दरिया की सैर के लिए आग्रह करते रहते। लेकिन आशा को न जाने क्यों इन बातों से जरा भी रुचि न थी। वह जाती तो थी, मगर बहुत टाल-टूल करने के बाद। एक दिन लालाजी ने आकर कहा—चलो, आज बजरे पर दरिया की सैर करें।

वर्षा के दिन थे, दरिया चढ़ा हुआ था, मेघ-मालाएँ अन्तर्राष्ट्रीय सेनाओं की भाँति रङ्ग-बिरंगी वर्दियाँ पहने आकाश में कवायद कर रही थीं। सड़क पर लोग मलार और बारहमासा गाते चलते थे। बागों में झूले पड़ गये थे।

आशा ने बेदिली से कहा—मेरा जी तो नहीं चाहता।

लाला जी ने मृदु प्रेरणा के साथ कहा—तुम्हरा मन कैसा है, जो आमोद-प्रमोद की ओर आकर्षित नहीं होता? चलो, जरा दरिया की सैर देखो। सच कहता हूँ, बजरे पर बड़ी बहार रहेगी।

'आप जायँ। मुझे और कई काम करने हैं।'

'काम करने को आदमी हैं। तुम क्यों काम करोगी?'

'महराज अच्छे सालन नहीं पकाता। आप खाने बैठेंगे, तो योंही उठ जायँगे।'

लीला अपने अवकाश का बड़ा भाग लाला जी के लिए तरह-तरह का भोजन पकाने में ही लगाती थी। उसने किसी से सुन रखा था कि एक विशेष अवस्था के बाद पुरुष के जीवन का सबसे बड़ा सुख, रसना का स्वाद ही रह जाता है।

लाला जी की आत्मा खिल उठी। उन्होंने सोचा कि आशा को उनसे कितना प्रेम है कि वह दरिया की सैर को उनकी सेवा के लिए छोड़ रही है। एक लीला थी कि 'मान-न-मान' चलने को तैयार रहती थी। पीछा छुड़ाना पड़ता था, ख्वामख्वाह सिर पर सवार हो जाती थी और सारा मजा किरकिरा कर देती थी।

स्नेह-भरे उलहने से बोले—तुम्हारा मन भी विचित्र है। अगर एक दिन सालन फीका ही रहा, तो ऐसा क्या तूफान आ जायगा? तुम तो मुझे बिलकुल निकम्मा बनाये देती हो। अगर तुम न चलोगी, तो मैं भी न जाऊँगा।

आशा ने जैसे गले से फन्दा छुड़ाते हुए कहा—आप भी तो मुझे इधर-उधर घुमा-घुमाकर मेरा मिजाज बिगाड़े देते हैं। यह आदत पड़ जायगी, तो घर का धन्धा कौन करेगा?

'मुझे घर के धन्धे की रत्ती-भर भी परवा नहीं—बाल की नोक बराबर भी नहीं। मैं चाहता हूँ कि तुम्हारा मिजाज बिगड़े और तुम इस गृहस्थी की चक्की से दूर रहो। और तुम मुझे बार-बार आप क्यों कहती हो? मैं चाहता हूँ, तुम मुझे तुम कहो, तू कहो, गालियाँ दो, धौल जमाओ। तुम तो मुझे आप कहके जैसे देवता के सिंहासन पर बैठा देती हो। मैं अपने घर में देवता नहीं, चंचल बालक बनना चाहता हूँ।

आशा ने मुसकराने की चेष्टा करके कहा—भला, मैं आपको 'तुम' कहूँगी। तुम बराबर वाले को कहा जाता है कि बड़ों को?

मुनीम ने एक लाख के घाटे की खबर सुनायी होती, तो भी शायद लालाजी को इतना दुःख न होता, जितना आशा के इन कठोर शब्दों से हुआ। उनका सारा उत्साह, सारा उल्लास जैसे ठंढा पड़ गया। सिर पर बाँकी रखी हुई फूलदार टोपी, गले में पड़ी हुई जोगिये रंग की चुनी हुई रेशमी चादर, वह तंजेब का बेलदार कुर्त्ता, जिसमें सोने के बटन लगे हुए थे, यह सारा ठाट-जैसे उन्हें हास्यजनक जान पड़ने लगा, जैसे वह सारा नशा किसी मन्त्र से उतर गया हो।

निराश होकर बोले—तो तुम्हें चलना है या नहीं?

'मेरा जी नहीं चाहता।'

'तो मैं भी न जाऊँ?'

'मैं आप को कब मना करती हूँ?'

'फिर 'आप' कहा?'

आशा ने जैसे भीतर से जोर लगाकर कहा 'तुम' और उसका मुखमण्डल लज्जा से आरक्त हो गया।

'हाँ, इसी तरह 'तुम' कहा करो। तो तुम नहीं चल रही हो? अगर मैं कहूँ, तुम्हें चलना पड़ेगा तो?'

'तब चलूँगी। आपकी आज्ञा मानना मेरा धर्म है।'

लालाजी आज्ञा न दे सके। आज्ञा और धर्म जैसे शब्द उनके कानों में चुभने-से लगे। खिसियाये हुए बाहर को चल पड़े। उस वक्त आशा को उन पर दया आ गयी। बोली—तो कब तक लौटोगे?

'मैं नहीं जा रहा हूँ।'

'अच्छा, तो मैं भी चलती हूँ।'

जैसे कोई जिद्दी लड़का रोने के बाद अपनी इच्छित वस्तु पाकर उसे पैरों से ठुकरा देता है, उसी तरह लालाजी ने मुँह बना कर कहा—तुम्हारा जी नहीं चलता, तो न चलो। मैं आग्रह नहीं करता।

'आप....नहीं, तुम बुरा मान जाओगे।'

आशा गयी, लेकिन उमंग से नहीं। जिस मामूली वेश में थी, उसी तरह चल खड़ी हुई। न कोई सजीली साड़ी, न जड़ाऊ गहने, न कोई सिंगार, जैसे कोई विधवा हो।

ऐसी ही बातों पर लालाजी मन में झुँझला उठते थे। ब्याह किया था, जीवन का आनन्द उठाने के लिए, झिलमिलाते हुए दीपक में तेल डाल कर उसे और चटक करने के लिए। अगर दीपक का प्रकाश तेज न हुआ, तो तेल डालने से लाभ? न-जाने इसका मन क्यों इतना शुष्क और नीरस है, जैसे कोई ऊसर का पेड़ हो, कितना ही पानी डालो, उसमें हरी पत्तियों के दर्शन न होंगे। जड़ाऊ गहनों से भरी पेटारियाँ खुली हुई हैं, कहाँ-कहाँ से मँगवाये—दिल्ली से, कलकत्ते से, फ्रांस से। कैसी-कैसी बहुमूल्य साड़ियाँ रखी हुई हैं। एक नहीं, सैकड़ों। पर केवल सन्दूक में कीड़ों का भोजन बनने के लिए। दरिद्र घर की लड़कियों में यही ऐब होता है। उनकी दृष्टि सदैव संकीर्ण रहती है। न खा सकें, न पहन सकें, न दे सकें। उन्हें तो खजाना भी मिल जाय, तो यही सोचती रहेंगी कि इसे खर्च कैसे करें।

दरिया की सैर तो हुई, पर विशेष आनन्द न आया।

३

कई महीने तक आशा की मनोवृत्तियों को जगाने का असफल प्रयत्न करके लालाजी ने समझ लिया कि इसकी पैदाइश ही मुहर्रमी है। लेकिन फिर भी निराश न हुए। ऐसे व्यापार में एक बड़ी रकम लगाने के बाद वे उसमें अधिक से अधिक लाभ उठाने की वणिक्-प्रवृत्ति को कैसे त्याग देते? विनोद की नयी-नयी योजनाएँ पैदा की जातीं—ग्रामोफोन अगर बिगड़ गया है, गाता नहीं, या साफ आवाज नहीं निकलती, तो उसकी मरम्मत करानी पड़ेगी। उसे उठा कर रख देना, तो मूर्खता है।

इधर बूढ़ा महाराज एकाएक बीमार होकर घर चला गया था और उसकी जगह उसका सत्रह-अठारह साल का जवान लड़का आ गया था—कुछ अजीब गँवार था, बिलकुल झंगड़, उजड्ड। कोई बात ही न समझता था। जितने फुलके बनाता, उतनी तरह के। हाँ, एक बात समान होती। सब बीच में मोटे होते, किनारे पतले। दाल कभी तो इतनी पतली जैसे चाय, कभी इतनी गाढ़ी जैसे दही। नमक कभी इतना कम कि बिलकुल फीकी, कभी इतना तेज कि नीबू का शाकीन। आशा मुँह-हाथ धोकर चौके में पहुँच जाती और इस ढपोरशंख को भोजन पकाना सिखाती। एक दिन उसने कहा—तुम कितने नालायक आदमी हो जुगल! आखिर इतनी उम्र तक तुम घास खोदते रहे या भाड़ झोंकते रहे कि फुलके तक नहीं बना सकते? जुगल आँखों में आँसू भर कर कहता—बहूजी, अभी मेरी उम्र ही क्या है? सत्रहवाँ ही तो पूरा हुआ है!

आशा को उसकी बात पर हँसी आ गयी। उसने कहा—तो रोटियाँ पकाना क्या दस-पाँच साल में आता है?

'आप एक महीना सिखा दें बहूजी, फिर देखिए, मैं आपको कैसे फुलके खिलाता हूँ कि जी खुश हो जाय। जिस दिन मुझे फुलके बनाने आ जायँगे, मैं आपसे कोई इनाम लूँगा। सालन तो अब मैं कुछ-कुछ बनाने लगा हूँ, क्यों न?'

आशा ने हौसला बढ़ाने वाली मुसकराहट के साथ कहा—सालन नहीं, वो बनाना आता है। अभी कल ही नमक इतना तेज था कि खाया न गया। मसाले में कचाँध आ रही थी।

'मैं जब सालन बना रहा था, तब आप यहाँ कब थीं?'

'अच्छा, तो मैं जब यहाँ बैठी रहूँ तब तुम्हारा सालन बढ़िया पकेगा?'

'आप बैठी रहती हैं, तब मेरी अक्ल ठिकाने रहती है।'

आशा को जुगल की इन भोली बातों पर खूब हँसी आ रही थी। हँसी को रोकना चाहती थी, पर वह इस तरह निकली पड़ती थी जैसे भरी बोतल उड़ेल दी गयी हो।

'और मैं नहीं रहती तब?'

'तब तो आपके कमरे के द्वार पर जा बैठती है। वहाँ बैठ कर अपनी तकदीर को रोती है।'

आशा ने हँसी को रोक कर पूछा—क्यों, रोती क्यों है?

'यह न पूछिए बहूजी, आप इन बातों को नहीं समझेंगी।'

आशा ने उसके मुँह की ओर प्रश्न की आँखों से देखा। उसका आशय कुछ तो समझ गयी, पर न समझने का बहाना किया।

'तुम्हारे दादा आ जायँगे, तब तुम चले जाओगे?'

'और क्या करूँगा बहूजी। यहाँ कोई काम दिलवा दीजिएगा, तो पड़ा रहूँगा। मुझे मोटर चलाना सिखवा दीजिए। आपको खूब सैर कराया करूँगा। नहीं, नहीं बहूजी, आप हट जाइए, मैं पतीली उतार लूँगा। ऐसी अच्छी साड़ी है आपकी, कहीं कोई दाग पड़ जाय, तो क्या हो?'

आशा पतीली उतार रही थी। जुगल ने उसके हाथ से सँड़सी ले लेनी चाही।

'दूर रहो। फूहड़ तो तुम हो ही। कहीं पतीली पाँव पर गिरा ली, तो महीनों झींकोगे।'

जुगल के मुख पर उदासी छा गयी।

आशा ने मुसकराकर पूछा—क्यों, मुँह क्यों लटक गया सरकार का?

जुगल रुआँसा होकर बोला—आप मुझे डाँट देती हैं, बहूजी, तब मेरा दिल टूट जाता है। सरकार कितना ही घुड़कें, मुझे बिलकुल ही दुख नहीं होता। आपकी नजर कड़ी देख कर मेरा खून सर्द हो जाता है।

आशा ने दिलासा दिया—मैंने तुम्हें डाँटा तो नहीं, केवल यही तो कहा कि कहीं पतीली तुम्हारे पाँव पर गिर पड़े तो क्या हो?

'हाथ ही तो आपका भी है। कहीं आपके ही हाथ से छूट पड़े तो ?'

लाला डंगामल ने रसोई-घर के द्वार पर आकर कहा—आशा, जरा यहाँ आना। देखो, तुम्हारे लिए कितने सुन्दर गमले लाया हूँ। तुम्हारे कमरे के सामने रखे जायँगे। तुम यहाँ धुएँ-धक्कड़ में क्यों हलाकान होती हो ? इस लड़के से कह दो कि जल्दी महाराज को बुलाये। नहीं तो मैं कोई दूसरा आदमी रख लूँगा। महाराजों की कमी नहीं है। आखिर कब तक कोई रिआ-यत करे, गधे को जरा भी तमीज नहीं आयी। सुनता है जुगल, लिख दे आज अपने बाप को।

चूल्हे पर तवा रखा हुआ था। आशा रोटियाँ बेलने में लगी थी। जुगल तवे के लिए रोटियों का इन्तजार कर रहा था। ऐसी हालत में भला आशा कैसे गमले देखने जाती ?

उसने कहा—जुगल रोटियाँ टेढ़ी-मेढ़ी बेल डालेगा।

लालाजी ने कुछ चिढ़ कर कहा—अगर रोटियाँ टेढ़ी-मेढ़ी बेलेगा, तो निकाल दिया जायगा।

आशा अनसुनी करके बोली—दस-पाँच दिन में सीख जायगा, निकालने की क्या जरूरत है ?

'तुम आकर बतला दो, गमले कहाँ रखे जायँ।'

'कहती तो हूँ, रोटियाँ बेल कर आयी जाती हूँ।'

'नहीं, मैं कहता हूँ, तुम रोटियाँ मत बेलो।'

'आप तो ख़्वामख़्वाह जिद करते हैं।'

लालाजी सन्नाटे में आ गये। आशा ने कभी इतनी रुखाई से उन्हें जवाब न दिया था। और यह केवल रुखाई न थी; इसमें कटुता भी थी। लज्जित होकर चले गये। उन्हें ऐसा क्रोध आ रहा था कि इन गमलों को तोड़ कर फेंक दें और सारे पौधों को चूल्हे में डाल दें।

जुगल ने सहमे हुए स्वर में कहा—आप चली जायँ बहूजी, सरकार बिगड़ जायँगे।

'बको मत, जल्दी-जल्दी फुलके सेंको, नहीं तो निकाल दिये जाओगे। और आज मुझसे रुपये लेकर अपने लिए कपड़े बनवा लो। भिखमंगों की-सी सूरत बनाये घूमते हो। और बाल क्यों इतने बढ़ा रखे हैं ? तुम्हें नाई भी नहीं जुड़ता ?'

जुगल ने दूर की बात सोची। बोला—कपड़े बनवा लूँ, तो दादा को हिसाब क्या दूँगा ?

'अरे पागल ! मैं हिसाब में नहीं देने कहती। मुझसे ले जाना।'

जुगल काहिलपन की हँसी हँसा।

'आप बनवायेंगी, तो अच्छे कपड़े लूँगा। खद्दर के मलमल का कुर्त्ता, खद्दर की धोती, रेशमी चादर, अच्छा-सा चप्पल।'

आशा ने मीठी मुसकान से कहा—और अगर अपने दाम से बनवाने पड़े ?

'तब कपड़े ही क्यों बनवाऊँगा ?'

'बड़े चालाक हो तुम।'

जुगल ने अपनी बुद्धिमत्ता का प्रदर्शन किया—आदमी अपने घर में सूखी रोटियाँ खाकर सो रहता है, लेकिन दावत में तो अच्छे-अच्छे पकवान ही खाता है। वहाँ भी यदि रूखी रोटियाँ मिलें, तो वह दावत में जाय ही नहीं।

'यह सब मैं नहीं जानती। एक गाढ़े का कुर्त्ता बनवा लो और एक टोपी ले लो, हजामत के लिए दो आने पैसे ऊपर से ले लो।'

जुगल ने मान करके कहा—रहने दीजिए। मैं नहीं लेता। अच्छे कपड़े पहन कर निकलूँगा, तब तो आपकी याद आवेगी सड़ियल कपड़े पहन कर तो और जी जलेगा।

'तुम स्वार्थी हो, मुफ्त के कपड़े लोगे और साथ ही बढ़िया भी।'

'जब यहाँ से जाने लगूँ, तब आप मुझे अपना एक चित्र दीजिएगा।'

'मेरा चित्र लेकर क्या करोगे ?'

'अपनी कोठरी में लगाऊँगा और नित्य देखा करूँगा। बस, वही साड़ी पहन कर खिंचवाना, जो कल पहनी थी, और वही मोतियों की माला भी हो। मुझे नंगी-नंगी सूरत अच्छी नहीं लगती। आपके पास तो बहुत गहने होंगे। आप पहनती क्यों नहीं !'

'तो तुम्हें गहने बहुत अच्छे लगते हैं ?'

'बहुत।'

लालाजी ने फिर आकर जलते हुए मन से कहा—अभी तक तुम्हारी रोटियाँ नहीं पकीं जुगल ? अगर कल से तूने अपने-आप अच्छी रोटियाँ न पकायीं तो मैं तुझे निकाल दूँगा।

आशा ने तुरन्त हाथ-मुँह धोया और बड़े प्रसन्न मन से लालाजी के साथ गमले देखने चली। इस समय उसकी छवि में प्रफुल्लता का रौगन था, बातों में भी जैसे शक्कर घुली हुई थी। लालाजी का सारा खिसियानापन मिट गया था।

उसने गमलों को लुब्ध आँखों से देखा। उसने कहा—मैं इनमें से कोई गमला न जाने दूँगी। सब मेरे कमरे के सामने रखवाना, सब! कितने सुन्दर पौधे हैं, वाह! इनके हिन्दी नाम भी मुझे बतला देना।

लालाजी ने छेड़ा—सब गमले लेकर क्या करोगी ? दस-पाँच पसन्द कर लो। शेष मैं बाहर रखवा दूँगा।

'जी नहीं। मैं एक भी न छोड़ूँगी। सब यहीं रखे जायँगे।'

'बड़ी लालचिन ही तुम।'

लालचिन ही सही। मैं आपको एक भी न दूंगी।'

'दो-चार तो दे दो; इतनी मेहनत से लाया हूँ।'

'जी नहीं, इनमें से एक भी न मिलेगा।'

४

दूसरे दिन आशा ने अपने को आभूषण से खूब सजाया और फीरोजी साड़ी पहनकर निकली, तब लालाजी की आँखों में ज्योति आ गयी। समझे, अवश्य ही अब उनके प्रेम का जादू 'कुछ-कुछ' चल रहा है। नहीं तो उनके बार-बार के आग्रह करने पर भी, बार-बार याचना करने पर भी, उसने कोई आभूषण न पहना था। कभी-कभी मोतियों का हार गले में डाल लेती थी, वह भी ऊपरी मन से। आज वह आभूषणों से अलंकृत होकर फूली नहीं समाती, इतरायी जाती है, मानो कहती हो, देखो, मैं कितनी सुन्दर हूँ!

पहले जो बन्द कली थी, वह आज खिल गयी थी।

लालाजी पर घड़ों का नशा चढ़ा हुआ था। वे चाहते थे, उनके मित्र और बन्धु-वर्ग आकर इस सोने की रानी के दर्शनों से अपनी आँखें ठंढी करें।

देखें कि वह कितनी सुखी, संतुष्ट और प्रसन्न है। जिन विद्रोहियों ने विवाह के समय तरह-तरह की शंकाएँ की थीं, वे आँखें खोल कर देखें कि डंगामल कितना सुखी है। विश्वास, अनुराग और अनुभव ने क्या चमत्कार किया है ?

उन्होंने प्रस्ताव किया—चलो, कहीं घूम आयें। बड़ी मजेदार हवा चल रही है।

आशा इस वक्त कैसे जा सकती थी ? अभी उसे रसोई में जाना था, वहाँ से कहीं बारह-एक बजे फुर्सत मिलेगी। फिर घर के दूसरे धन्धे सिर पर 'सवार' हो जायँगे। सैर-सपाटे के पीछे क्या घर चौपट कर दे ?

सेठजी ने उसका हाथ पकड़ लिया और कहा—नहीं, आज मैं तुम्हें रसोई में न जाने दूँगा।

'महाराज के किये कुछ न होगा।'

'तो आज उसकी शामत भी आ जायगी।'

आशा के मुख पर से वह प्रफुल्लता जाती रही। मन भी उदास हो गया। एक सोफा पर लेट कर बोली—आज न-जाने क्यों कलेजे में मीठा-मीठा दर्द हो रहा है। ऐसा दर्द कभी नहीं होता था।

सेठजी घबरा उठे।

'यह दर्द कब से हो रहा है ?'

'हो तो रहा है रात से ही, लेकिन अभी कुछ कम हो गया था। अब फिर होने लगा है। रह-रह कर जैसे चुभन हो जाती है।'

सेठजी एक बात सोच कर दिल-ही-दिल में फूल उठे। अब वे गोलियाँ रंग ला रही हैं। राजवैद्यजी ने कहा भी था कि जरा सोच-समझ कर इनका सेवन कीजिएगा। क्यों न हो! खानदानी वैद्य हैं। इनके बाप बनारस के महाराज के चिकित्सक थे। पुराने और परीक्षित नुस्खे हैं इनके पास! उन्होंने कहा—तो रात से ही यह दर्द हो रहा है ? तुमने मुझसे कहा नहीं। नहीं तो वैद्यजी से कोई दवा मँगवाता।

'मैंने समझा था, आप-ही-आप अच्छा हो जायगा, मगर अब बढ़ रहा है।'

'कहाँ दर्द हो रहा है ? ज़रा देखूँ। कुछ सूजन तो नहीं है ?'

सेठजी ने आशा के आँचल की तरफ हाथ बढ़ाया। आशा ने शर्मा कर

सिर झुका लिया। उसने कहा—यह तुम्हारी शरारत मुझे अच्छी नहीं लगती। मैं अपनी जान से मरती हूँ, तुम्हें हँसी सूझती है। जाकर कोई दवा ला दो।

सेठजी अपने पुंसत्व का यह डिप्लोमा पाकर उससे कहीं ज्यादा प्रसन्न हुए, जितना रायबहादुरी पाकर होते। इस विजय का डंका पीटे बिना उन्हें कैसे चैन आ सकता था? जो लोग उनके विवाह के विषय में द्वेषमय टिप्पणियाँ कर रहे थे, उन्हें नीचा दिखाने का कितना अच्छा अवसर हाथ आया है और इतनी जल्दी!

पहले पंडित भोलानाथ के पास गये और भाग्य ठोंक कर बोले—भई, मैं तो बड़ी विपत्ति में फँस गया। कल से उनके कलेजे में दर्द हो रहा है। कुछ बुद्धि काम नहीं करती। कहती हैं, ऐसा दर्द पहले कभी नहीं हुआ था।

भोलानाथ ने कुछ बहुत हमदर्दी न दिखायी।

सेठजी यहाँ से उठ कर अपने दूसरे मित्र लाला फागमल के पास पहुँचे, और उनसे भी लगभग इन्हीं शब्दों में यह शोक-सम्वाद कहा।

फागमल बड़ा शोहदा था। मुसकरा कर बोला—मुझे तो आपकी शरारत मालूम होती है।

सेठजी की बाँछें खिल गयीं। उन्होंने कहा—मैं अपना दुःख सुना रहा हूँ और तुम्हें दिल्लगी सूझती है। जरा भी आदमीयत तुममें नहीं है।

'मैं दिल्लगी नहीं कर रहा हूँ। इसमें दिल्लगी की क्या बात है? वे हैं कमसिन, कोमलांगी, आप ठहरे पुराने लठैत, दंगल के पहलवान। बस! अगर यह बात न निकले, तो मूँछें मुड़ा लूँ।'

सेठजी की आँखें जगमगा उठीं। मन में यौवन की भावना प्रबल हो उठी और उसके साथ ही मुख पर भी यौवन की झलक आ गयी। छाती जैसे कुछ फैल गयी। चलते समय उनके पग कुछ अधिक मजबूती से ज़मीन पर पड़ने लगे, और सिर की टोपी भी न जाने कैसे बाँकी हो गयी। आकृति से बाँकपन की शान बरसने लगी।

५

जुगल ने आशा को सिर से पाँव तक जगमगाते देखकर कहा—बस बहूजी,

आप इसी तरह पहने-ओढ़े रहा करें। आज मैं आपको चूल्हे के पास न आने दूँगा।

आशा ने नयन-बाण चला कर कहा—क्यों, आज यह नया हुक्म क्यों? पहले तो तुमने कभी मना नहीं किया।

'आज की बात दूसरी है।'

'जरा सुनूँ, क्या बात है?'

'मैं डरता हूँ, आप कहीं नाराज न हो जायँ?'

'नहीं-नहीं, कहो, मैं नाराज न होऊँगी।'

'आज आप बहुत सुन्दर लग रही हैं।'

लाला डंगामल ने असंख्य बार आशा के रूप और यौवन की प्रशंसा की थी; मगर उनकी प्रशंसा में उसे बनावट की गन्ध आती थी। वह शब्द उनके मुख से निकल कर कुछ ऐसे लगते थे, जैसे कोई पंगु दौड़ने की चेष्टा कर रहा हो। जुगल के इन सीधे शब्दों में एक उन्माद था, नशा था, एक चोट थी! आशा की सारी देह प्रकम्पित हो गयी।

'तुम मुझे नजर लगा दोगे जुगल, इस तरह क्यों घूरते हो?'

'जब यहाँ से चला जाऊँगा, तब आपकी बहुत याद आयेगी।'

'रसोई पका कर तुम सारे दिन क्या किया करते हो! दिखायी नहीं देते!'

'सरकार रहते हैं, इसीलिए नहीं आता। फिर अब तो मुझे जवाब मिल रहा है। देखिए, भगवान् कहाँ ले जाते हैं।'

आशा की मुख-मुद्रा कठोर हो गयी। उसने कहा—कौन तुम्हें जवाब देता है?

'सरकार ही तो कहते हैं, तुझे निकाल दूँगा।'

'अपना काम किये जाओ, कोई नहीं निकालेगा। अब तो तुम फुलके भी अच्छे बनाने लगे।'

'सरकार हैं बड़े गुस्सेवर।'

'दो-चार दिन में उनका मिजाज ठीक किये देती हूँ।'

'आपके साथ चलते हैं तो आपके बाप-से लगते हैं।'

'तुम बड़े मुँहफट हो। खबरदार, जबान सँभाल कर बातें किया करो।'

किन्तु अप्रसन्नता का यह झीना आवरण उसके मनोरहस्य को न छिपा सका। वह प्रकाश की भाँति उसके अन्दर से निकला पड़ता था।

जुगल ने फिर उसी निर्भीकता से कहा—मेरा मुँह कोई बन्द कर ले, यहाँ तो सभी यही कहते हैं। मेरा ब्याह कोई ५० साल की बुढ़िया से कर दे, तो मैं घर छोड़ कर भाग जाऊँ। या तो खुद जहर खा लूँ या उसे जहर देकर मार डालूँ। फाँसी ही तो होगी?

आशा उस कृत्रिम क्रोध को कायम न रख सकी। जुगल ने उसकी हृदय-वीणा के तारों पर मिज़राब की ऐसी चोट मारी थी कि उसके बहुत ज़ब्त करने पर भी मन की व्यथा बाहर निकल आयी। उसने कहा—भाग्य भी तो कोई वस्तु है।

'ऐसा भाग्य जाय भाड़ में।'

'तुम्हारा ब्याह किसी बुढ़िया से ही करूँगी, देख लेना।'

'तो मैं भी ज़हर खा लूँगा। देख लीजिएगा।'

'क्यों, बुढ़िया तुम्हें जवान स्त्री से ज्यादा प्यार करेगी, ज्यादा सेवा करेगी। तुम्हें सीधे रास्ते पर रखेगी।'

'यह सब माँ का काम है। बीबी जिस काम के लिए है, उसी काम के लिए है।'

'आखिर बीबी किस काम के लिए है?'

मोटर की आवाज़ आयी। न-जाने कैसे आशा के सिर का अञ्चल खिसक-कर कंधे पर आ गया। उसने जल्दी से अंचल खींच कर सिर पर कर लिया और यह कहती हुई अपने कमरे की ओर लपकी कि लाला भोजन करके चले जायँ, तब आना।

———

शूद्रा

माँ और बेटी एक झोपड़ी में गाँव के उस सिरे पर रहती थीं। बेटी बाग से पत्तियाँ बटोर लाती, माँ भाड़ झोंकती। यही उनकी जीविका थी। सेर-दो-सेर अनाज मिल जाता था, खाकर पड़ रहती थीं। माता विधवा थी, बेटी क्वाँरी, घर में और कोई आदमी न था। माँ का नाम गंगा था, बेटी का गौरा।

गंगा को कई साल से यह चिन्ता लगी हुई थी कि कहीं गौरा की सगाई हो जाय, लेकिन कहीं बात पक्की न होती थी। अपने पति के मर जाने के बाद गंगा ने कोई दूसरा घर न किया था, न कोई दूसरा धन्धा ही करती थी। इससे लोगों को संदेह हो गया था कि आखिर इसका गुजर कैसे होता है? और लोग तो छाती फाड़-फाड़कर काम करते हैं, फिर भी पेट-भर अन्न मयस्सर नहीं होता। यह स्त्री कोई धंधा नहीं करती, फिर भी माँ बेटी आराम से रहती हैं, किसी के सामने हाथ नहीं फैलातीं। इसमें कुछ-न-कुछ रहस्य अवश्य है। धीरे-धीरे यह संदेह और भी दृढ़ हो गया, और वह अब तक जीवित था। बिरादरी में कोई गौरा से सगाई करने पर राजी न होता था। शूद्रों की बिरा-दरी बहुत छोटी होती है। दस-पाँच कोस से अधिक उसका क्षेत्र नहीं होता। इसलिए एक दूसरे के गुण-दोष किसी से छुपे नहीं रहते, न उन पर परदा ही डाला जा सकता है।

इस भ्रान्ति को शान्त करने के लिए माँ ने बेटी के साथ कई तीर्थ-यात्राएँ कीं। उड़ीसा तक हो आयी, लेकिन संदेह न मिटा। गौरा युवती थी, सुन्दरी थी, पर उसे किसी ने कुएँ पर या खेतों में हँसते-बोलते नहीं देखा। उसकी निगाह कभी ऊपर उठती ही न थी। लेकिन ये बातें भी संदेह को और पुष्ट करती थीं। अवश्य कोई-न-कोई रहस्य है। कोई युवती इतनी सती नहीं हो सकती। कुछ गुप-चुप की बात अवश्य है।

योंही दिन गुजरते जाते थे। बुढ़िया दिनों दिन चिन्ता से घुल रही थी। उधर सुन्दरी की मुख-छवि दिनों दिन निखरती जाती थी। कली खिल कर फूल हो रही थी।

२

एक दिन एक परदेशी गाँव से होकर निकला। दस-बारह कोस से आ रहा था। नौकरी की खोज में कलकत्ते जा रहा था। रात हो गयी। किसी कहार का घर पूछता हुआ गंगा के घर आया। गंगा ने उसका खूब आदर-सत्कार किया, उसके लिए गेहूँ का आटा लायी, घर से बरतन निकालकर दिये। कहार ने पकाया, खाया, लेटा, बातें होने लगीं। सगाई की चर्चा छिड़ गयी। कहार जवान था, गौरा पर निगाह पड़ी, उसका रंग-ढंग देखा, उसकी सलज्ज छवि आँखों में खुब गयी। सगाई करने पर राजी हो गया। लौटकर घर चला गया। दो:चार गहने अपनी बहन के यहाँ से लाया; गाँव के बजाज ने कपड़े उधार दे दिये। दो-चार भाई-बन्दों के साथ सगाई करने आ पहुँचा। सगाई हो गयी, यहीं रहने लगा। गंगा बेटी और दामाद को आँखों से दूर न कर सकती थी।

परन्तु दस ही पाँच दिनों में मँगरू के कानों में इधर-उधर की बातें पड़ने लगीं। सिर्फ बिरादरी ही के नहीं, अन्य जाति वाले भी उसके कान भरने लगे। ये बातें सुन-सुन कर मँगरू पछताता था कि नाहक यहाँ फँसा। पर गौरा को छोड़ने का खयाल करके उसका दिल काँप उठता था।

एक महीने के बाद मँगरू अपनी बहन के गहने लौटाने गया। खाना खाने के समय उसका बहनोई उसके साथ भोजन करने न बैठा। मँगरू को कुछ संदेह हुआ, बहनोई से बोला—तुम क्यों नहीं आते?

बहनोई ने कहा—तुम खा लो, मैं फिर खा लूँगा।

मँगरू—बात क्या है? तुम खाने क्यों नहीं उठते?

बहनोई—जब तक पंचाइत न होगी, मैं तुम्हारे साथ कैसे खा सकता हूँ? तुम्हारे लिए बिरादरी भी न छोड़ दूँगा। किसी से पूछा न गाछा, जाकर एक हरजाई से सगाई कर ली।

मँगरू चौके पर से उठ आया, मिर्जई पहनी और ससुराल चला आया। बहन खड़ी रोती रह गयी।

उसी रात को वह किसी से कुछ कहे-सुने बगैर, गौरा को छोड़कर कहीं चला गया। गौरा नींद में मग्न थी। उसे क्या खबर थी कि वह रत्न, जो मैंने इतनी तपस्या के बाद पाया है, मुझे सदा के लिए छोड़े चला जा रहा है।

३

कई साल बीत गये। मँगरू का कुछ पता न चला। कोई पत्र तक न आया, पर गौरा बहुत प्रसन्न थी। वह माँग में सेंदुर डालती, रंग-बिरंग के कपड़े पहनती और अधरों पर मिस्सी के धड़े जमाती। मँगरू भजनों की एक पुरानी किताब छोड़ गया था। उसे कभी-कभी पढ़ती और गाती। मँगरू ने उसे हिन्दी सिखा दी थी। टटोल-टटोल कर भजन पढ़ लेती थी।

पहले वह अकेली बैठी रहती थी। गांव की और स्त्रियों के साथ बोलते-चालते उसे शर्म आती थी। उसके पास वह वस्तु न थी, जिस पर दूसरी स्त्रियाँ गर्व करती थीं। सभी अपने-अपने पति की चर्चा करतीं। गौरा के पति कहाँ था? वह किसकी बातें करती! अब उसके भी पति था। अब वह अन्य स्त्रियों के साथ इस विषय पर बात-चीत करने की अधिकारिणी थी। वह भी मँगरू की चर्चा करती, मँगरू कितना स्नेह-शील है, कितना सज्जन, कितना वीर। पति-चर्चा से उसे कभी तृप्ति ही न होती थी।

स्त्रियाँ पूछतीं—मँगरू तुम्हें छोड़ कर क्यों चले गये?

गौरा कहती—क्या करते? मर्द कभी ससुराल में पड़ा रहता है। देश-परदेश में निकल कर चार पैसे कमाना ही तो मर्दों का काम है, नहीं तो मान-मरजाद का निर्वाह कैसे हो?

जब कोई पूछता, चिट्ठी-पत्री क्यों नहीं भेजते? तो हँसकर कहती—अपना पता-ठिकाना बताने में डरते हैं। जानते हैं न कि गौरा आकर सिर पर सवार हो जायगी। सच कहती हूँ, उनका पता ठिकाना मालूम हो जाय, तो यहाँ मुझसे एक दिन भी न रहा जाय। वह बहुत अच्छा करते हैं कि मेरे पास चिट्ठी-पत्री नहीं भेजते। बेचारे परदेश में कहाँ पर गिरस्ती सँभालते फिरेंगे?

एक दिन किसी सहेली ने कहा—हम न मानेंगे, तुमसे जरूर मँगरू से झगड़ा हो गया है, नहीं तो बिना कुछ कहे-सुने क्यों चले जाते?

गौरा ने हँस कर कहा—बहन, अपने देवता से भी कोई झगड़ा करता है? वह मेरे मालिक हैं, भला मैं उनसे झगड़ा करूँगी? जिस दिन झगड़े की नौबत आयेगी, कहीं डूब मरूँगी। मुझसे कहके जाने पाते? मैं उनके पैरों से लिपट न जाती।

४

एक दिन कलकत्ते से एक आदमी आकर गंगा के घर ठहरा। पास ही

के किसी गाँव में अपना घर बताया। कलकत्ते में वह मँगरू के पड़ोस ही में रहता था। मँगरू ने उससे गौरा को अपने साथ लाने को कहा था। दो साड़ियाँ और राह-खर्च के लिये रुपये भी भेजे थे। गौरा फूली न समायी। बूढ़े ब्राह्मण के साथ चलने को तैयार हो गयी। चलते वक्त वह गाँव की सब औरतों से गले मिली। गंगा उसे स्टेशन तक पहुँचाने गयी। सब कहते थे, बेचारी लड़की के भाग जाग गये, नहीं तो यहाँ कुढ़-कुढ़ कर मर जाती।

रास्ते-भर गौरा सोचती जाती थी—न जाने वह कैसे हो गये होंगे। अब तो मूँछें अच्छी तरह निकल आयी होंगी। परदेश में आदमी सुख से रहता है। देह भर आयी होगी। बाबू साहब हो गये होंगे। मैं पहले दो-तीन दिन उनसे बोलूँगी नहीं। फिर पूछूँगी—तुम मुझे छोड़ कर क्यों चले गये? अगर किसी ने मेरे बारे में कुछ बुरा-भला कहा ही था, तो तुमने उसका विश्वास क्यों कर लिया? तुम अपनी आँखों से न देख कर दूसरों के कहने पर क्यों गये? मैं भली हूँ या बुरी हूँ, हूँ तो तुम्हारी, तुमने मुझे इतने दिनों रुलाया क्यों? तुम्हारे बारे में अगर इसी तरह कोई मुझसे कहता, तो क्या मैं तुमको छोड़ देती? जब तुमने मेरी बाँह पकड़ ली, तो तुम मेरे हो गये। फिर तुममें लाख ऐब हों, मेरी बला से। चाहे तुम तुर्क ही क्यों न हो जाओ, मैं तुम्हें छोड़ नहीं सकती। तुम क्यों मुझे छोड़ कर भागे? क्या समझते थे, भागना सहज है? आखिर झख मार कर बुलाया कि नहीं? कैसे न बुलाते? मैंने तो तुम्हारे ऊपर दया की, कि चली आयी, नहीं तो कह देती कि मैं ऐसे निर्दयी के पास नहीं जाती, तो तुम आप दौड़े आते। तप करने से देवता भी मिल जाते हैं, आकर सामने खड़े हो जाते हैं; तुम कैसे न आते? वह बार-बार उद्विग्न हो-होकर बूढ़े ब्राह्मण से पूछती, अब कितनी दूर है? धरती के ओर पर रहते हैं क्या? और भी कितनी ही बातें वह पूछना चाहती थी, लेकिन संकोच-वश न पूछ सकती थी। मन-दी-मन अनुमान करके अपने को संतुष्ट कर लेती थी। उनका मकान बड़ा-सा होगा, शहर में लोग पक्के घरों में रहते हैं। जब उनका साहब इतना मानता है, तो नौकर भी होगा। मैं नौकर को भगा दूँगी। मैं दिन-भर पड़े-पड़े क्या किया करूँगी?

बीच-बीच में उसे घर की याद भी आ जाती थी। बेचारी अम्माँ रोती होंगी। अब उन्हें घर का सारा काम आप ही करना पड़ेगा। न-जाने बकरियों को चराने ले जाती हैं या नहीं। बेचारी दिन-भर में-में करती होंगी। मैं अपनी बकरियों के लिए महीने-महीने रुपये भेजूँगी। जब कलकत्ते से लौटूँगी तब सबके लिए साड़ियाँ लाऊँगी। तब मैं इस तरह थोड़े लौटूँगी। मेरे साथ बहुत-सा असबाब होगा। सबके लिए कोई-न-कोई सौगात लाऊँगी। तब तक तो बहुत-सी बकरियाँ हो जायँगी।

यही सुख स्वप्न देखते-देखते गौरा ने सारा रास्ता काट दिया। पगली क्या जानती थी कि मेरे मन कुछ और है, कर्त्ता के मन कुछ और। क्या जानती थी कि बूढ़े ब्राह्मणों के भेष में भी पिशाच होते हैं। मन की मिठाई खाने में मगन थी।

(५)

तीसरे दिन गाड़ी कलकत्ते पहुँची। गौरा की छाती धड़-धड़ करने लगी। वह यहीं कहीं खड़े होंगे। अब आते ही होंगे। यह सोच कर उसने घूँघट निकाल लिया और सँभल बैठी। मगर मँगरू वहाँ न दिखाई दिया। बूढ़ा ब्राह्मण बोला—मंगरू तो यहाँ नहीं दिखाई देता, मैं चारों ओर छान आया। शायद किसी काम में लग गया होगा, आने की छुट्टी न मिली होगी, मालूम भी तो न था कि हम लोग किस गाड़ी से आ रहे हैं। उनकी राह क्यों देखें, चलो, डेरे पर चलें।

दोनों गाड़ी पर बैठ कर चले। गौरा कभी ताँगे पर न सवार हुई थी। उसे गर्व हो रहा था कि कितने ही बाबू लोग पैदल जा रहे हैं, मैं ताँगे पर बैठी हूँ।

एक क्षण में गाड़ी मंगरू के डेरे पर पहुँच गयी। एक विशाल भवन था, अहाता साफ-सुथरा, सायबान में फूलों के गमले रखे हुए थे। ऊपर चढ़ने लगी। विस्मय, आनन्द और आशा से उसे अपनी सुधि ही न थी। सीढ़ियों पर चढ़ते-चढ़ते पैर दुखने लगे, यह सारा महल उनका है। केराया बहुत देना पड़ता होगा। रुपये को तो वह कुछ समझते ही नहीं। उसका हृदय धड़क रहा था कि कहीं मंगरू ऊपर से उतरते आ न रहे हों। सीढ़ी पर भेंट हो गयी, तो मैं क्या करूँगी? भगवान करे वह पड़े सोते हों, तब मैं जगाऊँ और वह झे

देखते ही हड़बड़ा कर उठ बैठें। आखिर सीढ़ियों का अन्त हुआ। ऊपर एक कमरे में गौरा को ले जाकर ब्राह्मण देवता ने बिठा दिया। यही मंगरू का डेरा था। मगर मंगरू यहाँ भी नदारद! कोठरी में केवल एक खाट पड़ी हुई थी। एक किनारे दो-चार बरतन रखे हुए थे। यही उनकी कोठरी है। तो मकान किसी दूसरे का है, उन्होंने यह कोठरी केराये पर ली होगी। देखती हूँ, चूल्हा ठंढा पड़ा हुआ है। मालूम होता है, रात को बाजार में पूरियाँ खाकर सो रहे होंगे। यही उनके सोने की खाट है। एक किनारे घड़ा रखा हुआ था। गौरा का मारे प्यास के तालू सूख रहा था। घड़े से पानी उँड़ेल कर पिया। एक किनारे एक झाड़ू रखा हुआ था। गौरा रास्ते की थकी थी, पर प्रेमोल्लास में थकन कहाँ? उसने कोठरी में झाड़ू लगाया, बरतनों को धो-धोकर एक जगह रखा। कोठरी की एक-एक वस्तु, यहाँ तक कि उसकी फर्श और दीवारों में उसे आत्मीयता की झलक दिखायी देती थी। उस घर में भी, जहाँ उसने अपने जीवन के २५ वर्ष काटे थे, उसे अधिकार का ऐसा गौरव-युक्त आनन्द न प्राप्त हुआ था।

मगर उस कोठरी में बैठे-बैठे उसे सन्ध्या हो गयी और मंगरू का कहीं पता नहीं। अब छुट्टी मिली होगी। साँझ को सब जगह छुट्टी होती है। अब वह आ रहे होंगे। मगर बूढ़े बाबा ने उनसे कह तो दिया ही होगा, क्या वह अपने साहब से थोड़ी देर की छुट्टी न ले सकते थे? कोई बात होगी, तभी तो नहीं आये।

अँधेरा हो गया। कोठरी में दीपक न था। गौरा द्वार पर खड़ी पति की बाट देख रही थी। जीने पर बहुत-से आदमियों के चढ़ने-उतरने की आहट मिलती थी, बार-बार गौरा को मालूम होता था कि वह आ रहे हैं, पर इधर कोई न आता था।

नौ बजे बूढ़े बाबा आये। गौरा ने समझा, मँगरू है। झपटकर कोठरी के बाहर निकल आयी। देखा तो ब्राह्मण! बोली—वह कहाँ रह गये?

बूढ़ा—उनकी तो यहाँ से बदली हो गयी। दफ्तर में गया था तो मालूम हुआ कि वह कल अपने साहब के साथ यहाँ से कोई आठ दिन की राह पर चले गये। उन्होंने साहब से बहुत हाथ-पैर जोड़े कि मुझे दस दिन की मुहलत दे दीजिए, लेकिन साहब ने एक न मानी। मँगरू यहाँ लोगों से कह गये हैं कि

घर के लोग आयें तो मेरे पास भेज देना। अपना पता दे गये हैं। कल मैं तुम्हें यहाँ से जहाज पर बैठा दूँगा। उस जहाज पर हमारे देश के और भी बहुत से आदमी होंगे; इसलिए मार्ग में कोई कष्ट न होगा।

गौरा ने पूछा—कै दिन में जहाज पहुँचेगा?

बूढ़ा—आठ-दस दिन से कम न लगेंगे, मगर घबराने की कोई बात नहीं। तुम्हें किसी बात की तकलीफ न होगी।

(६)

अब तक गौरा को अपने गाँव लौटने की आशा थी। कभी-न-कभी वह अपने पति को वहाँ अवश्य खींच ले जायगी। लेकिन जहाज पर बैठकर उसे ऐसा मालूम हुआ कि अब फिर माता को न देखूँगी, फिर गाँव के दर्शन न होंगे, देश से सदा के लिए नाता टूट रहा है। वह देर तक घाट पर खड़ी रोती रही, जहाज और समुद्र देखकर उसे भय हो रहा था। हृदय दहल जाता था।

शाम को जहाज खुला। उस समय गौरा का हृदय एक अज्ञय भय से चंचल हो उठा। थोड़ी देर के लिए नैराश्य ने उसपर अपना आतङ्क जमा लिया। न-जाने किस देश जा रही हूँ; उनसे वहाँ भेंट भी होगी या नहीं। उन्हें कहाँ खोजती फिरूँगी, कोई पता-ठिकाना भी तो नहीं मालूम। बार-बार पछताती थी कि एक दिन पहिले क्यों न चली आयी। कलकत्ते में भेंट हो जाती तो मैं उन्हें वहाँ कभी न जाने देती।

जहाज पर और भी कितने ही मुसाफिर थे, कुछ स्त्रियाँ भी थीं। उनमें बराबर गाली-गलौज होती रहती थी। इसलिए गौरा को उनसे बातें करने की इच्छा न होती थी। केवल एक स्त्री उदास दिखाई देती थी। रंग-ढंग से वह किसी भले घर की स्त्री मालूम होती थी। गौरा ने उससे पूछा—तुम कहाँ जाती हो बहन?

उस स्त्री की बड़ी-बड़ी आँखें सजल हो गयीं। बोली, कहाँ बताऊँ बहिन, कहाँ जा रही हूँ। जहाँ भाग्य लिये जाता है, वहीं जा रही हूँ। तुम कहाँ जाती हो?

गौरा—मैं तो अपने मालिक के पास जा रही हूँ। जहाँ यह जहाज रुकेगा, वह वहीं नौकर हैं। मैं कल आ जाती तो उनसे कलकत्ते में ही भेंट हो जाती।

२२

आने में देर हो गयी। क्या जानती थी कि वह इतनी दूर चले जायँगे, नहीं तो क्यों देर करती!

स्त्री—अरे बहन, कहीं तुम्हें भी तो कोई बहकाकर नहीं लाया है? तुम घर से किसके साथ आयी हो?

गौरा—मेरे आदमी ने तो कलकत्ता से आदमी भेजकर मुझे बुलाया था।

स्त्री—वह आदमी तुम्हारी जान-पहचान का था?

गौरा—नहीं, उसी तरफ का एक बूढ़ा ब्राह्मण था।

स्त्री—वही लम्बा-सा, दुबला-पतला लकलक बुड्ढा, जिसकी एक आँख में फूली पड़ी हुई है।

गौरा—हाँ, हाँ वही। क्या तुम उसे जानती हो?

स्त्री—उसी दुष्ट ने तो मेरा भी सर्वनाश किया। ईश्वर करे, उसकी सातों पुश्तें नरक भोगें, उसका निर्वंश हो जाय, कोई पानी देनेवाला भी न रहे, कोढ़ी होकर मरे। मैं अपना वृत्तान्त सुनाऊँ तो तुम समझोगी कि झूठ है। किसी को विश्वास न आयेगा। क्या कहूँ, बस यही समझ लो कि इसके कारन मैं न घर की रह गयी, न घाट की। किसी को मुँह नहीं दिखा सकती। मगर जान तो बड़ी प्यारी होती है। मिरिच के देश जा रही हूँ कि वहीं मेहनत मजूरी करके जीवन के दिन काटूँ।

गौरा के प्राण नहों में समा गये। मालूम हुआ जहाज अथाह जल में डूबा जा रहा है। समझ गयी कि बूढ़े ब्राह्मण ने दगा की। अपने गाँव में सुना करती थी कि गरीब लोग मिरिच में भरती होने के लिए जाया करते हैं। मगर जो वहाँ जाता है, वह फिर नहीं लौटता। हा भगवान, तुमने मुझे किस पाप का यह दण्ड दिया? बोली—यह सब क्यों लोगों को इस तरह छलकर मिरिच भेजते हैं?

स्त्री—रुपये के लोभ से, और किसलिए? सुनती हूँ, आदमी पीछे इन सभों को कुछ रुपये मिलते हैं।

गौरा—तो बहन वहाँ हमें क्या करना पड़ेगा?

स्त्री—मजूरी।

गौरा सोचने लगी—अब क्या करूँ। वह आशा-नौका, जिस पर बैठी हुई वह चली जा रही थी, टूट गयी थी, और अब समुद्र की लहरों के सिवा उसकी रक्षा करने वाला कोई न था। जिस आधार पर उसने अपना जीवन-भवन बनाया था, वह जलमग्न हो गया। अब उसके लिए जल के सिवा और कहाँ आश्रय है? उसको अपनी माता की, अपनी घर की, अपने गाँव की सहेलियों की याद आयी, और ऐसी घोर मर्म वेदना होने लगी, मानों कोई सर्प अन्तस्तल में बैठा हुआ बार-बार डस रहा हो। भगवान्! अगर मुझे यही यातना देनी थी तो तुमने मुझे जन्म ही क्यों दिया था? तुम्हें दुखिया पर दया नहीं आती? जो पिसे हुए हैं उन्हीं को पीसते हो! करुण स्वर से बोली—तो अब क्या करना होगा बहन?

स्त्री—यह तो वहाँ पहुँच कर मालूम होगा। अगर मजूरी ही करनी पड़े तो कोई बात नहीं, लेकिन अगर किसी ने कुदृष्टि से देखा तो मैंने निश्चय कर लिया है कि या तो उसी के प्राण ले लूँगी या अपने प्राण दे दूँगी।

यह कहते-कहते उसे अपना वृत्तान्त सुनाने की वह उत्कट इच्छा हुई, जो दुखियों को हुआ करती है। बोली—मैं बड़े घर की बेटी और उससे भी बड़े घर की बहू हूँ, पर अभागिनी! विवाह के तीसरे ही साल पतिदेव का देहान्त हो गया। चित्त की कुछ ऐसी दशा हो गयी कि नित्य मालूम होता कि वह मुझे बुला रहे हैं। पहले तो आँख झपकते ही उनकी मूर्ति सामने आ जाती थी, लेकिन फिर तो यह दशा हो गयी कि जाग्रत दशा में भी रह-रह कर उनके दर्शन होने लगे। बस यही जान पड़ता था कि वह साक्षात् खड़े बुला रहे हैं। किसी से शर्म के मारे कहती न थी, पर मन में यह शङ्का होती थी कि जब उनका देहावसान हो गया है तो वह मुझे दिखाई कैसे देते हैं? मैं इसे भ्रान्ति समझकर चित्त को शान्त न कर सकती थी। मन कहता था, जो वस्तु प्रत्यक्ष दिखायी देती है, वह मिल क्यों नहीं सकती? केवल वह ज्ञान चाहिए। साधु-महात्माओं के सिवा ज्ञान और कौन दे सकता है? मेरा तो अब भी विश्वास है कि अभी ऐसी क्रियाएँ हैं, जिनसे हम मरे हुए प्राणियों से बातचीत कर सकते हैं, उनको स्थूल रूप में देख सकते हैं। महात्माओं की खोज में रहने लगी। मेरे यहाँ अक्सर साधु-सन्त आते थे, उनसे एकान्त में इस विषय में बातें किया करती थी, पर वे लोग सदुपदेश देकर मुझे टाल देते थे। मुझे

सदुपदेशों की जरूरत न थी। मैं वैधव्य-धर्म खूब जानती थी। मैं तो वह ज्ञान चाहती थी जो जीवन और मरण के बीच का परदा उठा दे। तीन साल तक मैं इसी खेल में लगी रही। दो महीने होते हैं, वही बूढ़ा ब्राह्मण संन्यासी बना हुआ मेरे यहाँ जा पहुँचा। मैंने इससे वही भिक्षा माँगी। इस धूर्त ने कुछ ऐसा मायाजाल फैलाया कि मैं आँखें रहते हुए भी फँस गयी। अब सोचती हूँ तो अपने ऊपर आश्चर्य होता है कि मुझे उसकी बातों पर इतना विश्वास क्यों हुआ ! मैं पति-दर्शन के लिए सब कुछ झेलने को, सब कुछ करने को तैयार थी। इसने मुझे रात को अपने पास बुलाया। मैं घरवालों से पड़ोसिन के घर जाने का बहाना करके इसके पास गयी। एक पीपल से इसकी धूईं जल रही थी। उस विमल चाँदनी में यह धूर्त जटाधारी ज्ञान और योग का देवता-सा मालूम होता था। मैं आकर धूईं के पास खड़ी हो गयी। उस समय यदि बाबाजी मुझे आग में कूद पड़ने की आज्ञा देते, तो मैं तुरन्त कूद पड़ती। इसने मुझे बड़े प्रेम से बैठाया और मेरे सिर पर हाथ रख कर न-जाने क्या कर दिया दिया कि मैं बेसुध हो गयी। फिर मुझे कुछ नहीं मालूम कि मैं कहाँ गयी, क्या हुआ। जब मुझे होश आया तो मैं रेल पर सवार थी। जी में आया कि चिल्लाऊँ, पर यह सोच कर कि अब गाड़ी रुक भी गयी, और मैं उतर भी पड़ी तो घर में घुसने न पाऊँगा, मैं चुपचाप बैठी रह गई। मैं परमात्मा की दृष्टि में निर्दोष थी, पर संसार की दृष्टि में कलंकित हो चुकी थी। रात को किसी युवती का घर से निकल जाना कलंकित करने के लिए काफी था। जब मुझे मालूम हो गया कि सब मुझे मिर्च के टापू में भेज रहे हैं तो मैंने जरा भी आपत्ति नहीं की। मेरे लिए अब सारा संसार एक-सा है। जिसका संसार में कोई न हो, उसके लिए देश-परदेश दोनों बराबर हैं। हाँ, यह पक्का निश्चय कर चुकी हूँ कि मरते दम तक अपने सत की रक्षा करूँगी। विधि के हाथ में मृत्यु से बढ़ कर कोई यातना नहीं। विधवा के लिए मृत्यु का क्या भय। उसका तो जीना और मरना दोनों बराबर है। बल्कि मर जाने से जीवन की विपत्तियों का तो अन्त हो जायगा।

गौरा ने सोचा—इस स्त्री में कितना धैर्य और साहस है। फिर मैं क्यों इतनी कातर और निराश हो रही हूँ ? जब जीवन की अभिलाषाओं का अन्त हो गया

तो जीवन के अन्त का क्या डर। बोली—बहन, हम और तुम एक ही जगह रहेंगी। मुझे तो अब तुम्हारा ही भरोसा है।

स्त्री ने कहा—भगवान् का भरोसा रखो और मरने से मत डरो।

सघन अन्धकार छाया हुआ था। ऊपर काला आकाश था, नीचे काला जल। गौरा आकाश की ओर ताक रही थी। उसकी संगिनी जल की ओर। उसके सामने आकाश के कुसुम थे, इसके चारों ओर अनन्त, अखण्ड, अपार अन्धकार था !

जहाज से उतरते ही एक आदमी ने यात्रियों के नाम लिखने शुरू किये। इसका पहनावा तो अंग्रेजी था, पर बातचीत से हिन्दुस्तानी मालूम होता था। गौरा सिर झुकाये अपनी संगिनी के पीछे खड़ी थी। उस आदमी की आवाज सुनकर वह चौंक पड़ी। उसने दबी आँखों से उसकी ओर देखा। उसके समस्त शरीर में सनसनी दौड़ गयी। क्या स्वप्न तो नहीं देख रही हूँ। आँखों पर विश्वास न आया; फिर उसपर निगाह डाली। उसकी छाती वेग से धड़कने लगी। पैर थर-थर काँपने लगे। ऐसा मालूम होने लगा, मानो चारों ओर जल-ही जल है, और उसमें बही जा रही हूँ। उसने अपनी संगिनी का हाथ पकड़ लिया, नहीं तो जमीन में गिर पड़ती। उसके सम्मुख वही पुरुष खड़ा था, जो उसका प्राणाधार था और जिससे इस जीवन में भेंट होने की उसे लेशमात्र भी आशा न थी। यह मँगरू था, इसमें जरा भी सन्देह न था। हाँ, उसकी सूरत बदल गयी थी। यौवन-काल का वह कान्तिमय साहस, सदय छबि, नाम को भी न थी। बाल खिचड़ी हो गये थे; गाल पिचके हुए, लाल आँखों से कुवासना और कठोरता झलक रही थी। पर था वह मँगरू। गौरा के जी में प्रबल इच्छा हुई कि स्वामी के पैरों से लिपट जाऊँ, चिल्लाने को जी चाहा, पर संकोच ने मन को रोका। बूढ़े ब्राह्मण ने बहुत ठीक कहा था। स्वामी ने अवश्य मुझे बुलाया था और आने से पहले यहाँ चले आये। उसने अपनी संगिनी के कान में कहा—बहन, तुम उस ब्राह्मण को व्यर्थ ही बुरा कह रही थी। यही तो वह हैं जो यात्रियों के नाम लिख रहे हैं।

स्त्री—सच, खूब पहचानती हो ?

गौरा—बहन, क्या इसमें भी धोखा हो सकता है ?

स्त्री—तब तो तुम्हारे भाग जग गये, मेरी भी सुधि लेना।

गौरा—भला, बहन ऐसा भी हो सकता है कि यहाँ तुम्हें छोड़ दूँ।

मँगरू यात्रियों से बात-बात पर बिगड़ता था, बात-बात पर गालियाँ देता था; कई आदमियों को ठोकर मारे और कई को केवल अपने गाँव का जिला न बता सकने के कारण धक्का देकर गिरा दिया। गौरा मन-ही-मन गड़ी जाती थी। साथ ही अपने स्वामी के अधिकार पर उसे गर्व भी हो रहा था। आखिर मँगरू उसके सामने आकर खड़ा हो गया कौर कुचेष्टा-पूर्ण नेत्रों से देखकर बोला—तुम्हारा क्या नाम है?

गौरा ने कहा—गौरा।

मँगरू चौंक पड़ा, फिर बोला—घर कहाँ है?

गौरा ने कहा—मदनपुर; जिला बनारस।

यह कहते-कहते उसे हँसी आ गयी। मँगरू ने अबकी उसकी ओर ध्यान से देखा, तब लपककर उसका हाथ पकड़ लिया और बोला—गौरा! तुम यहाँ कहाँ? मुझे पहचानती हो?

गौरा रो रही थी, मुँह से बात न निकली।

मँगरू फिर बोला—तुम यहाँ कैसे आयीं?

गौरा खड़ी हो गयी, आँसू पोंछ डाले और मँगरू की ओर देखकर बोली—तुम्हीं ने तो बुला भेजा था।

मंगरू—मैंने! मैं तो सात साल से यहाँ हूँ।

गौरा—तुमने उस बूढ़े ब्राह्मण से मुझे लाने को नहीं कहा था?

मँगरू—कह तो रहा हूँ, मैं सात साल से यहाँ हूँ और मरने पर ही यहाँ से जाऊँगा। भला, तुम्हें क्यों बुलाता।

गौरा को मँगरू से इस निष्ठुरता की आशा न थी। उसने सोचा, अगर वह सत्य भी हो कि इन्होंने मुझे नहीं बुलाया, तो भी इन्हें मेरा यों अपमान न करना चाहिए था। क्या यह समझते हैं कि मैं इनकी रोटियों पर आयी हूँ? यह तो इतने ओछे स्वभाव के न थे। शायद दरजा पाकर इन्हें मद हो गया है। नारि-सुलभ अभिमान से गरदन उठाकर उसने कहा—तुम्हारी इच्छा हो, तो अब से लौट जाऊँ, तुम्हारे ऊपर भार बनना नहीं चाहती?

मगरू कुछ लज्जित होकर बोला—अब तुम यहाँ से लौट नहीं सकती, गौरा? यहाँ आकर बिरला ही कोई लौटता है।

यह कहकर वह कुछ देर चिन्ता में मग्न खड़ा रहा, मानो संकट में पड़ा हुआ हो कि क्या करना चाहिए। उसकी कठोर मुखाकृति पर दीनता का रंग झलक पड़ा। तब कातर-स्वर से बोला—जब आ गयी हो तो रहो। जैसी कुछ पड़ेगी, देखी जायगी।

गौरा—जहाज फिर कब लौटेगा?

मँगरू—तुम यहाँ से पाँच बरस के पहले नहीं जा सकतीं।

गौरा—क्यों, क्या कुछ जबरदस्ती है?

मँगरू—हाँ, यहाँ का यही हुक्म है।

गौरा—तो फिर मैं अलग मजूरी करके अपना पेट पालूँगी।

मँगरू ने सजल-नेत्र होकर कहा—जब तक मैं जीता हूँ, तुम मुझसे अलग नहीं रह सकती।

गौरा—तुम्हारे ऊपर भार बनकर न रहूँगी।

मँगरू—मैं तुम्हें भार नहीं समझता गौरा, लेकिन यह जगह तुम-जैसी देवियों के रहने लायक नहीं है, नहीं तो अब तक मैंने तुम्हें कब का बुला लिया होता। वही बूढ़ा आदमी जिसने तुम्हें बहकाया, मुझे घर से आते समय पटने में मिल गया और झाँसे देकर मुझे यहाँ भरती कर दिया। तब से यहीं पड़ा हुआ हूँ। चलो, मेरे घर में रहो; वहाँ बातें होंगी। यह दूसरी औरत कौन है?

गौरा—यह मेरी सखी हैं। इन्हें भी बूढ़ा बहका लाया है।

मँगरू—यह तो किसी कोठी में जायँगी? इन सब आदमियों की बाँट होगी। जिसके हिस्से में जितने आदमी आयेंगे, उतने हरएक कोठी में भेजे जायँगे।

गौरा—यह तो मेरे साथ रहना चाहती हैं।

मँगरू—अच्छी बात है, इन्हें भी लेती चलो।

यात्रियों के नाम तो लिखे ही जा चुके थे, मँगरू ने उन्हें एक चपरासी को सौंपकर दोनों औरतों के साथ घर की राह ली। दोनों ओर सघन वृक्षों की कतारें थीं। जहाँ तक निगाह जाती थी, ऊख ही ऊख दिखायी देती थी। समुद्र की

ओर से शीतल, निर्मल वायु के झोंके आ रहे थे। अत्यन्त सुरम्य दृश्य था। पर मँगरू की निगाह उस ओर न थी। वह भूमि की ओर ताकता, सिर झुकाये, सन्दिग्ध चाल से चला जा रहा था, मानो मन-ही-मन कोई समस्या हल कर रहा है।

थोड़ी ही दूर गये थे कि सामने से दो आदमी आते हुए दिखायी दिये। समीप आकर दोनों रुक गये और एक ने हँसकर कहा—मँगरू, इनमें से एक हमारी है।

दूसरा बोला—और दूसरी मेरी।

मँगरू का चेहरा तमतमा उठा था। भीषण क्रोध से काँपता हुआ बोला—यह दोनों मेरे घर की औरतें हैं। समझ गये?

इन दोनों ने जोर से कहकहा मारा और एक ने गौरा के समीप आकर उसका हाथ पकड़ने की चेष्टा करके कहा—यह मेरी है। चाहे तुम्हारे घर की हो, चाहे बाहर की। बचा, हमें चकमा देते हो।

मँगरू—कासिम, इन्हें मत छेड़ो, नहीं तो अच्छा न होगा। मैंने कह दिया, मेरे घर की औरतें हैं।

मंगरू की आँखों से अग्नि की ज्वाला-सी निकल रही थी। वह दोनों उसके मुख का भाव देखकर कुछ सहम गये और समझ लेने की धमकी देकर आगे बढ़े। किन्तु मंगरू के अधिकार-क्षेत्र से बाहर पहुँचते ही एक ने पीछे से ललकार कर कहा—देखें कहाँ लेके जाते हो।

मंगरू ने उधर ध्यान न दिया। जरा कदम बढ़ाकर चलने लगा, जैसे संध्या के एकान्त में हम कब्रिस्तान के पास से गुजरते हैं, हमें पग-पग पर यह शंका होती है कि कोई शब्द कान में न पड़ जाय, कोई सामने आकर खड़ा न हो जाय, कोई जमीन के नीचे से कफन ओढ़े उठ न खड़ा हो।

गौरा ने कहा—ये दोनों बड़े शोहदे थे।

मँगरू—और मैं किस लिए कह रहा था कि यह जगह तुम-जैसी स्त्रियों के रहने-लायक नहीं है।

सहसा दाहिनी तरफ से एक अंग्रेज घोड़ा दौड़ाता हुआ आ पहुँचा और मँगरू से बोला—वेल जमादार, ये दोनों औरतें हमारी कोठी में रहेगा। हमारे कोठी में कोई औरत नहीं है।

मँगरू ने दोनों औरतों को अपने पीछे कर लिया और सामने खड़ा होकर बोला—साहब, ये दोनों हमारे घर की औरतें हैं।

साहब—ओ-हो! तुम झूठा आदमी। हमारे कोठी में कोई औरत नहीं और तुम दो ले जायगा। ऐसा नहीं हो सकता। (गौरा की ओर इशारा करके) इसको हमारे कोठी पर पहुँचा दो।

मँगरू ने सिर से पैर तक काँपते हुए कहा—ऐसा नहीं हो सकता।

मगर साहब आगे बढ़ गया था, उसके कान में बात न पहुँची। उसने हुक्म दे दिया था और उसकी तामील करना जमादार का काम था।

शेष मार्ग निर्विघ्न समाप्त हुआ। आगे मजूरों के रहने के मिट्टी के घर थे। द्वारों पर स्त्री-पुरुष जहाँ-तहाँ बैठे हुए थे। सभी इन दोनों स्त्रियों की ओर घूरते थे और आपस में इशारे करते हँसते थे। गौरा ने देखा, उनमें छोटे-बड़े का लिहाज नहीं है, न किसी की आँखों में शर्म है।

एक भदैसल औरत ने हाथ पर चिलम पीते हुए अपनी पड़ोसिन से कहा—चार दिन की चाँदनी, फिर अँधेरा पाख।

दूसरी अपनी चोटी गूँथती हुई बोली—कलोर हैं न!

(८)

मँगरू दिन-भर द्वार पर बैठा रहा, मानो कोई किसान अपने मटर के खेत की रखवाली कर रहा हो। कोठरी में दोनों स्त्रियाँ बैठी अपने नसीबों को रो रही थीं। इतनी देर में दोनों को यहाँ की दशा का परिचय हो गया था। दोनों भूखी-प्यासी बैठी थीं। यहाँ का रंग देखकर भूख-प्यास सब भाग गयी थी।

रात के दस बजे होंगे कि एक सिपाही ने आकर मँगरू से कहा—चलो, तुम्हें जण्ट साहब बुला रहे हैं।

मँगरू ने बैठे-बैठे कहा—देखो नब्बी, तुम भी हमारे देश के आदमी हो। कोई मौका पड़े, तो हमारी मदद करोगे न? जाकर साहब से कह दो, मँगरू कहीं गया है। बहुत होगा, जुरबाना कर देंगे।

नब्बी—न भैया, गुस्से में भरा बैठा है, पिये हुए है, कहीं मार चले, तो बस, यहाँ चमड़ा इतना मजबूत नहीं है।

मँगरू—अच्छा, तो जाकर कह दो, नहीं आता।

नब्बी—मुझे क्या, जाकर कह दूँगा, पर तुम्हारी खैरियत नहीं है।

मँगरू ने जरा देर सोच कर लकड़ी उठायी और नब्बी के साथ साहब के बँगले पर चला। यह वही साहब थे, जिनसे आज मँगरू से भेंट हुई थी। मँगरू जानता था कि साहब से बिगाड़ करके यहाँ एक क्षण भी निर्वाह नहीं हो सकता। जाकर साहब के सामने खड़ा हो गया। साहब ने दूर ही से डाँटा, वह औरत कहाँ है? तुम उसे अपने घर में क्यों रखा है?

मँगरू—हजूर, वह मेरी ब्याहता औरत है।

साहब—अच्छा, वह दूसरी कौन है?

मँगरू—वह मेरी सगी बहन है हुजूर!

साहब—हम कुछ नहीं जानता। तुमको लाना पड़ेगा। दो में से कोई, दो में से कोई।

मँगरू पैरों पर गिर पड़ा और रो-रोकर अपनी सारी रामकहानी सुना गया। पर साहब जरा भी न पसीजे। अन्त में वह बोला—हुजूर, वह दूसरी औरतों की तरह नहीं हैं। अगर यहाँ आ भी गयीं, तो प्राण दे देंगी।

साहब ने हँस कर कहा—ओ! जान देना इतना आसान नहीं है।

नब्बी—मँगरू अपनी दाँव रोते क्यों हो? तुम हमारे घर में नहीं घुसे थे! अब भी जब घात पाते हो, जा पहुँचते हो। अब रोते क्यों हो।

एजेण्ट—ओ, यह बदमाश है। अभी जाकर लाओ, नहीं तो हम तुमको हण्टरों से पीटेगा।

मँगरू—हुजूर जितना चाहे पीट लें, मगर मुझसे वह काम करने को न कहें, जो मैं जीते-जी नहीं कर सकता!

एजेण्ट—हम एक सौ हण्टर मारेगा।

मँगरू—हुजूर एक हजार हण्टर मार लें, लेकिन मेरे घर की औरतों से न बोलें।

एजेण्ट नशे में चूर था। हण्टर लेकर मँगरू पर पिल पड़ा और लगा सड़ासड़ जमाने। दस-बारह कोड़े तो मँगरू ने धैर्य के साथ सहे, फिर हाय-हाय करने लगा। देह की खाल फट गयी थी और मांस पर जब चाबुक पड़ता था, तो बहुत जब्त करने पर भी कण्ठ से आर्त्त-ध्वनि निकल आती थी और अभी एक सौ में कुल पन्द्रह चाबुक पड़े थे।

रात के दस बज गये थे। चारों ओर सन्नाटा छाया था और उस नीरव अंधकार में मँगरू का करुण-विलाप किसी पक्षी की भाँति आकाश में मँडला रहा था। वृक्षों के समूह भी हत्‌बुद्धि-से खड़े मौन रोदन की मूर्ति बने हुए थे। यह पाषाणहृदय, लम्पट, विवेक-शून्य जमादार इस समय एक अपरिचित स्त्री के सतीत्व की रक्षा करने के लिए अपने प्राण तक देने पर तैयार था, केवल इस नाते कि यह उसके पत्नी की संगिनी थी। वह समस्त संसार की नजरों में गिरना गँवारा कर सकता था, पर अपनी पत्नी की भक्ति पर अखंड राज्य करना चाहता था। इसमें अणुमात्र की कमी भी उसके लिए असह्य थी उस अलौकिक भक्ति के सामने उसके जीवन का क्या मूल्य था?

* * * *

ब्राह्मणी तो जमीन पर ही सो गयी थी, पर गौरा बैठी पति की बाट जोह रही थी। अभी तक वह उससे कोई बात न कह सकी थी। सात वर्षों की विपत्ति-कथा कहने और सुनने के लिए बहुत समय की जरूरत थी, और रात के सिवा वह समय फिर कब मिल सकता था। उसे ब्राह्मणी पर कुछ क्रोध-सा आ रहा था कि यह क्यों मेरे गले का हार हुई। इसी के कारण तो वह घर में नहीं आ रहे हैं।

यकायक वह किसी का रोना सुन कर चौंक पड़ी। भगवान्, इतनी रात गये कौन दुख का मारा रो रहा है। अवश्य कोई कहीं मर गया है। वह उठ कर द्वार पर आयी और यह अनुमान करके कि मँगरू यहाँ बैठा हुआ है, बोली—वह कौन रो रहा है! जरा जाकर देखो तो।

लेकिन जब कोई जवाब न मिला, तो वह स्वयं कान लगा कर सुनने लगी। सहसा उसका कलेजा धक् से हो गया। यह तो उन्हीं की आवाज है। अब आवाज साफ सुनायी दे रही थी। मँगरू की आवाज थी। वह द्वार के बाहर निकल आयी। उसके सामने एक गोली के टप्पे पर एजेन्ट का बँगला था। उसी तरफ से आवाज आ रही थी। कोई उन्हें मार रहा है। आदमी मार पड़ने ही पर इस तरह रोता है। मालूम होता है, वही साहब उन्हें मार रहा है। वह वहाँ खड़ी न रह सकी, पूरी शक्ति से उस बँगले की ओर दौड़ी, रास्ता साफ था। एक क्षण में वह फाटक पर पहुँच गयी। फाटक बन्द था।

उसने जोर से फाटक पर धक्का दिया, लेकिन वह फाटक न खुला और कई बार जोर-जोर से पुकारने पर भी कोई बाहर न निकला, तो वह फाटक के जँगलों पर पैर रख कर भीतर कूद पड़ी और उस पार जाते ही उसने एक रोमांचकारी दृश्य देखा। मँगरू नंगे बदन बरामदे में खड़ा था और एक अंग्रेज उसे हन्टरों से मार रहा था। गौरा की आँखों के सामने अँधेरा छा गया। वह एक छलाँग में साहब के सामने जाकर खड़ी हो गयी और मँगरू को अपने अक्षय-प्रेम-सबल हाथों से ढाँक कर बोली—सरकार, दया करो, इनके बदले मुझे जितना चाहो मार लो; पर इनको छोड़ दो।

एजेन्ट ने हाथ रोक लिया और उन्मत्त की भाँति गौरा की ओर कई कदम आकर बोला—हम इसको छोड़ दें, तो तुम मेरे पास रहेगा।

मँगरू के नथने फड़कने लगे। यह पामर, नीच, अंग्रेज मेरी पत्नी से इस तरह की बातें कर रहा है। अब तक वह जिस अमूल्य रत्न की रक्षा के लिए इतनी यातनाएँ सह रहा था, वही वस्तु साहब के हाथ में चली जा रही है, यह असह्य था। उसने चाहा कि लपक कर साहब की गरदन पर चढ़ बैठूँ, जो कुछ होना है, हो जाय। यह अपमान सहने के बाद जीकर ही क्या करूँगा! लेकिन नब्बी ने उसे तुरन्त पकड़ लिया और कई आदमियों को बुलाकर उसके हाथ-पाँव बाँध दिये। मँगरू भूमि पर छटपटाने लगा!!

गौरा रोती हुई साहब के पैरों पर गिर पड़ी और बोली—हजूर, इन्हें छोड़ दें, मुझ पर दया करें।

एजेन्ट—तुम हमारे पास रहेगा!

गौरा ने खून का घूँट पी कर कहा—हाँ, रहूँगी।

(६)

बाहर मँगरू बरामदे में पड़ा कराह रहा था। उसकी देह में सूजन थी और घावों में जलन, सारे अंग जकड़ गये थे। हिलने की भी शक्ति न थी। हवा घावों में शर के समान चुभती थी, लेकिन यह सारी व्यथा वह सह सकता था। असह्य यह था कि साहब गौरा के साथ इसी घर में विहार कर रहा है। और मैं कुछ नहीं कर सकता। उसे अपनी पीड़ा भूल-सी गयी थी, कान लगाये सुन रहा था कि उनकी बातों की भनक कान में पड़ जाय, देखूँ तो क्या बातें हो रही हैं। गौरा अवश्य चिल्ला कर भागेगी और साहब उसके पीछे

दौड़ेगा। अगर मुझसे उठा जाता, तो उस वक्त बचा को खोदकर गाड़ ही देता। लेकिन बड़ी देर हो गयी, न तो गौरा चिल्लायी; न बँगले से निकलकर भागी! वह उस सजे-सजाये कमरे में साहब के साथ बैठी सोच रही थी—क्या इसमें तनिक भी दया नहीं है? मँगरू का पीड़ा-क्रन्दन सुन-सुनकर उसके हृदय के टुकड़े हुए जाते थे। क्या इसके अपने भाई-बंद, माँ-बहन नहीं हैं? माता यहाँ होती, तो उसे इतना अत्याचार न करने देती। मेरी अम्माँ लड़कों पर कितना बिगड़ती थीं, जब वह किसी को पेड़ पर ढेले चलाते देखती थी। पेड़ में भी प्राण होते हैं। क्या इसकी माता इसे एक आदमी के प्राण लेते देखकर भी इसे मना न करती! साहब शराब पी रहा था और गौरा गोश्त काटने का छुरा हाथ में लिये खेल रही थी।

साहसा गौरा की निगाह एक चित्र की ओर गयी। उसमें एक माता बैठी हुई थी। गौरा ने पूछा—साहब, यह किसकी तसवीर है। साहब ने शराब का गिलास मेज पर रखकर कहा—ओ, वह हमारे खुदा की माँ मरियम है।

गौरा—बड़ी अच्छी तसवीर है! क्यों साहब, तुम्हारी माँ जीती हैं न!

साहब—वह मर गया। जब हम यहाँ आया, तो वह बीमार हो गया। हम उसको देख भी नहीं सका।

साहब के मुख-मण्डल पर करुणा की झलक दिखायी दी।

गौरा बोली—तब तो उन्हें बड़ा दुःख हुआ होगा। तुम्हें अपनी माता का भी प्यार नहीं था। वह रो-रोकर मर गयी और तुम देखने भी न गये! तभी तुम्हारा दिल कड़ा है।

साहब—नहीं, नहीं; हम अपनी मामा को बहुत चाहता था। वैसा औरत दुनिया में न होगा। हमारा बाप हमको बहुत छोटा-सा छोड़कर मर गया था। मामा ने कोयले की खान में मजूरी करके हमको पाला।

गौरा—तब तो वह देवी थीं। इतनी गरीबी का दुःख सहकर भी तुम्हें दूसरों पर तरस नहीं आता। क्या वह दया की देवी तुम्हारी बेदरदी देखकर दुखी न होती होंगी, उनको कोई तसवीर तुम्हारे पास है?

साहब—ओ, हमारे पास उनके कई फोटो हैं। देखो, वह उन्हीं की तसवीर है, वह दीवाल पर।

गौरा ने समीप जाकर तसवीर देखी और करुण स्वर में बोली—सचमुच देवी थीं, जान पड़ता है, दया की देवी हैं। वह तुम्हें कभी मारती थी कि नहीं? मैं तो जानती हूँ, वह कभी किसी पर न बिगड़ती रही होंगी। बिलकुल दया की मूर्ति हैं।

साहब—ओ, मामा हमको कभी नहीं मारता था। वह बहुत गरीब था, पर अपने कमाई में कुछ न-कुछ जरूर खैरात करता था। किसी बे-बाप के बालक को देखकर उसको आँखों में आँसू भर आता था। वह बहुत ही दयावान था।

गौरा ने तिरस्कार के स्वर में कहा—और उसी देवी के पुत्र होकर तुम इतने निर्दयी हो! क्या वह होतीं तो तुम्हें किसी को इस तरह हत्यारों की भाँति मारने देती? वह सरग में रो रही होंगी। सरग-नरक तो तुम्हारे यहाँ भी होगा। ऐसी देवी के पुत्र तुम कैसे हो गये?

गौरा को ये बातें कहते हुए जरा भी भय न होता था। उसने अपने मन में एक दृढ़ संकल्प कर लिया था और अब उसे किसी प्रकार का भय न था। जान से हाथ धो लेने का निश्चय कर लेने के बाद भय की छाया भी नहीं रह जाती। किन्तु वह हृदय-शून्य अंग्रेज इन तिरस्कारों पर आग हो जाने के बदले और भी नम्र होता जाता था। गौरा मानवी भावों से कितनी ही अनभिज्ञ हो, पर इतना जानती थी कि अपनी जननी के लिए प्रत्येक हृदय में, चाहे वह साधु का हो या कसाई का, आदर और प्रेम का एक कोना सुरक्षित रहता है। ऐसा भी कोई अभागा प्राणी है, जिसे मातृ-स्नेह की स्मृति थोड़ी देर के लिए रुला न देती हो, उसके हृदय के कोमल भाव को जगा न देती हो?

साहब की आँखें डबडबा गयी थीं। सिर झुकाये बैठा रहा। गौरा ने फिर उसी ध्वनि में कहा—तुमने उनकी सारी तपस्या धूल में मिला दी। जिस देवी ने मर-मरकर तुम्हारा पालन किया, उसी को मरने के पीछे तुम इतना कष्ट दे रहे हो? क्या इसीलिए माता अपने पुत्र को अपना रक्त पिला-पिलाकर पालती है? अगर वह बोल सकतीं तो क्या चुप बैठी रहती; तुम्हारे हाथ पकड़ सकतीं तो न पकड़तीं? मैं तो समझती हूँ, वह जीती होतीं तो इस वक्त विष खाकर मर जातीं।

साहब अब ज़ब्त न कर सके। नशे में क्रोध की भाँति ग्लानि का वेग सहज ही में उठ आता है। दोनों हाथों से मुँह छिपाकर साहब ने रोना शुरू

किया, और इतना रोया कि हिचकी बंध गयी। माता के चित्र के सम्मुख जाकर वह कुछ देर तक खड़ा रहा, मानों माता से क्षमा मांग रहा हो। तब आकर आर्द्र-कण्ठ से बोला—हमारे मामा को अब कैसे शान्ति मिलेगा! हाय हाय! हमारे सबब से उसको स्वर्ग में भी सुख नहीं मिला। हम कितना अभागा है।

गौरा—अभी जरा देर में तुम्हारा मत बदल जायगा और तुम फिर दूसरों पर यही अत्याचार करने लगोगे।

साहब—नईं, नईं, अब हम मामा को कभी दुख नहीं देगा? हम अभी मँगरू को अस्पताल भेजता है।

(१०)

रात ही को मँगरू अस्पताल पहुँचा दिया गया। एजेन्ट खुद उसको पहुँचाने आया। गौरा भी उसके साथ थी। मँगरू को ज्वर हो आया था, बेहोश पड़ा हुआ था।

मंगरू ने तीन दिन आँखें न खोलीं और गौरा तीनों दिन उसके पास बैठी रही। एक क्षण के लिए भी वहाँ से न हटी। एजेण्ट भी कई बार हाल-चाल पूछने आ जाता और हर मरतबा गौरा से क्षमा माँगता।

चौथे दिन मंगरू ने आँखें खोलीं, तो देखा गौरा सामने बैठी हुई है। गौरा उसे आँखें खोलते देखकर पास आ खड़ी हुई और बोली—अब कैसा जी है?

मंगरू ने कहा—तुम यहाँ कब आयी?

गौरा—मैं तो तुम्हारे साथ ही यहाँ आयी थी, तब से यहीं हूँ।

मँगरू—साहब के बँगले में क्या जगह नहीं है?

गौरा—अगर बंगले की चाह होती, तो सात समुद्र-पार तुम्हारे पास क्यों आती?

मंगरू—आकर कौन-सा सुख दे दिया है? तुम्हें यही करना था, तो मुझे मर क्यों न जाने दिया?

गौरा ने झुँझलाकर कहा—तुम इस तरह की बातें मुझसे न करो। ऐसी बातों से मेरी देह में आग लग जाती है।

मँगरू ने मुँह फेर लिया, मानो उसे गौरा की बात पर विश्वास नहीं आया।

दिन-भर गौरा मँगरू के पास बे दाना-पानी खड़ी रही। गौरा ने कई बार उसे बुलाया, लेकिन वह चुप्पी साधे रह गया। यह संदेह-युक्त निरादर, कोमल

हृदय गौरा के लिए असह्य था। जिस पुरुष को वह देव-तुल्य समझती थी, उसके प्रेम से वंचित होकर वह कैसे जीवित रह सकती थी ? यही प्रेम उसके जीवन का आधार था। उसे खोकर अब वह अपना सर्वस्व खो चुकी थी।

आधीरात से अधिक बीत चुकी थी। मँगरू बेखबर सोया हुआ था, शायद वह कोई स्वप्न देख रहा था। गौरा ने उसके चरणों पर सिर रखा और अस्पताल से निकली। मँगरू ने उसका परित्याग कर दिया था। वह भी उसका परित्याग करने जा रही थी।

अस्पताल के पूर्व दिशा में एक फर्लाङ्ग पर एक छोटी-सी नदी बहती थी। गौरा उसके कगार पर खड़ी हो गयी। अभी कई दिन पहले वह अपने गाँव में आराम-से पड़ी हुई थी। उसे क्या मालूम था कि जो वस्तु इतनी मुश्किल से मिल सकती है, वह इतनी आसानी से खोयी भी जा सकती है। उसे अपनी माँ की, अपने घर की, अपनी सहेलियों की, अपने बकरी के बच्चों की याद आयी। वह सब कुछ छोड़कर इसीलिए यहाँ आयी थी ? पति के ये शब्द—'क्या साहब के बँगले में जगह नहीं है' उसके मर्मस्थान में बाणों के समान चुभे हुए थे। यह सब मेरे ही कारण तो हुआ ? मैं न रहूँगी, तो वह फिर आराम से रहेंगे। सहसा उसे ब्राह्मणी की याद आ गयी। उस दुखिया के दिन यहाँ कैसे कटेंगे। चलकर साहब से कह दूँ कि उसे या तो उसके घर भेज दें या किसी पाठशाला में काम दिला दें।

वह लौटा ही चाहती थी कि किसी ने पुकारा—गौरा ! गौरा !!

वह मँगरू का करुण-कम्पित स्वर था। वह चुपचाप खड़ी हो गयी। मँगरू ने फिर पुकारा—

गौरा ! गौरा ! तुम कहाँ हो ? मैं ईश्वर से कहता हूँ कि........

गौरा ने और कुछ न सुना। वह धम से नदी में कूद पड़ी। बिना अपने जीवन का अन्त किये वह स्वामी की विपत्ति का अन्त न कर सकती थी।

धमाके की आवाज सुनते ही मँगरू भी नदी में कूदा। वह अच्छा तैराक था। मगर कई बार गोते मारने पर भी गौरा का कहीं पता न चला।

प्रातःकाल दोनों लाशें साथ-साथ नदी में तैर रही थीं। जीवन-यात्रा में उन्हें यह चिर-संग कभी न मिला था। स्वर्ग-यात्रा में दोनों साथ-साथ जा रहे थे !!